

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन

युधिष्ठिर मीमांसकः

—: ओ३म् :—

ऋषि दयानन्द सरस्वती को लिखे गये पत्र और विज्ञापन (२)

(चतुर्थ भाग)



सम्पादक—
युधिष्ठिर मीमांसक

प्रकाशक—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरियाणा)

द्वितीय संस्करण ५००
ज्येष्ठ पूर्णिमा, २०५६ वि० सं०
जून, सन् १९९९ ई०

मूल्य —

प्रथम भाग	200.00
द्वितीय भाग	200.00
तृतीय भाग :	200.00
चतुर्थ भाग	200.00

मुद्रक—
नरेन्द्रकुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़, (सोनीपत-हरियाणा)

प्रकाशकीय वक्तव्य

[द्वितीय संस्करण]

'ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन' का प्रथम भाग गत वर्ष प्रकाशित हुआ था। उसके प्रकाशकीय वक्तव्य में हमने सूचना दी थी कि इस महत्त्वपूर्ण संकलन का दूसरा भाग छप रहा है। इस भाग का मुद्रण कुछ अपरिहार्य कारणों से अत्यन्त मन्थर गति से चला और लगभग एक वर्ष बाद सम्पन्न हो पाया है। हमें सन्तोष है और इस बात की प्रसन्नता है कि हमने महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक के जीवन के अन्तिम क्षणों के श्रम को ऐतिह्य-पारखी विद्वानों के समक्ष उपस्थित कर दिया है।

सुधी पाठक श्री युधिष्ठिर मीमांसक के शास्त्रीय पाण्डित्य और ऐतिहासिक विवेक से सुपरिचित हैं। वे 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' विषय के अद्वितीय और प्रामाणिक विद्वान् माने जाते थे। उन्हों ने अपने जीवन के लगभग पचास वर्ष इस विषय के चिन्तन-मनन, सामग्री-संकलन, सम्पादन और प्रकाशन में अर्पित किये थे। उन के द्वारा तैयार किये गये परिशिष्ट और संकलित सामग्री पर यथास्थान प्रामाणिक टिप्पण ऐतिहासिक-अन्वेषण जगत् में सन्दर्भ ग्रन्थ का स्थान प्राप्त कर चुके हैं। उन्हों ने 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ में अपनी ओर से 'ऋषि दयानन्द सरस्वती को लिखे गये पत्र और विज्ञापन' के दो भागों का संयोजन कर के ग्रन्थ की उपादेयता में महती वृद्धि की थी। तात्कालिक इतिहास-मर्मज्ञ विद्वानों ने उनके प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इन दोनों भागों का प्रथम संस्करण उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुका था। उनकी शैली थी कि जब-जब नई सामग्री उपलब्ध होती थी, तब-तब उसका समायोजन पुराने संस्करण में करते जाते थे। अन्ततः उपयुक्त समय पर नया संस्करण प्रकाशित कर देते थे। उपर्युक्त दोनों भागों के विषय में भी यही किया जा रहा था। यद्यपि सन् १९९३-९४ में उनका शारीरिक स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे किसी प्रकार का बौद्धिक कार्य कर सकें, तथापि अपने एक सहयोगी स्वर्गीय अवनीन्द्र वत्स की सहायता से उन्होंने प्रकृत ग्रन्थ के दोनों भागों का नया संस्करण तैयार कराया।

यहां श्री अवनीन्द्र वत्स के बारे में दो शब्द लिख देना प्रासङ्गिक है। यह युवक केवल दसवीं कक्षा-उत्तीर्ण था, बिहार प्रदेश का निवासी था। उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर व्याकरण का अध्ययन करने के लिए मुद्रण व्यवसाय को छोड़ कर बहालगढ़ आया था। उसके ज्ञान और अनुभव का स्तर विश्वविद्यालय के स्नातक से कहीं अधिक था। मूल अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर के सुना चुका था। उसका सम्पर्क पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक से हुआ जो उस समय दारुण शारीरिक कष्ट झेल रहे थे। युवक का कोमल हृदय एक विद्वान् की पीडा को सहन न कर सका। वह उन की सेवा में तत्पर हो गया, अपना अध्ययन लक्ष्य भूल कर मीमांसक जी की ऐसी सेवा करता रहा, जो उनके सगे-सम्बन्धी भी नहीं कर सकते थे। परन्तु श्री मीमांसक जी के सम्बन्धी उस युवक का यथार्थ मूल्याङ्कन करने में असमर्थ रहे। अन्ततः वह टूटा, हताश होकर मीमांसक जी के निधन से कुछ दिन पूर्व न केवल उनकी सेवा से ही वञ्चित हो गया, अपितु साधारण ज्वर के व्याज से प्रभु के चरणों में जा उपस्थित हुआ। प्रभु उसे शाश्वत शान्ति प्रदान करे।

प्रकृत ग्रन्थ के इस द्वितीय भाग के प्रथम संस्करण में पत्र-पत्रांशों की पूर्ण संख्या ५९७ और पृष्ठ संख्या ७४० थी, जब कि इस द्वितीय संस्करण में पत्र-पत्राँशों की पूर्ण संख्या ६१६ और पृष्ठ संख्या ८८८ हो गई है। इस प्रकार द्वितीय संस्करण में परिमाण और गुण दोनों दृष्टि से वृद्धि हुई है। इस का श्रेय म०म० पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक को ही है। खेद है, वे द्वितीय संस्करण को अपने जीवन में प्रकाश में आते हुए नहीं देख सके।

रामलाल कपूर ट्रस्ट ने अपने सीमित साधनों और प्रचण्ड मंहगाई के होते हुए भी पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के श्रम का सम्मान करते हुए इन दोनों भागों का प्रकाशन किया है। इस कार्य से ट्रस्ट श्रद्धेय श्री मीमांसक जी के ऋण से कुछ सीमा तक अपने को मुक्त अनुभव करता है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आर्य जनता और ऐतिह्यविद् अपना सहयोग पूर्ववत् जारी रखेंगे। हमारा प्रयास सदा यही रहा है कि उत्कृष्टतम सामग्री अपने पाठकों को अल्पतम व्यय में उपलब्ध करायें। परिस्थिति के अधीन विवश होकर मूल्य में वृद्धि अपरिहार्य हो गई है। अतः पाठक क्षमा करेंगे।

बहालगढ़ —**विजयपाल विद्यावारिधि**

१५-५-१९९९

तृतीय चतुर्थ भाग का सूची-पत्र

तृतीय भाग में—

चतुर्थ भाग में—



समर्पण

ऋषि दयानन्द और उनको लिखे गये
पत्रों और विज्ञापनों के संग्रहकर्ता
श्री पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर
श्री महात्मा मुन्शीराम जी जिज्ञासु
(श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी)
श्री मास्टर लक्ष्मण जी
श्री पं० भगवद्दत्त जी
श्री पं० चमूपति जी
श्री मामराज जी
आदि आदि,
जिन के अनवरत परिश्रम के
फल-स्वरूप यह संग्रह
सम्पन्न हुआ है
उन
सभी महानुभावों
की
पवित्र एवं प्रेरक
स्मृति में
सादर समर्पित

युधिष्ठिर मीमांसक

ऋषि दयानन्द सरस्वती के
पत्रों और विज्ञापनों के अनुसन्धाता



ऋषि-भक्त मनस्वी श्री मामराज जी

सम्पादकीय

[प्रथम संस्करण]

सं० २००२ (सन् १९४५) में रामलाल कपूर ट्रस्ट (लाहौर) ने श्री पं० भगवद्दत्त जी और श्री मामराज जी द्वारा उपलब्ध किये गये ऋ० द० के पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह किया था। इस के सम्पादक श्री पं० भगवद्दत्त जी थे। इस में पत्र, पत्रांश और विज्ञापनों की संख्या ५०० थी। इस की ८०० प्रतियां सन् १९४७ के देशविभाजन के समय अन्य पुस्तकों के स्टाक के साथ लाहौर में जला दी गईं।

देशविभाजन के अनन्तर लाहौर से आकर काशी में रामलाल कपूर ट्रस्ट के कार्य को व्यवस्थित किया गया और ग्रन्थ-प्रकाशन का कार्य नये सिरे से आरम्भ किया गया। सं० २०१२ (सन् १९५५) में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया। श्री पं० भगवद्दत्त जी के दूर स्थित होने के कारण इसके सम्पादन का भार मुझे उठाना पड़ा। इस संस्करण में ऋ० द० के पत्रों और उनको लिखे गये पत्रों तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित आदि के आधार पर अनेक पत्र, पत्रांश, पत्र-पारसल-तार आदि की सूचनाएं संकलित की गईं, जिससे इस संस्करण में पूर्ण संख्या ५०० से ६८० हो गई। इसके साथ ही अनेक परिशिष्ट तैयार किये जिन्हें अन्त में देना था। परन्तु ग्रन्थ का आकार बढ़ जाने से साथ में देना उचित नहीं समझा गया। ये ७ परिशिष्ट वेदवाणी में क्रमशः प्रकाशित हुए और इन को पृथक् संग्रहरूप से भी प्रकाशित किया गया।

द्वितीय संस्करण को समाप्त हुए ८-१० वर्ष हो गये थे। अर्थाभाव तथा बिक्री न्यून होने से इनके पुनः प्रकाशन की व्यवस्था विगत वर्षों में न हो सकी। इस सुदीर्घ काल में ऋ० द० के अनेक नये पत्र, पत्रांश और विज्ञापन आदि की उपलब्धि तथा पत्र-विज्ञापन से सम्बद्ध अनेक अभिलेखों की प्राप्ति हो चुकी थी। उधर मेरा स्वास्थ्य भी दिन प्रति-दिन क्षीण हो रहा था। अतः ऋषि दयानन्द के पत्रों और उनसे उपलब्ध सामग्री मेरे साथ ही नष्ट न हो जाये, इस दृष्टि से अस्वस्थ होते हुए भी सन् १९७९ में 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के नये संस्करण को प्रकाशित करने का विचार किया। इस के साथ ही अन्य व्यक्तियों द्वारा ऋषि

दयानन्द को लिखे गये पत्रों को भी छापने का निश्चय किया। क्योंकि दोनों ओर के पत्रों में से बहुत से पत्रों का निर्देश एक दूसरे के पत्रों में मिलता है। अत: ऋषि दयानन्द के अभिप्राय को यथावत् समझने के लिये उस से सम्बद्ध पत्र का ज्ञान होना आवश्यक है। अत: ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्रों को भी साथ छापना आवश्यक समझा।

'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के प्रकाशित करने का एक कारण यह भी था कि इस कार्य में आरम्भ (सन् १९४५) से ही मेरा बराबर सहयोग रहा है। पत्र और विज्ञापन के सम्पादक श्री पं० भगवद्दत्त जी और विविध स्थानों में घूम घूम कर शीत आतप वर्षा की परवाह न करके पत्रों के संग्रहकर्ता ऋ० द० के परम भक्त मनस्वी श्री मामराज जी के साथ मेरा आरम्भ-काल से ही सम्बन्ध रहा है। इस लिये इस कार्य के सम्बन्ध में मुझे जितना ज्ञान और अभिरुचि है, वह अन्यों में दुर्लभ है।

लगभग ४ वर्ष पूर्व की मंहगाई के अनुसार इस कार्य पर लगभग ५०-६० हजार रुपया व्यय होना था। इतना व्यय रामलाल कपूर ट्रस्ट नहीं उठा सकता था। अत: मैंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य में वैदिक धर्मप्रेमी ऋषि-भक्त आर्यजनों से आर्थिक सहयोग देने की प्रार्थना की। प्रभु की कृपा और ऋषि-भक्ति से प्रेरित होकर आर्यजनों ने इस कार्य के लिये बीस सहस्र रुपयों से अधिक की सहायता की। उन्हीं की सहायता से यह कार्य सम्पन्न हुआ।

सन् १९८० में 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' का **प्रथम भाग** और सन् १९८१ में **द्वितीय भाग** प्रकाशित हुआ। इन दोनों भागों में केवल ऋ० द० के लिखे पत्र और विज्ञापनों का संग्रह है।

अन्य व्यक्तियों द्वारा ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्रों का म० मुंशीरामजी और पं० चमूपति जी द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार' संग्रह के २ भागों में संकलन है, परन्तु वे भी सम्प्रति अनुपलब्ध हो चुके हैं और उन से अतिरिक्त भी बहुत से पत्र पत्रांश पत्र-सूचना विज्ञापन आदि मेरे पास संगृहीत हो चुके थे। इन्हें पहले एक भाग में ही छापने का विचार था, परन्तु छपते-छपते नित नई सामग्री के उपलब्ध होने से इस संग्रह को भी दो भागों में प्रकाशित करना पड़ा। इस प्रकार **तीसरा भाग** गत वर्ष सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ और यह **चतुर्थ भाग** अब **'दयानन्द बलिदान शताब्दी'** के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है।

ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों के प्रथम अनुसन्धाता
पं० लेखराम

श्री पं० लेखराम जी ने शास्त्रार्थ, ग्रन्थ-लेखन और उपदेशार्थ भ्रमण-रूप व्यस्त जीवन में समय निकाल कर ऋषि दयानन्द के जीवनचरित के लेखन के लिये चार पांच वर्षों में जो विपुल सामग्री संगृहीत की, उसे उन जैसा ऋषि-भक्त, वैदिक-धर्म के प्रति अलख जगानेवाला व्यक्ति ही संगृहीत कर सकता था। जैसे महर्षि वाल्मीकि को राम-रावण युद्ध की उपमा के लिये देवासुर युद्ध भी हीन प्रतीत हुआ और उन्होंने लिखा—**रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।** इसी प्रकार पं० लेखराम के अनन्य-साधारण परिश्रम की अन्य किसी के कार्य से तुलना करना असम्भव है।

पं० लेखराम जी ने ऋषि के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के संकलन के साथ-साथ ऋ० द० के तथा उनके विरोधियों के पत्रों और विज्ञापनों का पर्याप्त संग्रह किया था। ऐतिहासिक दृष्टि से ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों के आद्य अनुसंधाता श्री पं० लेखराम जी ही थे।

दैव दुर्विपाक से पं० लेखरामजी स्वयं ऋ० द० का जीवनचरित पूर्ण न लिख सके। उनके शेषकार्य को श्री आत्माराम जी ने पूरा किया। यदि स्वयं पं० लेखरामजी सम्पूर्ण जीवन-चरित लिख जाते तो सम्भव है उस का स्वरूप कुछ दूसरा ही होता, क्योंकि सहस्रों कागजों के टुकड़ों पर लिखी गई घटनाओं के सम्बन्ध में उनके हृदय में क्या लेखनीय भाव थे, वे उनके साथ ही समाप्त हो गये। फिर भी पं० आत्माराम जी ने जिस धैर्य और परिश्रम से उन सहस्रों कागजों के टुकड़ों में बिखरी हुई सामग्री को एक सूत्र में पिरो कर उसे जीवनचरित का रूप दिया, वह अत्यन्त श्लाघनीय है, उनके धैर्य और परिश्रम का पूरा परिचायक है।

पं० लेखराम का ऋ० द० का जीवन-चरित लिखने का प्रथम प्रयास था। इस पर भी वे स्वयं उसे पूरा न लिख सके। इस कारण उसमें कुछ त्रुटियों का रहना स्वाभाविक है। परन्तु जो लोग अपने को वैज्ञानिक चरित-लेखक समझते हैं या जो लोग ऋ० द० का वैज्ञानिक जीवन-चरित लिखने की घोषणा या याचना करते हैं वे पं० लेखरामकृत जीवन-चरित के बिना एक कदम भी नहीं चल सकते। ऋ० द० के सभी जीवनचरितों का यही उद्गम स्थान है, यही आकर स्थान है। इस तथ्य से मुख मोड़ना अपने अभिमान का प्रदर्शन करना मात्र है।

वास्तविक आवश्यकता इस बात की थी और सम्प्रति भी है कि कोई इतिहासज्ञ सम्पादन-कला-प्रवीण पं० लेखरामकृत जीवन-चरित का श्रेष्ठ सम्पादन करे। परन्तु लेखक बनने की एषणावाला कोई इस अनेक वर्ष साध्य कार्य को हाथ लगाना न उचित समझता है और नाही कोई आर्य-समाज की संस्था इस कार्य के महत्त्व का मूल्याङ्कन करती है। अस्तु।

म० मुंशीराम संगृहीत पत्रव्यवहार और उसका महत्त्व

म० मुंशीराम जी ने सं० १९६६ (सन् १९१०) में 'ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार' का प्रथम भाग प्रकाशित किया था। यह कार्य अपने आप में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रकाशन महात्माजी ने क्यों किया। और उसका क्या लाभ है, यह महात्मा जी ने अपनी भूमिका[1] में विस्तार से लिखा है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह के प्रकाशन से पं० भगवद्दत्त जी और उनके सहायक श्री मामराजजी को ऋ० द० के पत्रों के अनुसन्धान में बहुत सहायता मिली।

म० मुंशीरामजी द्वारा प्रकाशित पत्रव्यवहार में अधिक संख्या अन्य व्यक्तियों द्वारा ऋषि दयानन्द को प्रेषित पत्रों की है। उन पत्रों के आधार पर पं० भगवद्दत्त जी ने पत्र द्वारा और श्री मामराज जी ने तत्तत्स्थानों में जाकर ऋ० द० के पत्रों की उपलब्धि के लिये प्रयत्न किया। यदि म० मुंशीराम जी द्वारा प्रकाशित पत्रव्यवहार न छपता तो ये दोनों महानुभाव अपने कार्य में इतने सफल न होते, यह निश्चित है। म० मुंशीराम जी द्वारा प्रकाशित पत्रव्यवहार की पुस्तक पर मामराज जी की जो टिप्पणियां[2] लिखी हुई हैं, वे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आर्य व्यक्तियों को यह जानकर एक सुखद आश्चर्य होगा कि देश जाति और समाज की उन्नति के कार्य में जैसे आर्यसमाज पूर्वकाल में अग्रणी रहा है, वैसे ही 'पत्र-साहित्य' के प्रकाशन में भी आर्यसमाज अग्रणी

---

१. हम अपने प्राक्कथन के पश्चात् श्री म० मुंशीराम जी द्वारा लिखित भूमिका छाप रहे हैं। उससे आगे श्री पं० चमूपति जी द्वारा लिखित दूसरे भाग की भूमिका भी दे रहे हैं।

२. हमने श्री मामराज जी द्वारा लिखित टिप्पणियों को जो संख्या में ५८ हैं, प्रकरण-निर्देश-पूर्वक चतुर्थ परिशिष्ट में छाप दिया है। उनसे जहां श्री मामराज जी के पत्रानुसन्धान कार्य का विवरण ज्ञात होता है, वहां उनसे अनेक पुराने व्यक्तियों का परिचय भी मिलता है।

रहा। पत्र-साहित्य में सबसे प्रथम प्रकाशन म० मुंशीराम जी द्वारा सन् १९१० में प्रकाशित ऋ० द० का पत्रव्यवहार ही है। अन्यों के पत्रों का प्रकाशन तो सन् १९३८ से आरम्भ हुआ है। इस प्रकार पत्र-साहित्य प्रकाशन में भी आर्यसमाज अन्यों से २८ वर्ष अग्रगामी है।

मुझे इस तथ्य का ज्ञान नहीं था, परन्तु डा० कमलपुंजाणी द्वारा लिखित इसी वर्ष में प्रकाशित 'हिन्दी का पत्र-साहित्य' नामक शोध-प्रबन्ध को पढ़ने से उपर्युक्त तथ्य सामने आया। लेखक ने पृष्ठ ८१ पर डा० नगेन्द्र का निम्न उद्धरण दिया है—

"आलोच्य युग में पत्र-साहित्य-विषयक दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए। महात्मा मुन्शीराम ने सन् १९०४[1] में स्वामी दयानन्द सम्बन्धी पत्रों का संकलन किया। यह आलोच्य युग का ही नहीं, **समूचे हिन्दी साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र-संग्रह है।**"

इसी पृष्ठ के आरम्भ में लेखक ने लिखा है—"हिन्दी में वैयक्तिक पत्र-संग्रहों के प्रकाशन की परम्परा का शुभारम्भ भी आर्यसमाजी लेखकों ने ने ही किया है।" आगे पुनः पृष्ठ ८५ पर लेखक ने लिखा है—

"इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९३५ तक हिन्दी पत्र-साहित्य के भण्डार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र-रत्न ही सर्वत्र अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहे थे। पं० चमूपति द्वारा सम्पादित उपर्युक्त पत्र संग्रह (सन् १९३५) के बाद तीन वर्ष तक हिन्दी में प्रकाशित कोई पत्र-संग्रह उपलब्ध नहीं होता।

इन उद्धरणों में म० मुन्शीराम जी के पत्र-प्रकाशन कार्य का जो मूल्याङ्कन किया गया है, वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है।

म० मुन्शीराम जी द्वारा लिखित भूमिका

'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १ की म० मुंशीराम जी द्वारा लिखित भूमिका अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस लिये उसे हम आगे छाप रहे हैं। इस भूमिका में **पत्रों की जो पृष्ठ संख्या दी है वह उनके संस्करण की है**, उसे हमने बदला नहीं। हां, भूमिका में निर्दिष्ट पत्र अथवा

---

१. यह साल निर्देश अशुद्ध है। म० मुन्शीराम जी द्वारा प्रथम भाग का प्रकाशन सन् १९१० में हुआ था।

पृष्ठाङ्क देकर निर्दिष्ट उद्धरण प्रस्तुत संग्रह में कहां छपे हैं, इस का व्यौरा ऊपर टिप्पणी की संख्या देकर नीचे टिप्पणी में दे दिया है।

भूमिका की भाषा– म० मुंशीराम जी की भाषा पर्याप्त प्राञ्जल एवं भावपूर्ण है, तथापि उस में पञ्जाबी होने के कारण अथवा उर्दू भाषा के प्रभाव के कारण कुछ अपप्रयोग मिलते हैं। यथा—'**स्रोत**' के लिये '**श्रोत**, (द्र०–पृष्ठ ८६, पं० २,६)'सकता' 'सकते' के स्थान पर **सक्ता सक्ते** आदि।

पृष्ठ ६० पर संन्यासी के सूत्र-शिखा आदि परित्याग-विषयक चार प्रमाण उद्धृत हैं। ये उद्धरण म० मुंशीराम जी ने किस ग्रन्थ से उद्धृत किये हैं, इसका उन्होंने निर्देश नहीं किया। उन में से प्रथम तीन उद्धरण हमें 'नारदपरिव्राजकोपनिषद्' में ३।७८,८०,८६ में मिले हैं। चौथा उद्धरण हमें नहीं मिला। चतुर्थ उद्धरण का प्रथम पद '**निरोद्धका**' अशुद्ध है। इसी प्रकार इस के चतुर्थ चरण में '**ह्येक दण्डिनाम्**' मुद्रित पाठ भी चिन्त्य है। अगला लघुत्वमारोग्य० उद्धरण श्वेता० उप० २।१४ का है।

पं० चमूपति जी द्वारा लिखित भूमिका

'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २ की पं० चमूपति जी द्वारा लिखित भूमिका तथा उसके अनन्तर श्री ठा० किशोरसिंहजी द्वारा लिखित राजस्थान के कतिपय व्यक्तियों का परिचय भी छाप रहे हैं। इससे जहां इन दोनों महानुभावों की स्मृति बनी रहेगी, वहां इनके कार्य के प्रति कृतज्ञता द्वारा हम कृतघ्नता दोष से भी मुक्त होंगे।

भाग २ में जो पत्र छपे हैं, उनकी मूलकापी से पुनर्मिलान के लिये मैंने अपने कोटानिवासी स्व० मित्र श्री माननीय राजबहादुरसिंह जी भूतपूर्व इंस्पेक्टर से सन् १९५४ में प्रार्थना की थी। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके श्री ठा० किशोरसिंहजी पटियाला वालों के संग्रह से मुद्रित द्वितीय भाग का पुनर्मिलान कर और शोधकर अपने ११–११–५४ के पत्र के साथ मुझे भेजा था। उस पत्र का कुछ अंश नीचे दे रहे हैं—

"किशोरसिंह जी पटियालावालों की पुत्री ठिकाना कोठारी (कोटा राज्य)के कविराज दुर्गादासजी के छोटे भाई को व्याही है। ठा० किशोरसिंह जी ने मरते समय बहुत सी पुस्तकें और यह [दूसरे भाग में छपा] पत्रव्यवहार, जिसे उन्होंने तरतीब देकर रखा था, अपने दमाद को सुरक्षित रखने को दे दिया था। वह इस समय जागीर कोठारी, जो कोटा शहर से लगी हुई है, के पुस्तकालय में सुरक्षित है।"

आर्यसमाज के भावी इतिहास लेखकों को इस पुस्तकालय को अवश्य देखना चाहिये। इस में कोई उपयोगी प्राचीन सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

तृतीय चतुर्थ भाग में मुद्रित पत्रों की भाषा

तृतीय चतुर्थ भाग में जो पत्र हमने प्रकाशित किये हैं, वे अनेक जनपदों प्रदेशों के रहनेवाले पठित, साधारण पठित और पं० लेखरामजी तथा भाई जवाहरसिंहजी सदृश आर्य भाषा में पत्र लिखने का प्रयास करनेवाले व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं। अनेक पत्र विविध प्रादेशिक बोलियों में लिखे गये हैं। अनेक पत्रों में प्रादेशिक उच्चारण का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उर्दू फारसी अंग्रेजी के ज्ञाता पं० लेखरामजी तथा भाई जवाहरसिंह जी के पत्रों में, आर्यभाषा में पत्र लिखने के कारण भाषा की विविध प्रकार की अशुद्धियां हैं। इन महानुभावों ने नये प्रयास के कारण लेख में होनेवाली अशुद्धियों की सम्भावना का ज्ञान होने पर भी आर्यभाषा में पत्र लिखने का जो स्तुत्य प्रयास किया है वह अत्यन्त सराहनीय है। इस विषय में म० मुंशीराम जी की निम्न पंक्तियां पठनीय और मननीय हैं—

"भाई जवाहरसिंह में एक गुण अन्य लाहौरी आर्य समाजियों से बढ़-चढ़ कर था। जहां कुछ एक अन्य लाहौरी आर्यसामाजिक लीडरों ने मरते दम तक आर्यभाषा का लिखना न सीखा वा उसका अभ्यास नहीं किया, वहां भाई जी ने जिस मत को ग्रहण किया था उसके प्रवर्तक की इच्छानुसार उस मत की साधारण भाषा का अभ्यास पुरुषार्थ से आरम्भ कर दिया था। पृष्ठ ३३० का [अंत में पुनः इस बात को लिखना 'कि आर्यभाषा के लिखने में बहुत अशुद्धियां हो जाती हैं क्षिमा कीजियेगा] लेख आजकल के उन नवशिक्षित बूढ़ों और पुर्जोश जवानों के लिये विचारणीय है जो अंग्रेजी तथा उर्दू को लाठी से ही आर्य सामाजिक सर्व साधारण के गल्ले को हांकना चाहते हैं।" द्र०-पृष्ठ ७४-७५(चतुर्थ भाग के आरम्भ में)

इसी प्रकार आगे लिखा है—वैदिक धर्म में प्रेम उत्पन्न होते ही पण्डित लेखराम ने देवनागरी अक्षरों का अभ्यास आरम्भ कर दिया था और अपनी भाषा की अशुद्धियों के कारण अपने कर्त्तव्य-पालन से किञ्चित् भी नहीं घबराते थे।" द्र० पृष्ठ ८३ (चतुर्थ भाग के आरम्भ में)

अपने सम्बन्ध में

ऋ० द० के पत्र-व्यवहार के प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन और मुद्रण

अपनी चिरकालीन अस्वस्थता में पूरा किया है। इस कारण इस कार्य में बहुत सी भूलों की सम्भावना है। छपते-छपते जिन भूलों का मुझे परिज्ञान हुआ उनका शुद्धीकरण द्वितीय और चतुर्थ भाग में कर दिया है। फिर भी कुछ भूलें अवश्य रही होंगी। इसके लिये पाठक महानुभावों से क्षमा चाहता हूँ। निरन्तर अस्वस्थ रहते हुए भी मैंने इस कार्य को सम्पन्न करने में शक्ति से अधिक परिश्रम किया है। इस कार्य को यथासम्भव शीघ्र पूर्ण करने के लिये मीमांसा-शाबरभाष्य के भाषानुवाद जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य को भी दो वर्ष मुझे स्थगित करना पड़ा। पता नहीं, यह क्या दैवी नियति है कि जब मैंने सन् १९५४-५५ में पत्र और विज्ञापन के द्वितीय संस्करण का सम्पादन किया था तब भी मैं अम्लपित्त के भयङ्कर प्रकोप से पीड़ित था और इस बार की अस्वस्थता तो अधिक गम्भीर बनी हुई है। वर्तमान क्षेत्रिय-व्याधि तो परजन्म में ही निवृत्त होगी, फिर भी मैंने इस कार्य को यथाशक्ति सम्पन्न करने का प्रयास किया, इस का मुझे सन्तोष है। सबसे अधिक सन्तोष इस बात का है कि ऋ० द० के पत्रव्यवहार और उससे सम्बद्ध जितनी सामग्री का इस समय तक मेरे पास संग्रह था, उसे इस संस्करण में यथास्थान निवेशित कर दिया है। इस प्रकार मैं एतद्विषयक ऋषि-ऋण से अपने को उन्मुक्त करके अपने को कुछ स्वस्थ अनुभव करता हूँ।

अन्त में इस कार्य में हुई भूल चूक के लिये पुनः क्षमा मांगता हुआ लेखनी को विराम देता हूँ।

श्रावणी पूर्णिमा, सं० २०४०
रा० ला० क० ट्र० बहालगढ़

विद्वज्जन-सेवक
युधिष्ठिर मीमांसक



प्राक्कथन

तृतीय और चतुर्थ भाग में हमने ऋषि दयानन्द के प्रति लिखे गये पत्रों, पत्रांशों, पत्र-सूचनाओं एवं विज्ञापन आदि का संग्रह किया है[1]। इन पत्रों में से अधिकांश पत्रों का सम्बन्ध प्रथम और द्वितीय भाग में संगृहीत ऋषि दयानन्द के पत्रों के साथ है। अतः इस प्रकार के पत्रों का महत्त्व स्वतः प्रख्यापित है। हां, कुछ पत्र ऐसे भी हैं जो महत्त्वहीन से प्रतीत होते हैं, तथापि उनके अवलोकन से ऋषि दयानन्द के बहु आयामी जीवन पर प्रकाश पड़ता है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी किस प्रकार निस्संकोच रूप से पत्र द्वारा ऋषि के चरणों में उपस्थित होकर अपने छोटे मोटे कार्य की पूर्ति की उन से कामना करता है, यह इन महत्त्वहीन से लगनेवाले पत्रों मे ही व्यक्त होता है। इस दृष्टि मे ये साधारण पत्र भी असाधारण बन जाते हैं।

कतिपय पत्र विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन मे ऋषि के द्वारा प्रारब्ध अथवा प्रारप्स्यमान अनेक कार्यों पर गहरा प्रकाश पड़ता है। तीन चार पत्र ऐसे हैं जो ऋषि दयानन्द की अनुसंधान-प्रवृत्ति के ज्ञापक हैं। कुछ पत्र ऐसे हैं जिनमे उनके द्वारा लिखे गये अथवा लिखवाये गये ग्रन्थों की रचना तथा मुद्रण कार्य पर प्रकाश पड़ता है। कतिपय पत्रों के लेखकों ने ऋषि दयानन्द से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनके विचार पूछे हैं। यदि इन पत्रों के ऋषि दयानन्द द्वारा दिये गये उत्तर उपलब्ध हो जाते तो निस्सन्देह आर्यसमाज के विद्वानों में विवादास्पद बने हुए अनेक विषयों का समाधान हो जाता।

अब हम तृतीय तथा चतुर्थ भाग में मुद्रित ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्रों से कतिपय विषय पाठकों के दिग्दर्शनार्थ नीचे प्रस्तुत करते हैं—

---

१. इन पत्रों में से अधिकांश पत्रों का सम्पादन वा प्रकाशन म० मुन्शीराम जी ने और पं० चमूपति जी ने क्रमशः 'ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार' भाग १ तथा २ के रूप में किया था। इन दोनों महानुभावों द्वारा लिखित उपयोगी भूमिका हम आगे छाप रहे हैं।

१--ऋ० द० विरचित कतिपय ग्रन्थों के सम्बन्ध में

ऋषि दयानन्द के द्वारा लिखे गये प्रथम और द्वितीय भाग में छपे पत्रों और विज्ञापनों से उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध होती है, उस का संकलन हमने द्वितीय भाग के आरम्भ में पृष्ठ १३–१८ तक कर दिया है। यहां ऋषि दयानन्द को लिखे गये तृतीय-चतुर्थ भाग में छपे पत्रों में ऋ० द० विरचित संवत् १९३१-३२ (सन् १८७४–७५) में छपे सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि और आर्याभिविनय के प्रथम संस्करणों के विषय में जो प्रश्न पूछे गये हैं, उनका तथा इन पत्रों से सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण (सं० १९३९=सन् १८८२) और वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भागों के लेखन के सम्बन्ध में जो प्रकाश पड़ता है, उन के सम्बन्ध में विषयानुसार लिखा जाता है—

यज्ञ में पशु-बलि अथवा मांस-हवि

छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह पूर्ण संख्या १६० (भाग ३, पृष्ठ १२६) के पत्र में लिखते हैं—

"मैं पार्वण श्राद्ध करना चाहता हूँ उस के लिये एक बकरा भी तैयार है। आप कृपा करके पधारकर इस को विधिपूर्वक करा दीजिये।"

२—भिनगा जि० बहराइच के भाया राजेन्द्रबहादुरसिंह पूर्ण संख्या ३७४ के पत्र (भाग ३, पृष्ठ ४५७, पं० २–६) में लिखते हैं—

"पञ्चमहायज्ञविधि तथा सत्यार्थप्रकाश में जो मिश्री दूध गुड़ मांस और सोमलतादि वस्तु होम के लिये लिखी हैं, इन सब वस्तुओं का किस प्रकार हवन करना चाहिये अर्थात् जब पुष्टिकारक होम करना हो तो दूध घी तथा मांस को किस प्रकार यानी खाली एक एक से या सबको एक में मिलाकर करना चाहिये।"

३—संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में गर्भाधान संस्कार (पृष्ठ १०-११) में मांसौदन तथा अन्नप्राशन संस्कार (पृष्ठ ४२) में बकरा तीतर आदि का मांस खिलाने का उल्लेख मिलता है।

अब हम इनके विषय में क्रमशः लिखते हैं—

१—ठाकुर मुकुन्दसिंह के पत्र का जो उत्तर ऋषि दयानन्द ने दिया था, वह इस प्रकार है—

"जो सत्यार्थप्रकाश राजा जयकृष्णदास जी की मारफत मुद्रित हुआ है उसमें कई स्थलों पर वेदविरुद्ध लेख छप गया है। इसलिये श्राद्ध के विषय में जो मांस का विधान है और मृतकों का श्राद्ध है वह भी वेद-विरुद्ध है। क्योंकि आपको ज्ञात हो कि जो पञ्चमहायज्ञविधि शाके १७९६ (=सं० १९३१, सन् १८७४) में आर्यप्रकाश यन्त्रालय मुम्बई में हमने छपवाई थी उसमें हमने मृतक-श्राद्ध का खण्डन किया है, जो राजा जी के सत्यार्थप्रकाश से एक वर्ष पूर्व प्रथम मुद्रित हुई है। अतः इस वेदविरुद्ध कर्म को आप कभी नहीं करें।" द्र०—पूर्ण संख्या ३९४, भाग १, पृष्ठ ४२७।

यह पत्र काशी से लिखा गया था। इस पर तिथि तारीख का निर्देश नहीं है।

२—भाया राजेन्द्रबहादुर सिंह के पत्र का उत्तर ऋषि दयानन्द ने दिया अथवा नहीं दिया, इस विषय में हमें कुछ ज्ञान नहीं। हमें इस विषय का ऋ० द० का पत्र नहीं मिला। परन्तु भाया राजेन्द्रबहादुर सिंह ने मांस के विषय में पञ्चमहायज्ञविधि और सत्यार्थप्रकाश का जो उल्लेख किया है, उस पर विचार किया जाता है—

पञ्चमहायज्ञविधि का जो प्रथम संस्करण ऋ० द० ने शाके १७९६ में बम्बई में छपवाया था, उसमें अग्निहोत्र के प्रकरण के अन्त में होमीय द्रव्यों के विषय में लिखा है—'**सुगन्धिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्यधैर्यबलरोग-नाशकैर्गुणैर्युक्तानाम्**।' इसमें मांस का साक्षात् उल्लेख नहीं। यहां तक कि राजा जयकृष्णदास ने बम्बई संस्करणवाली पञ्चमहायज्ञविधि का जो संस्करण नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में छपवाया था, उसमें भी नहीं है।

सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) का पाठ इस प्रकार है—

"वेद ब्राह्मण और सूत्र पुस्तकों में चार प्रकार के पदार्थ होम के लिखे हैं एक तो जिसमें सुगन्ध गुण होय जैसे कस्तूरी केशरादिक और दूसरा मिष्टगुण होय जैसे मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमें पुष्टिकारक गुण होय जैसा कि दूध घी और मांसादिक और चौथा जिसमें रोगनिवृत्ति-

कारक गुण होय जैसा कि वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलतादिक औषधियां लिखी हैं ...." (पृष्ठ ४५)।

उक्त पाठ पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट विदित हो जाता है कि यहां मांस शब्द पीछे से डाला गया है। क्योंकि सुगन्धगुण और मिष्टगुण के विवरण में क्रमशः **कस्तूरी केशरादिक** और **मिश्री शर्करादिक** दो दो नाम ही दिये हैं, तथा दो नामों के मध्य **'और'** शब्द भी नहीं है। तृतीय पुष्टिकारक गुण के विवरण में **दूध घी और मांसदिक** तीन नाम दिये हैं तथा तृतीय नाम से पूर्व **'और'** शब्द का प्रयोग मिलता है। यह प्रत्यक्ष ही लेखन प्रकार से विरुद्ध है। अतः यहां **और मांस** इतना पाठ ग्रन्थ के लेखनकाल में लिपिकर के द्वारा अथवा मुद्रण काल में बढ़ाया गया है।

३—संस्कारविधि (प्र० सं०) के गर्भाधान प्रकरण का पाठ है—

"जो चाहे...... सब वेद, वेदाङ्ग विद्या का पढ़ने और पढ़ाने तथा सर्वायु भोगनेवाला पुत्र होय, वह मांसयुक्त भात को पकाके घृतयुक्त खाय, तो वैसा ही पुत्र होना संभव है. १७ **यह बात एक देशी है सर्व देशी नहीं क्योंकि मांस से पौष्टिक गुणवाला द्रव्य दुग्ध और औषधादिकों में अधिक ही है।"** पृष्ठ ११

अन्नप्राशन संस्कार में आश्वलायन गृह्यसूत्र आदि का पाठ देकर लिखा है—

"१ अजा के मांस का भोजन अन्नादि की इच्छा करनेवाला, २ तथा विद्या कामना के लिये तित्तिर का मांस भोजन करावे. **यह बात मांसाहारी तथा एकदेशी लोगों के लिये है।**" पृष्ठ ४२

उक्त दोनों उद्धरणों में स्थूलाक्षरों में छपी पंक्ति द्रष्टव्य है। इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द इस मत को नहीं मानते। इसी विषय में ऋ० द० ने सं० १९३५ में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के अङ्क १ और २ के टाइटल पेज पर एक विज्ञापन छपवाया था। उसका प्रकृत से सम्बद्ध अंश इस प्रकार है—

"सब को विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उन को मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इसमें जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि

पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जताने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ ......" द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या १७१, भाग १, पृष्ठ २११, पं० २-७

इस विज्ञापन से भी सिद्ध है कि संस्कारविधि में शतपथ और गृह्यसूत्र के जिन वचनों में मांस-भक्षण का उल्लेख है, उन्हें वे वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण मानते हैं।

मुक्ति-विषय में

मुरादाबाद से लिखे गये श्री क्षेमकरणदास जी के पूर्ण संख्या ५७६ के पत्र (भाग ४, पृष्ठ ७०७-७०८) में 'ऋ० द० के ग्रन्थों में 'मुक्ति के विषय में अनन्तता और सान्तता का जो विरोध दिखाई पड़ता है' उसके विषय में समाधान मांगा गया है। पत्र में प्रत्येक ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या का उल्लेख करके विरोध दर्शाया गया है। ये श्री क्षेमकरणदास जी वही व्यक्ति हैं जिन्होंने राजकीय सेवा से निवृत्त होकर तीनों वेदों की परीक्षा पास करके त्रिवेद (त्रिवेदी) बने थे और अथर्ववेद, जिस पर सायणाचार्य का भाष्य भी कुछ ही भाग पर उपलब्ध होता है, का विस्तृत भाष्य लिखा गोपथब्राह्मण, जिस पर कोई व्याख्या लिखी ही नहीं गई, की व्यख्या की।

श्री क्षेमकरणदास जी के पत्र का उत्तर सम्भवतः ऋ० द० नहीं दे पाये होंगे, क्योंकि पत्र १७ सितम्बर १८८३ का है, और २९ सितम्बर की रात में ऋ० द० को विष दिया गया, रोग बढ़ता ही गया। अतः इस विषय में ऋ० द० के जीवन-चरित और 'फर्रुखाबाद के इतिहास' से जो प्रकाश पड़ता है, उससे विदित होता है कि ऋ० द० सं० १९३३ के अन्त तक मुक्ति को अनन्त मानते थे। तत्पश्चात् लगभग २ वर्ष दोलायमान से रहे। सं० १९३६ के आरम्भ में वे इस निर्णय पर पहुंचे कि मुक्ति अनन्त नहीं है।

१—पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित भाग २ पृष्ठ ६०२-६०३ पर लिखा है—

'पं० कृष्णराम इच्छाराम भी महाराज के आनन्द बाग निवास काल (कार्तिक शु० ७ सं० १९३६ से वैशाख कृष्ण ११ सं० १९३७) में काशी पहुंच गये थे। वह कहते हैं कि जब वह स्वामीजी से पहली बार (सं०

१९३१ में) बम्बई में मिले थे तो स्वामीजी मुक्ति को अनन्त मानते थे, परन्तु काशी में मिलने पर ज्ञात हुआ कि वे सान्त मानते हैं। कारण पूछने पर महाराज ने कहा–इस विषय में हमने बहुत विचार किया और सांख्य-शास्त्र के प्रमाणानुसार[1] हमें मुक्ति सान्त ही माननी पड़ी……।"

२—फर्रुखाबाद का इतिहास, पृष्ठ १३४ में लिखा है—

"२० जून रविवार सन् १८८० (=ज्येष्ठ शु० १३ सं० १९३७) को मुक्ति विषय पर स्वामीजी का एक अभूतपूर्व व्याख्यान हुआ। स्वामीजी ने कहा कि मैं इस विषय में बहुत समय से सोच रहा था कि **न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते** अधिकांश लोग ऐसा पुकारा करते हैं, यह बात कहां तक सच है। मुझे शंका होती थी कि कभी तो फल चुकना चाहिये, क्योंकि जीव के कर्म सान्त हैं। [फल] अनन्त कैसे हो सकता है? बहुत देख-भाल और विचार के बाद महर्षि कपिल का सिद्धान्त मिला—**इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्ताभाव:**(सांख्य १।१५९) अत्यन्त मोक्ष नहीं होता। जैसे वर्तमान काल में जीव बद्ध और मुक्त हैं वैसे ही सदा रहते हैं। ………"

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मुक्ति विषय का प्रकरण है, परन्तु उस में मुक्ति की अनन्तता वा सान्तता का कोई विवेचन नहीं है। हां, सृष्टिविद्या प्रकरण में यजुर्वेद अ० ३१ के १९वें मन्त्र के भाष्य में एक पंक्ति है—'**यत्र मोक्षाख्ये परमे सुखे सुखिन: सन्ति न तस्माद् ब्रह्मणश्शतवर्षसंख्यातात् कालात् कदाचित् पुनरावर्तन्ते**। 'इसका भाव यह है कि 'जिस मोक्षरूपी परम सुख में सुखी रहते हैं, उससे ब्रह्मा के सौवर्ष काल (३६ सहस्र बार पृथिवी उत्पत्ति और प्रलय) से पूर्व कभी नहीं लौटते। इस संस्कृत पंक्ति का हिन्दी में न केवल अभाव है अपितु इसके विपरीत लिखा है—'**जिस पद को प्राप्त होके नित्य आनन्द में रहते हैं उसी को मोक्ष कहते हैं क्योंकि उससे निवृत होके संसार में दुःखों में कभी नहीं गिरते**।' ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका की उक्त पंक्ति जिस अङ्क में छपी है, वह श्रावण सं० १९३४ में छपा था उस के मुख पृष्ठ पर सं० १९३४ भाद्रमास में ऋ० द० के जालन्धर नगर में निवास करने की सूचना छपी है। भूमिका के लेख से यह प्रतीत होता है कि श्रावण सं० १९३४ तक ऋ० द० मुक्ति के विषय मे दोलायमान थे।

१. सांख्य शास्त्र का प्रमाण अगले उद्धरण में देखें।

हमारा विचार है कि ऋ० द० मुक्ति की सान्तता का अन्तिम रूप से निर्णय सं० १९३६ के मध्य तक कर चुके थे। इस काल के पश्चात् २० जून १८८० के फर्रुखाबाद के व्याख्यान से पूर्व कहीं किसी व्याख्यान में इस तथ्य का वर्णन किया वा नहीं, यह हमें ज्ञात नहीं। हो सकता है इस का प्रथम बार उल्लेख फर्रुखाबाद के २० जून १८८० के व्याख्यान में ही किया हो। परन्तु इस से पूर्व काशी में पं० कृष्णराम इच्छाराम से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर चुके थे। ग्रन्थ में इस सिद्धान्त का वर्णन सबसे पहले संस्कृतवाक्यप्रबोध के अन्त में 'मन्तव्यामन्तव्य' प्रकरण के अन्तिम वाक्य में मिलता है। संस्कृतवाक्यप्रबोध का प्रकाशन वैदिक यन्त्रालय काशी से फाल्गुन शु० ११ सं० १९३६ को हुआ था। उन दिनों ऋ० द० वहीं विराजमान थे।

हमारा विचार है कि संस्कृतवाक्यप्रबोध के अन्त में **मन्तव्यामन्तव्य प्रकरण** केवल कुछ काल पूर्व निश्चित 'मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है' इस मन्तव्य को प्रकट करने के लिये ही जोड़ा था।

वेदभाष्य और संशोधित सत्यार्थप्रकाश में मांस-भक्षण

इस विषय में मुंशी समर्थदान का पूर्ण संख्या ४९७ (भाग ३, पृष्ठ ५८७) पर छपा पत्र विशेष देखने योग्य है। उसके प्रथम सन्दर्भ में लिखा है—

"निवेदन यह है कि वेदभाष्य में जो मांस-भक्षण का विधान आया था उसको तो आपने निकाल दिया था और मुझको भी आज्ञा दी थी कि मांस का विधान न आये इस प्रकार से छाप दो सो मैंने छाप दिया था। अब सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य का प्रकरण पाया। इस में भी आपने मांस खाने की स्पष्ट आज्ञा दी है।' (पृष्ठ ५८८, पं० ३-७)

इस पत्र से इतना स्पष्ट है वेदभाष्य और संशोधित सत्यार्थप्रकाश में भी मांस-भक्षण लिखा गया था। मुंशी समर्थदान की दृष्टि में ये दोनों स्थल आ जाने से उसने ऋषि दयानन्द को लिख कर शोधवा लिये थे।

वेदभाष्य में मांस भक्षण का विधान कहां आया था, उसका तो लाला मूलराज आदि को ज्ञान नहीं था, परन्तु सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास को प्रेस कापी में हाशिये पर बढाये गये पाठ को कटा हुआ देखकर उन्होंने उस पर बहुत बावेला मचाया था। यत: यह विषय बहुत महत्त्व का है, और इस पर विस्तार से विचार करना आवश्यक था, इसलिये हमने इस

भाग के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट (पृष्ठ ७७२-७८०)में इस पर विस्तार से विचार किया है। पाठक वहां देखें। यहां तो प्रसङ्गत: संकेतमात्र किया है।

वेदभाष्य का भाषानुवाद और संशोधन

ऋषि दयानन्द के तथा पं० भीमसेन और ज्वालादत्त के पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदभाष्य का भाषानुवाद और उसका संशोधन पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त ने किया था। ये लोग वेदभाष्य का भाषानुवाद कैसा करते थे, इस विषय का परिज्ञान मुन्शी समर्थदान को लिखे गये ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८८३ (भाग २) के एक ही पत्र से भले प्रकार हो जायेगा। ऋ० द० लिखते हैं—

"यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, किन्तु घास काटता है। इस के नमूने के लिये एक पत्र भेजते हैं। जिसकी उसने भाषा बनाई है और बड़ी भूल करी है कि जिसका पदार्थ है कुछ, और भाषा कुछ बनाई है। और भावार्थ संस्कृत के अनुसार और पूरी भाषा भी नहीं बनाई।" द्र०—भाग २, पृष्ठ ६११ पं० ७-११।

इस से स्पष्ट है कि इन के द्वारा किये गये भाषानुवाद और मुद्रण पत्र-संशोधन में बहुत भूलें हुईं। यह स्थिति तो ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेद-भाष्य के उस भाग की है, जो ऋषि दयानन्द के जीवन काल में छपा तथा जिसकी प्रेस कापी तैयार हो गई थी। परन्तु दोनों भाष्यों का अधिकांश भाग ऐसा है, जिसकी ऋ० द० केवल संस्कृत भाष्य की पाण्डुलिपि (रफ कापी) ही लिख पाये थे। ऋषि दयानन्द ने उस रफ कापी को दुबारा देखा भी न था। भाषानुवाद भी नहीं हुआ था। ऐसा भाग ऋग्वेद का प्रथम मण्डल के १२५वें सूक्त से लेकर सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का और यजुर्वेद भाष्य के २३ वें अध्याय के ५१ वें मन्त्र से अन्त तक का है (द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ १०४३-१०४४ पर छपा ब्र० रामानन्द का पत्र)। दोनों भाष्यों का यह महत्तम भाग **केवल रफ कापी** के आधार पर छपा है। अत: यह कहां तक प्रमाण हो सकता है, इस पर विद्वज्जन स्वयं निर्णय लेवें। हमने संकेत-मात्र किया है। इस विषय में जो अधिक जानना चाहें, वे हमारे 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' का षष्ठ अध्याय देखें, वहां इस विषय में विस्तार से लिखा है।

वेदाङ्ग-प्रकाश के सम्बन्ध में

पं० भीमसेन और ज्वालादत्त के पत्रों से विदित होता है कि वेदाङ्ग-प्रकाश के विभिन्न भागों की रचना पं० ज्वालादत्त, दिनेशराम और भीमसेन प्रभृति ने की थी। उन में भी पं० भीमसेन का प्रधान हाथ था। इस विषय में निम्न पत्र द्रष्टव्य हैं—

पं० भीमसेन के पत्र—भाग ३, पूर्ण संख्या २७१, २८३, २६०,३०४।

पं० ज्वालादत्त के पत्र—भाग ३, पूर्ण संख्या २३६, २४०।

इस विषय में ऋ० द० के कतिपय पत्र द्रष्टव्य हैं। यथा—

भीमसेन के विषय में—'भीमसेन से कहो कि व्याकरण की पुस्तक लिख कर शुद्ध कर तैयार कर दे।' पूर्ण संख्या ६६४, भाग २, पृष्ठ ६६३, पं० २२-२३।

ज्वालादत्त के विषय में—'व्याकरण में नवीन रचना की कुछ आवश्यकता नहीं है।' पूर्ण संख्या ५१७, भाग १, पृष्ठ ५६८, पं० ४-५।

'जो इस (ज्वालादत्त) से आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। यहां भीमसेन आ जायेगा, तब उस से बनवा कर...।' पूर्ण संख्या ७१०, भाग २, पृष्ठ ७४२, पं० १०-११।

वेदाङ्गप्रकाश के विषय में पूर्ण संख्या ३०८, भाग ३, पृष्ठ ३८०, पं० १०-१४ द्रष्टव्य हैं।

वेदाङ्गप्रकाश के विषय में हमने 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' के नवम अध्याय में विस्तार से लिखा है।

वेदाङ्गप्रकाश का संस्कृत में निर्माण

पं० ज्वालादत्त के पूर्ण संख्या २३६, २४०, २४६(भाग ३, पृष्ठ ३२८-३२६ तथा ३४४) के पत्रों से प्रतीत होता है कि पं० ज्वालादत्त 'नामिक' की रचना संस्कृत में कर रहे थे। यह ऋ० द० के आदेश से कर रहे थे अथवा अपनी इच्छा से इसका कहीं से संकेत नहीं मिलता। हां, इतना कह सकते हैं कि ऋ० द० ने पं० ज्वालादत्त के पत्रों को पाकर किसी पत्र में संस्कृत में रचना करने का स्पष्ट निषेध नहीं किया। यह भी हो सकता है कि एतद्-विषयक पत्र हमें न मिला हो। ऋषि दयानन्द के पूर्ण संख्या ५१७ (भाग १, पृष्ठ ५६८) में पं० ज्वालादत्त को 'जिस नवीन रचना की अनावश्यकता' का निर्देश किया है (पूर्ण सं० ५१८, पृष्ठ ५६८ भी देखें) क्या उसका संकेत नामिक की संस्कृत रचना की ओर है? यह विचार-

णीय है। इस पत्र के उत्तर में लिखे गये पं० ज्वालादत्त के पूर्ण संख्या २३९ (भाग ३, पृष्ठ ३२८) को मिलाकर पढ़ने से यही संकेत मिलता है कि ऋ० द० का नवीन रचना के निषेध से तात्पर्य नामिक की संस्कृत भाषा में रचना से ही था।

ऋ० द० के अन्य ग्रन्थ

१–अष्टाध्यायी-भाष्य—इस ग्रन्थ की रचना आदि का उल्लेख ऋ० द० के अनेक पत्रों में मिलता है। यथा–भाग १, पृष्ठ १८७, पं० १३-१४; पृष्ठ २१३, पं० ५; पृष्ठ २४० पं० ८; पृष्ठ २६४, पं० १; पृष्ठ ३४२, पं० १७; पृष्ठ ३४३ पं० २२, पृष्ठ ४१९, पं० १३।

अष्टाध्यायी-भाष्य के सम्बन्ध में जयपुर के बाबू श्रीप्रसाद का पूर्ण संख्या १५५ (भाग ३, पृष्ठ १२३-२६) का पत्र बड़े महत्त्व का है। इसमें श्रीप्रसाद जी ने अष्टाध्यायीभाष्य की रचना कैसी होनी चाहिये, इस पर विस्तार से लिखा है। बा० श्रीप्रसाद के सुझाव बहुत उपयोगी हैं। पत्र पठनीय है।

ऋ० द० कृत अष्टाध्यायीभाष्य के सम्बन्ध में हमने 'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में विस्तार से लिखा है। यहां तो बा० श्रीप्रसाद के पत्र में अष्टाध्यायीभाष्य का उल्लेख होने से संकेत-मात्र किया है।

२–कुरान का आर्यभाषानुवाद—ऋ० दयानन्द के २४ अप्रेल १८७९ के पूर्ण संख्या ३१० (भाग १, पृष्ठ ३४२, पं० १५-१६) से ज्ञात होता है कि दानापुर के श्रीमाधोप्रसाद ने अपने ता० २० [अप्रेल १८७९] के पत्र में ऋ० द० से पूछा था कि **क्या कुरान का नागरी अनुवाद तैयार हो गया है?** (द्र०—पूर्ण संख्या १२८, भाग ३, पृष्ठ ९२, पं० १२)। इसके उत्तर में ऋ० द० ने लिखा था–**'कुरान नागरी में पूरा तैयार है अभी तक छापा नहीं गया'** (द्र०—भाग १, पृष्ठ ३४२, पं० १५-१६)।

यह कुरान का अनुवाद '**सं० १९३५ कार्तिक शु० ९ रविवार**' को पूर्ण हुआ था। यह बात इसके अन्तिम पृष्ठ पर संस्कृत भाषा में अङ्कित है (द्र०—भाग १ पृष्ठ ३४३ की टि० २, पं० २८-२९)। तदनुसार कुरान का यह अनुवाद ३ नवम्बर १८७८ को पूर्ण हुआ था।

ऋषि दयानन्द के **'अभी तक छापा नहीं गया'** लेख से विदित होता है कि वे इस अनुवाद को छपवाना चाहते थे। सत्यार्थप्रकाश के १४वें

समुल्लास की 'कुरान मत की समीक्षा' का आधार यही अनुवाद है।[1] यह अभी तक परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है।

'धर्मयुग' (बम्बई) के १५ फरवरी १९८० के अंक में 'आपका पत्र मिला' स्तम्भ में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' कृत कुरान के हिन्दी अनुवाद का उल्लेख है। लेखिका डा० उषा माथुर के अनुसार यह अनुवाद 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नामक पत्रिका के १८७७ ई० के खण्ड ५ के अङ्क १-२ में छपना आरम्भ हुआ था। इसका प्रारम्भिक स्वल्प भाग ही प्रकाशित हो सका।

ऋषि दयानन्द ने कुरान का जो हिन्दी अनुवाद कराया था वह ३ नवम्बर १८७८ को पूर्ण हुआ था। इस प्रकार सम्पूर्ण कुरान का प्रथम हिन्दी अनुवाद कराने का श्रेय ऋषि दयानन्द को ही है।[2]

ऋ० द० ने अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, और उस काल में उन्हें सम्पन्न किया, जब तत्कालीन अन्य व्यक्तियों का उस ओर ध्यान भी नहीं गया था। परन्तु अपने आपको उसका अनुयायी कहनेवाले आर्य जनों ने ऋषि दयानन्द के उन महत्त्वपूर्ण कार्यों का प्रचार प्रसार नहीं किया, पूर्ण उपेक्षा बरती। अतः उन कार्यों का श्रेय ऋषि दयानन्द को न मिलकर अन्य व्यक्तियों को मिला। यथा—स्वदेशी (खादी के) वस्त्रों का प्रचार, नमक कर कानून का विरोध, भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न, आर्यभाषा (हिन्दी) को राष्ट्रभाषा घोषित करना तथा उसका राज्यकार्य में प्रयोग के लिये प्रयत्न करना, जन्मगत जाति का विरोध, छुआछूत को दूर करने का प्रयत्न, भारतीय युवकों को कलाकौशल सिखाने के लिये प्रयास, गवादि प्राणियों के वध के प्रतिकार के लिये हस्ताक्षरान्दोलन चलाना आदि आदि।

यहां पर हमने ऋषि दयानन्द कृत उन्हीं ग्रन्थों के सम्बन्ध में संक्षेप से लिखा है, जिन का सम्बन्ध पत्र और विज्ञापन के प्रस्तुत तृतीय चतुर्थ भागों में छपे पत्रों के साथ है। जो महानुभाव ऋषि दयानन्द के लिखे वा

---

१. इस विषय में 'ऋ० द० स० के ग्रन्थों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में कई प्रमाण दिये हैं। द्र०—पृष्ठ ५३-५६ (द्वि० सं०)।

२. 'ऋ० द० स० के ग्रन्थों का इतिहास' के परिशोधित द्वितीय संस्करण (सं० २०४०=सन् १९८३) के पृष्ठ ५३ पर जो संख्या ३ की टिप्पणी छपी है, वह अनवधानतावश अशुद्ध लिखी गई है। उस में ऋ० द० के द्वारा कराये गये हिन्दी अनुवाद को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुवाद से ३ वर्ष पूर्व लिखा है, यह ठीक नहीं है।

लिखवाये समस्त ग्रन्थों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य जानना चाहें वे हमारा '**ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास**' नामक ग्रन्थ देखें। इस का प्रथम संस्करण सन् १९५० में छपा था और नया संशोधित परिवर्धित संस्करण इसी वर्ष सन् १९८३ में छपा है।

षड् दर्शनों का भाष्य

सेवकलाल कृष्णदास के पूर्ण संख्या ३७९ के पत्र में ऋ० द० को लिखते हैं—'**षड् दर्शनों का याथातथ्य भाषान्तर होगा तब ही शास्त्रों के नाम से जो पोलपाल चल रही है सो निर्मुल होगी।**' (द्र०—भाग ३, पृष्ठ पृष्ठ ४९५, पं० २-४)।

सेवकलाल कृष्णदास ने यह बात महाराणा उदयपुर के समाचारों के प्रसङ्ग में लिखी है (द्र०—वही, पृष्ठ ४९४, पं० २९)। पं० लेखराम कृत जीवनचरित(हिन्दी सं०) पृष्ठ ६०१ से ज्ञात होता है कि महाराणा सज्जनसिंह ने ऋषि दयानन्द को षड्दर्शनों के भाष्य छपवाने के लिये २० सहस्र रुपया देने का संकल्प प्रकट किया था। सम्भव है यह समाचार ऋ० द० ने सेवकलाल कृष्णदास को अपने १७ जनवरी १८८३ के पत्र में, जो सम्प्रति अनुपलब्ध है, लिखा होगा और उस पर सेवकलाल कृष्णदास ने अपने २० जनवरी १८७३ के उत्तर में उक्त विचार प्रकट किये होंगे। पं० लेखराम जी का लेख इस प्रकार है—

"दरबार ने स्वामी जी से कहा कि आप छः दर्शनों की टीका छपवा दें। इसके लिये मैं बीस हजार रुपये तक व्यय करूंगा।"

ऋषि दयानन्द ने इस के उत्तर में कहा—"**मैं इनकी टीका करना आवश्यक जानता हूं, वेदभाष्य के पश्चात् प्रबन्ध करूंगा।**" पं० लेखराम कृत जीवनचरित, पृष्ठ ६०१।

ऋषि दयानन्द की इस इच्छा की पूर्ति में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी, श्री स्वामी तुलसीराम जी, श्री पं० आर्यमुनि जी, श्री स्वामी वैदिकमुनि जी, श्री पं० राजाराम जी, श्री पं० उदयवीर जी प्रभृति अनेक विद्वानों ने योगदान किया। परन्तु पं० आर्यमुनि के अतिरिक्त सभी ने मीमांसा दर्शन को छोड़ कर शेष पांच दर्शनों पर ही अपनी टीका वा भाष्य लिखे। श्री पं० आर्यमुनि जी ने मीमांसा के छः अध्यायों तक भाष्य लिखा। हमारी दृष्टि में वह कर्मकाण्डीय पद्धति को ध्यान में रखकर नहीं लिखा गया।

श्री पं० मयाशंकर शर्मा (आणन्द) ने सम्पूर्ण मीमांसा शास्त्र की गुजराती भाषा में संक्षिप्त व्याख्या लिखी है। अब इस कार्य को श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री कर रहे हैं। मैं भी मीमांसा के शबरस्वामी विरचित भाष्य पर आर्षमतविमर्शिनी नामक हिन्दी व्याख्या लिख रहा हूँ। तीन अध्याय छप गये हैं चौथा अध्याय छप रहा है।

२--ऋषि दयानन्द के सहयोगी पण्डित

ऋषि दयानन्द के साथ काम करनेवाले पण्डितों में पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त और पं० दिनेशराम प्रमुख थे। इस प्रकरण में इन पण्डितों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के तथा इन पण्डितों के पत्रों से जो प्रकाश पड़ता है, उस के सम्बन्ध में संक्षेप से लिखा जाता है—

१—पं० भीमसेन

पं० भीमसेन सनाढ्य ब्राह्मण परिवार के थे। इन्होंने ऋ० द० द्वारा स्थापित फर्रुखाबाद की पाठशाला में लगभग ४ वर्ष तक अष्टाध्यायी-महाभाष्य पढ़ा था।[1] इन के सम्बन्ध में इन के अपने पत्रों से तथा ऋ० द० के पत्रों से निम्न प्रकाश पड़ता है—

(क) भीमसेन को केवल व्याकरण का ज्ञान था। ऋ० द० के पास आने तक उसने दर्शनशास्त्र नहीं पढे थे (द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या २१, पृष्ठ ११ पर छपा पत्र)। यही बात ऋ० द० के पत्रों से भी ज्ञात होती है। यथा—'भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढा है उतना ही उस का पण्डित्य है' (द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ५९६, पृष्ठ ६३९, पं० ११-१२) 'दूसरे पण्डित के पास न्यायदर्शन लगाके पूरा करले' (द्र०—भाग १, पूर्ण संख्या ४२१, पृष्ठ ४५४, पं० २६ तथा पृष्ठ ४५५, पं० १)।

(ख) वेदाङ्ग-प्रकाश के **सन्धिविषय**, **नामिक**, **कारकीय** भीमसेन ने बनाये थे (द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या २७१, पृष्ठ ३५७, पं० २१)। **स्त्रैण-ताद्धित** का वर्तमान रूप भी भीमसेन द्वारा प्रदत्त है (द्र०—वही पत्र, भाग ३, पृष्ठ ३५७, पं० ९ तथा भाग ३, पूर्ण संख्या २८३, पृष्ठ ३६४, पं० २-३)। **आख्यातिक** के पूर्व लेख में बहुत अदला बदली करके प्रस्तुत

---

१. द्र०—पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८०५।

रूप भीमसेन ने दिया है (द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या २८३, पृष्ठ ३६३, पं० १६-२२)।

(ग) **ऋ० द० के ग्रन्थों में अशुद्धियां निकालना**—पं० सुन्दरलाल अपने पूर्ण संख्या ३२२ (भाग ३) के पत्र में लिखते हैं—'[देवीप्रसाद मन्त्री आ० स०] आपकी बनाई पुस्तकों में भीमसेन से अशुद्धियां निकलवाया करें' (द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४०३, पं० ८-९)।

(घ) ऋ० द० ने भीमसेन को उस की अयोग्यता और दुःस्वभाव के कारण मार्ग० बदी ५, रवि, सं० १९३९ (=२८ जनवरी १८८३) को निकाल दिया था (द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ७४९, पृष्ठ ७८२, पं० १८)। इसका उल्लेख ऋ० द० के कई पत्रों में मिलता है। यथा—भाग २, पृष्ठ ८०४, पं० १६-१७; पृष्ठ ८०८, पं० १८-२१। इसी सम्बन्ध में स्वामी आत्मानन्द का भाग ३ में पूर्ण संख्या ४९५ पर छपा पत्र भी द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं—'भीमसेन के होने से आपके पास कोई नहीं रहेगा' (पृष्ठ ५८६, पं० २२)।

इसके अनन्तर कुछ मास पश्चात् के भीमसेन के लिखे पत्रों से ज्ञात होता है कि उसको अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ और उसने ऋ० द० से क्षमा मांगी और विरुद्धाचरण न करने का विश्वास दिलाया (द्र०—भाग ४, पूर्ण संख्या ५४३, पृष्ठ ६४३ तथा पूर्ण संख्या ५५१, पृष्ठ ६५९-६६१)। इसी सम्बन्ध में भाग ४ पूर्ण संख्या ५९४ का पृष्ठ ७२६ पर छपा ठा० जालिमसिंह का पत्र भी द्रष्टव्य है।

२—पं० ज्वालादत्त

पं० ज्वालादत्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार के थे। इन्होंने भी ऋ० द० द्वारा स्थापित फर्रुखाबाद की पाठशाला में व्याकरण का अध्ययन किया था।[1] इनके कार्य के सम्बन्ध में ऋ० द० के तथा इन के स्वतः के पत्रों से निम्न प्रकाश पड़ता है—

(क) ऋ० द० के कतिपय पत्रों से ज्ञात होता है कि वे पं० ज्वालादत्त के द्वारा किये गये वेदभाष्य के आर्य-भाषानुवाद से सन्तुष्ट न थे। यथा—

"अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, जैसे कि पहले बनाता था" द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ८९०, पृष्ठ ९०८, पं० १०-११)।

---

१. द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८०५।

"अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, किन्तु घास सी काटता है।········ पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ और बनाई है ······" (द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ८६३, पृष्ठ ६११, पं० ७-१०)।

"अब के भाषा में कई पद छोड़ दिये हैं। कहीं अपनी ग्रामणी भाषा लिख देता है। और (च) का अर्थ भी और करना चाहिये। वह भी नहीं करता" (द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ८९०. पृष्ठ ६०८, पं० १३-१५)।

इस अन्तिम सन्दर्भ के विषय में पं० ज्वालादत्त ने लिखा है—"कहीं कहीं बहुत चकार आते हैं तो भाषा की रीति में सब चकार नहीं लग सकते हैं।·········फारसी शब्दों के बचाने के लिये गमारू शब्द भी मिल जाये तो गमारू शब्द धर देता हूँ। जहां तक बच सकते वहां तक बचा भी देता हूँ" (द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या ३५१, पृष्ठ ४२६, पं० १७-२५)।

(ख) पं० ज्वालादत्त के अनेक पत्रों से ज्ञात होता है कि वह **नामिक** आदि ग्रन्थों की रचना पहले संस्कृत में करता था, पश्चात् आर्य भाषा में (द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या २३९, २४० तथा २४६ के पत्र)।

(ग) पं० ज्वालादत्त का व्याकरण का ज्ञान वा अभ्यास कम था (द्र०-भाग २, में ऋ० द० का पत्र पूर्ण संख्या ७१२, पृष्ठ ७४४, पं० २१ तथा पूर्ण संख्या ७१०, पृष्ठ ७४२, पं० ९-१०)।

(घ) ऋ० द० के पत्रों से ज्ञात होता है कि **आख्यातिक** का लेखन पं० ज्वालादत्त ने आरम्भ किया था, परन्तु उसे व्याकरण का बोध कम होने से भीमसेन से बनवाया (द्र०—भाग २, पूर्ण संख्या ७१०, पृष्ठ ७४२ पं० ८-१० तथा पूर्ण संख्या ७१२, पृष्ठ ७४४, पं० २१-२५)।

३—पंडित दिनेशराम

पंडित दिनेशराम भी ऋ० द० द्वारा स्थापित फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़े थे। इनका पूर्वनाम दुलाराम था। इन्हें ऋ० द० ने १५ रु० मासिक पर कासगंज की पाठशाला में अध्यापक बनाया था। दुलाराम के स्थान में दिनेशराम नाम ऋ० द० ने ही रखा था। द्र०—पं० लखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८०६।

ऐसा ही वर्णन पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित, भाग १, पृष्ठ

१२६ में मिलता है। कासगंज की पाठशाला संवत् १९२७ के आरम्भ[1] में स्थापित हुई थी। ऋ० द० के सं० १९३१, ज्येष्ठ सुदी १३ शुक्रवार (२९ मई १८७४) के पूर्ण संख्या ३७ के पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय पंडित दिनेशराम फर्रुखाबाद की पाठशाला में था (भाग १, पृष्ठ ४६-४७)। क्या वह उस समय पं० जुगलकिशोर के साथ अध्यापन कार्य करता था?

(क) पं० भीमसेन सं० १९३८ आश्विन शु० ६ गुरुवार (१९ सितम्बर १८८१) के पत्र में लिखता है—

"**दिनेशराम** आदि लोगों ने जैसा काशिका में लिखा है वैसा ही इन[2] पुस्तकों में लिख दिया बहुधा तो काशिका का संस्कृत ही रख दिया है। उसमें बहुतेरा महाभाष्य से विरुद्ध भी है।......" भाग ३, पूर्ण संख्या २७१, पृष्ठ ३५७, पं० १५-१८।

(ख) पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग २, पृष्ठ ६०५ में लिखा है—

"......ऐसे ही लोगों में **पण्डित दिनेशराम** था। इस का नाम दुलाराम था। स्वामीजी ने दिनेशराम नाम रखा था। वह फर्रुखाबाद की पाठशाला में सुबोध हो गया था और उन्होंने उसे कासगंज की पाठशाला में अध्यापक नियुक्त कर दिया था। वह था बड़ा कपटी **विषकुम्भं पयोमुखम्**। स्वामी जी के सामने वह उनकी भलाई[3] और पीछे बुराई करता। वह कहा करता था कि **मैं स्वामीजी के ग्रन्थों में इस प्रकार के वाक्य मिला दूंगा कि उन्हें प्रलय तक भी उनका पता न लगेगा।** यह नहीं कह सकते कि उसे इस पाप कर्म में सफलता हुई वा नहीं। स्वामीजी ने उस की दुष्टता ताड़ली और उसे अलग कर दिया।

यह वर्णन ७वीं बार काशी जाने अर्थात् सं० १९३६ कार्तिक सुदि ८

---

१. पं० लेखराम कृत जीवनचरित के अनुसार पाठशाला की स्थापना सं० १९२७ के चैत्र या वैशाख (=मार्च अप्रैल १८७७) में हुई थी (पृष्ठ ८०८)। पं० देवेन्द्रनाथ के लेखानुसार पाठशाला ज्येष्ठ सं० १९२७ में स्थापित हुई थी।

२. 'इन पुस्तकों' से सम्भवतः वेदाङ्गप्रकाश के किन्हीं भागों की ओर संकेत किया है।

३. यहां आगे पठित 'बुराई' शब्द के सन्निधान से 'भलाई' के स्थान में 'बड़ाई' शब्द होना चाहिये।

के सं० १९३७ वैशाख वदी ११ के मध्य का है। परन्तु भीमसेन के पूर्व निर्दिष्ट पूर्ण संख्या २७१ के पत्र से ज्ञात होता है कि पं० दिनेशराम सं० १९३८ में ऋ० द० के साथ कार्य कर रहा था। सम्भव है ऋ० द० ने पं० भीमसेन के समान ही इसे भी निकाल कर पुन: रख लिया हो अथवा जीवनचरित का लेख किसी और प्रसङ्ग का काशी-प्रवास प्रकरण में जुड़ गया हो।

पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६२८ के अनुसार ज्येष्ठ सुदी दशमी सं० १९२६ शनिवार (१७ जून १८६९) की रात में जो पौराणिक पण्डित स्वामी जी के निवास स्थान पर गये, उनमें पं० दिनेश-राम का नाम भी है। ये पं० दिनेशराम प्रकृत दिनेशराम नहीं हैं। क्योंकि प्रकृत दिनेशराम तो उस समय फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़ते थे और इसका नाम उस समय 'दुलाराम' था।

३--प्राचीन ग्रन्थों का अन्वेषण

ऋषि दयानन्द के जीवन-चरितों से विदित होता है कि वे अवधूत अवस्था में भी विचरण करते हुए भी वे जहां कहीं जाते थे और उन्हें किसी के संग्रह में प्राचीन ग्रन्थ विद्यमान होने का ज्ञान होता था तो वे उस संग्रह को देखते थे और उस काल तक अदृष्ट अथवा अपठित ग्रन्थों का अवलोकन-अध्ययन करते थे। यह बात उन्होंने स्वकथित वा स्वलिखित जीवन-चरित में टिहरी(गढ़वाल)के प्रसङ्ग में स्वयं इस प्रकार लिखा है---

और उन्हीं पण्डित जी से कुछ पुस्तकों ग्रन्थों का वृत्तान्त, जिन्हें मैं देखना चाहता था, पूछा किया और पता लगाता रहा कि यह ग्रन्थ इस नगर में कहां मिला सकते हैं.........। पृष्ठ १७ (दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, रालाकट्रस०)।

जब ऋषि दयानन्द कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए तब उन्हें प्राचीन अलभ्य ग्रन्थों की विशेष आवश्यकता पड़ी। इस लिये वे उनकी प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इस विषय का **'बनेड़ा'** स्थान का वृत्तान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। पं० लेखराम जी जीवनचरित में लिखते हैं—

(क) **सामवेद की संहिता स्वामी जी ने यहां नकल करवाई।** सम्भवत: रामानन्द ने लिखी थी।

(ख) स्वामी जी के पास तीन वेद अर्थात् ऋग् **यजु: साम तो स्वर सहित थे, परन्तु अथर्ववेद पर स्वर लगे हुए नहीं थे।**

(ग) हमारे सरस्वती भण्डार के निघण्टु से स्वामी जी ने अपने निघण्टु को मिलाया, एक दो शब्दों का भेद था सो स्वामी जी ने मिला कर ठीक कर लिया।

(घ) यजुर्वेद की **याज्ञवल्क्य शिक्षा** की भी उन्होंने यहां से नकल करायी थी।

द्र०— पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५६०-५६१,

यह उल्लेख ऋषि दयानन्द की वैदिक ग्रन्थों के अन्वेषण की कथा स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता है। यह वर्णन संवत् १७३८, कार्तिक कृष्णा १ से कार्त्तिक शुक्ला ४ (=१०-१६ अक्टूबर १८६१) का है।

(क) संख्या पर सामवेद की जिस हस्तलिखित प्रति के लिखवाने का उल्लेख है, वह सम्भवत: वही होगी, जिसका निर्देश उनके संग्रह के वेष्टन संख्या १० में '**सामवेद संहिता मूल पुस्तक १ लिखी हुई**' के रूप में निर्दिष्ट है।

(ख) संख्या पर उद्धृत अंश पर हमें कुछ सन्देह है। अथर्ववेद काण्ड १६ तक का **सस्वर** प्रकाशन राथ ह्विटनी द्वारा सन् १८५६ में हो चुका था। उसके आधार पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में कई मन्त्र उद्धृत हैं। तो क्या इसका अभिप्राय अथर्ववेद के किसी ऐसे हस्तलेख की ओर है जो उस समय उनके पास स्वररहित था? ऋषि दयानन्द के संग्रह में जो पुस्तकें थीं उनके १२–१६वें वेष्टन तक अथर्ववेद संहिता और उसके पद-पाठ के कई हस्तलेखों का उल्लेख मिलता है (द्र०–'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन परिशिष्ट' नामक संग्रह, पृष्ठ ५७ तथा 'ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास' परिशिष्ट १, सं० १६४० का सं०)। हां, सामवेद का एक संस्क-रण योरोप से बिना स्वर का छपा था। इससे सन्देह होता है कि कहीं साम और अथर्व के नाम में परिवर्तन तो नहीं हो गया?

(ग) संख्या पर निर्दिष्ट निघण्टु के पाठ संशोधन का उपयोग ऋषि दयानन्द ने स्वसम्पादित **निघण्टु** (मार्गशीर्ष शु० ४ सं० १६३६) के संस्क-रण में किया होगा। निघण्टु के विषय में हमने 'ऋ० द० सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' के दशम अध्याय में विस्तार से लिखा है। ऋ० द० के संगृहीत ग्रन्थों में निघण्टु के कई हस्तलिखित ग्रन्थ थे। द्र०—वेष्टन संख्या २६, ३१, ३२, ३४।

(घ) संख्या पर निर्दिष्ट याज्ञवल्क्य शिक्षा की प्रतिलिपि का उन के

संग्रह में नामतः उल्लेख नहीं मिलता। सौवर की भूमिका में याज्ञवल्क्य शिक्षा का एक श्लोक उद्धृत है। सौवर का लेखन काल भाद्र सुदि १३ सं० १९३६ है। हमारी जानकारी के अनुसार उस समय तक याज्ञवल्क्य शिक्षा कहीं से नहीं छपी थी। अतः बनेड़ा से प्रतिलिपि की हुई याज्ञवल्क्य शिक्षा से ही सौवर में उक्त श्लोक उद्धृत किया होगा।

ऋ० द० ने अनेक व्यक्तियों को विविध प्रकार के ग्रन्थों को ढूंढ कर भेजने के लिये लिखा था, परन्तु हमें इस विषय का उनका कोई पत्र उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु उन पत्रों के उत्तररूप कुछ पत्र मिले हैं, जिनसे इस विषय पर प्रकाश पड़ता है।

अथर्ववेद की टीका और ऋषि छन्द—सेवकलाल कृष्णदास के पूर्ण संख्या ३७९ (भाग ३, पृष्ठ ४६३) के पत्र से विदित होता है कि ऋ० द० ने अथर्ववेद का भाष्य करने के लिये अथर्ववेद के सायणभाष्य और उसके ऋषि देवता बोधक ग्रन्थों की प्राप्ति के लिए सेवकलाल कृष्णदास को लिखा था। इसी पूर्ण संख्या ३७९ के पत्र से ज्ञात होता है कि चाणोद-कन्याली (गुजरात) नामक ग्राम में परम्परागत कतिपय अथर्ववेदी गुजराती ब्राह्मण रहते थे। इसकी पुष्टि अथर्ववेदी हीरालाल के पूर्ण संख्या ५९० (भाग ४) के पत्र से भी होती है। उसमें लिखा है—'छेने छोकरा ने नर्मदा कीनारे गाम कन्याली अभ्यास साइ मुकवानी मरजी छे' (=छोटे लड़के को नर्मदा किनारे कन्याली में पढ़ाने के लिये भेजने की इच्छा है)। द्र०—पृष्ठ ७२२, पं० २२-२३।

पारस्कर गृह्यसूत्र सभाष्य—पूर्ण संख्या ५३५ के पं० छगनलाल (मसूदा) के पत्र से विदित होता है कि उन्होंने ऋ० द० की आज्ञानुसार पारस्कर गृह्यसूत्र और उसके भाष्य की पुस्तक किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण से लेकर ऋ० द० को भेजी थी (द्र०—भाग ४, पृष्ठ ६३६, ६३७)।

जैनमत के ग्रन्थ—ऋ० द० ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में जैन मत का थोड़ा सा खण्डन लिखा था। उससे जैनमतानुयायी पर्याप्त उत्तेजित-हुए थे। इस विषय में गुजरांवाला के जैनमतानुयायी ठाकरदास का ऋषि दयानन्द के साथ पर्याप्त पत्रव्यवहार हुआ। अन्त में ठाकरदास ने बम्बई में अदालती नोटिस भी भिजवाया। इस स्थिति को ध्यान में रख कर जैन-ग्रन्थों की खोज के लिये ऋ० द० ने बम्बई के सेवकलाल कृष्णदास को लिखा। सेवकलाल कृष्णदास ने बहुत प्रयत्न करके जैनमत

सम्बन्धी पचासों हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्रित करके ऋषि दयानन्द को भेजे थे। यह **सेवकलाल कृष्णदास** के **पूर्णसंख्या** २४१ के पत्र और साथ में दी गई पुस्तक-सूची (भाग ३ पृष्ठ ३३१-३३६) से स्पष्ट है। इसी पत्र के पृष्ठ ३३३ पर लिखे पुस्तकों के नामों की तुलना सत्यार्थप्रकाश (द्वि० सं०) की भूमिका के साथ करने से विदित होता है कि ऋ० द० ने इन ग्रन्थों का उल्लेख **सेवकलाल** कृष्णदास द्वारा उपलब्ध कराये गये ग्रन्थों के आधार पर ही किया था। स०प्र० के १२वें समुल्लास में जैनियों के जिन ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं उनके नाम भी पृष्ठ ३३६ में **'छपे हुए पुस्तक की यादी'** में उल्लिखित हैं। ऋ० द० ने सत्यार्थप्रकाश के १२वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखा है— 'बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री सेठ सेवकलाल कृष्णदास के पुरुषार्थ से [जैनमत के] ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। पृष्ठ ६२८, पं० ८-६, आ० स० श० सं० २।

अन्य पत्र-लेखकों द्वारा प्राचीन ग्रन्थों के सम्बन्ध में जिज्ञासा

ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि तथा ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका आदि ग्रन्थों को पढ़कर अनेक व्यक्तियों के हृदयों में प्राचीन आर्ष ग्रन्थ प्राप्त करने की लालसा जागृत हुई। इसलिये ऋ० द० को पत्र लिखनेवाले अनेक व्यक्तियों ने प्राचीन ग्रन्थों की उपलब्धि के लिये ऋषि दयानन्द को पत्र लिखे। यतः प्राचीन ग्रन्थ-सम्बन्धी जिज्ञासा ऋ० द० के ग्रन्थों को पढ़कर ही उन व्यक्तियों के हृदय में उत्पन्न हुई थी, अतः उन व्यक्तियों के पत्रों का उल्लेख करना भी अप्रासङ्गिक न होगा।

१–माया राजेन्द्रसिंह ने पूर्ण संख्या ३७४ (भाग ३, पृष्ठ ४५६-४५७) के पत्र में **"सामवेदीय ताण्डय महाब्राह्मण सभाष्य ······· षड्विंश ब्राह्मण और आरण्य संहिता सभाष्य ग्रा ·······** [1]कृत हो या **अन्य शास्त्रि कृत हो'** लिख कर इन्हें उपलब्ध करने की इच्छा प्रकट की है।

२–पं० प्रभुदयाल पूर्ण संख्या ४१३ (भाग ३) के पत्र में लिखते हैं— **'वशेषिक दर्शन सूत्र बहुत तलाश किया परन्तु नहीं मिला ······· आप की अनुग्रह द्वारा कहीं से मिल सकै तौ मूल्य कृपा करकै लिखिये** (पृष्ठ ५०६, पं० ७-१०)।

३–शामदास (अमृतसरी) पूर्ण संख्या ६१४ के पत्र में पूछते हैं—

---

१. बिन्दुओं वाला रिक्त स्थान का पत्रांश नष्ट हो गया है।

षड्दर्शनों के के एक भाष्य नै (=नहीं) मिलते सो आप को मालूम होगा कि कहीं वे सब भाष्य छपे हुए मिल सक्ते हैं या नै। और जो जो गृह्यसूत्र श्रौतसूत्र आपने लिखे हैं[1] वे सब प्राय: नहीं मिलते। इस्वास्ते यह आशा है कि आप के पास तो वे सब पुस्तक हैं······ आयुर्वेद का धन्वन्तरि कृत निघण्टु नहीं मिलता सो आपको मालूम होगा कि कहीं छपा है या नहीं और नै छपा तो आप के पास तो होगा आर लिखने वास्ते दे सकोगे······" (भाग ४, पृष्ठ ७४५, पं० ४-११)।

इसी प्रसङ्ग में तीन और ग्रन्थों के सम्बन्ध में पत्र लेखकों ने ऋ० द० ने जो जानकारी प्राप्त करनी चाही थी, उस का निर्देश नीचे किया जाता है—

४—**ललिताप्रसाद** पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज मेरठ ने पूर्ण संख्या २८८ के पत्र में बम्बई के शरीफ स्वालह मुहम्मदी पुस्तकालय में **वेदस्वर विधान** नामक पुस्तक का उल्लेख करते हुए इस को देखकर खरीद कर भेजने के लिये लिखा है (भाग ३, पृष्ठ २७०)। यह पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई।

५–शाहपुराधीश **नाहरसिंह** ने पूर्ण संख्या ३३१ के पत्र में **पोपलीला** नामक पुस्तक को भेजने के लिये लिखा है,'आपके किसी शिष्य की बनाई' लिखा है (द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४१३, पं० ६-७)।

पोपलीला पुस्तक का उल्लेख ऋ० द० के १३ मई सन् १८८२ के पत्र में भी मिलता है (द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६९४, पं० ७)।

पोपलीला नाम की एक पुस्तक **जगन्नाथ**कृत व्रजभूषण यन्त्रालय मथुरा में सन् १८८७ में छपी थी। यह आर्य समाज फर्रुखाबाद के पुस्तकालय तथा परोपकारिणीसभा के वैदिक पुस्तकालय अजमेर के संग्रह में है। उक्त संस्करण पर 'जगन्नाथ वेदमतानुयायी द्वारा विरचित और प्रकाशित' छपा है। क्या यह जगन्नाथ मुन्शी इन्द्रमणि का सहायक जगन्नाथ है अथवा उससे भिन्न, यह विचारणीय है। इसके साथ ही यह भी विचारणीय

---

१. पं० शामदास ने यह पत्र ऋ० द० कृत सत्यार्थप्रकाश अन्तर्गत पठन-पाठन-विधि तथा संस्कारविधि में निर्दिष्ट ग्रन्थों को ध्यान में रखकर लिखा है। इन का संक्षिप्त परिचय भाग ४, पृष्ठ ७४४ की टिप्पणी २ में देखें।

है कि ऋ० द० के १३ मई १८८२ के पत्र में जिस **पोपलीला** का उल्लेख है, यदि यह मुन्शी इन्द्रमणि के साथी जगन्नाथ द्वारा रचित है, तो वह उस समय लिखी गई होगी जब मुन्शी इन्द्रमणि का ऋ० द० के साथ विरोध नहीं हुआ था। मुंशी इन्द्रमणि और जगन्नाथ के साथ विरोध का आरम्भ सन् १८८२ के द्वितीय चरण में 'आर्यमतप्रश्नोत्तरी' पुस्तिका को लेकर आरम्भ हुआ था। यदि यह **पोपलीला** वस्तुत: मुंशी इन्द्रमणि के साथी जगन्नाथ की लिखी हुई है तो यह सन् १८८१ में लिखी गई होगी। मथुरा का सन् १८८७ का संस्करण उसी का पुन: संस्करण होगा। नये प्रकाशक की दृष्टि से उस पर 'प्रथम संस्करण' लिखना भी उपपन्न हो सकता है। हमारा विचार है कि इस पुस्तक के सम्बंध में और अनुसंधान होना चाहिये।

६—**सुखराम त्र्यम्बकराम** के पूर्ण संख्या २८५ के पत्र में '**दयानन्द सरस्वति नु ं भाषण**' नाम की पुस्तक का उल्लेख मिलता है। पत्र के लेखक ने पूछा है कि यह आपकी कौनसी पुस्तक है (द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३६८, पं० २-५)।

यह पुस्तक ऋ० द० के पूना नगर में दिये गये १५ व्याख्यानों का गुजराती भाषा में अनुवाद रूप है। पूना के व्याख्यान प्रथम बार व्याख्यानकाल (सन् १८७५) में प्रतिदिन मराठी में अनूदित होकर छपते थे। अत: उक्त पुस्तक मराठी भाषा में छपे १५ व्याख्यानों का गुजराती अनुवाद है। अनुवाद किसने किया, कब छपा, यह अज्ञात है। सुखराम त्र्यम्बकराम ने अपने पत्र में इसकी उपस्थिति अहमदाबाद की 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी' में लिखी है। हमने स्वयं दो बार जाकर इसकी खोज की, परन्तु हमें उपलब्ध नहीं हुई।

हिन्दी में पूना के व्याख्यानों का जो अनुवाद 'उपदेशमञ्जरी' और 'पूना-प्रवचन' के नाम से छपा है, वह अत्यन्त भ्रष्ट है। हमने गत वर्ष सन् १८८२ में इसके मराठी पाठ से सीधा शुद्ध अनुवाद प्रकाशित किया है। इसमें बम्बई के कुछ प्रवचनों का सार भी साथ में छापा है। अत: इसको **पूना-बम्बई प्रवचन** के नाम से प्रकाशित किया है।

यह प्रकरण अधूरा रहेगा यदि हम ऋषि दयानन्द के प्राचीन ग्रन्थों के अन्वेषण सम्बन्धी कार्य से प्रेरित हुए तीन विशिष्ट व्यक्तियों का उल्लेख न करेंगे। अत: उनके विषय में अतिसंक्षेप से लिखा जाता है—

१—**श्री पं० लेखराम जी**—पण्डित लेखराम जी उर्दू फारसी के ज्ञाता

थे। जब वे ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर पहुंचे तो ऋ० द० ने उन्हें उपदेश देते हुए **अष्टाध्यायी** (मूल) की पुस्तक दी थी। तदनन्तर पं० लेखराम जी ने आर्यभाषा और संस्कृत का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। ऋ० द० ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पठन-पाठन-विधि के अन्तर्गत वैशेषिक दर्शन पर **प्रशस्तपादभाष्य** पढ़ने का निर्देश किया है। इस प्रशस्तपाद-भाष्य को बड़े यत्न से प्राप्त करके पं० लेखराम जी ने प्रथम बार लाहौर के विरजानन्द यन्त्रालय में छपवाया था। इस पर छपा है—

श्रीयुतपंडितलेखरामेण महत्परिश्रमेणान्विष्य श्रीमत्पण्डितगणेशदत्त शास्त्रिणः सकाशादानीतम्।

पुस्तक पर मुद्रण काल का निर्देश नहीं है। इसकी एक पूर्ण प्रति गुरुकुल चित्तौड़ के पुस्तकालय में है (मैंने दी थी) और दूसरी अधूरी हमारे पास विद्यमान है।

२—**पं० कृपारामजी शर्मा** (श्री स्वामी दर्शनानन्द जी)—श्री पं० कृपाराम जी ने प्राचीन ग्रन्थों के अन्वेषण और प्रकाशन में अभूतपूर्व कार्य किया था। उन्होंने काशी में प्रेस की स्थापना करके काशिका, महाभाष्य सदृश बड़े और छोटे लगभग ४० ग्रन्थ छपवाये थे। प्रायः वे निर्धन छात्रों को विना मूल्य दे देते थे। आपने इस कार्य पर अपनी निजी सारी सम्पत्ति जो लगभग ५० हजार[1] रुपये की थी, व्यय कर दी। यह थी पं० कृपाराम जी की '**घर फूंक तमाशा देख**' प्रवृत्ति।

३—**पं० भगवद्दत्त जी**—ऋषि दयानन्द के जीवनचरित तथा ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त करके श्री पं० भगवद्दत्त जी ने प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान, प्रकाशन और भारतीय प्राचीन इतिहास को सत्य प्रमाणित करने में अपनी सारी आयु लगा दी। पंजाब में अनुसन्धान कार्य के ये ही मूल प्रवर्त्तक थे। इन्हीं के सान्निध्य से उस समय के अनेक व्यक्ति इस कार्य में प्रवृत्त हुए थे। उनके इस साहसिक प्रयत्न से लाहौर उस समय अनुसन्धान-कार्य का मुख्य केन्द्र बन गया था।

आर्य समाज में अब यह 'प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान और प्रकाशन की प्रवृत्ति' लुप्त हो गई है। जब तक इस को पुनरुज्जीवित नहीं किया जायेगा, ऋषि दयानन्द का अनुसन्धान कार्य अधूरा ही रहेगा। वैदिक

१. उस समय के ५० हजार रुपये आज के ३०-४० लाख के बराबर होते हैं।

वाङ्मय का संरक्षण और प्रचार उनके वेद-प्रचार का मुख्य आधार है। इसी के आधार पर ऋषि दयानन्द प्रदर्शित वेद-भाष्य के नियम और उन के द्वारा पुनरुज्जीवित वैदिक धर्म के मन्तव्य आधृत हैं। अब आर्यसमाज की एतद्विषयक उदासीनता यहां तक बढ़ गई है कि स्वामी करपात्री जी विरचित वेदार्थ-पारिजात नामक महद् ग्रन्थ में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर किये गये आक्षेपों के समाधान के लिये भी हमारी शिरोमणि सभाएं मार्जारकपोत[1] न्याय के आश्रयण में ही अपना तथा आर्यसमाज का कल्याण समझ रही है। ऐसी दशा में कबूतर की जो गति होती है, वही समाज की भी होगी।

४--भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल का प्रशिक्षण

ऋषि दयानन्द देश की चहुंमुखी उन्नति के लिये आवश्यक समझते थे कि भारतीय नवयुवक विदेशों में जाकर आधुनिक कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त करें। उन्होंने जर्मन के कुछ व्यक्तियों से इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार भी किया था। द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ पंक्ति—४७६,३३-३४; ४८२,५; ४८५,१६; ५११,१; ५२१,११,१३; ५६०,१७-२२ तथा ५६१,१॥

ऋ० द० के पत्रों के उत्तर में जर्मनी के जी० वाइज नाम के प्राध्यापक के ६ पत्र तीसरे भाग में छपे हैं। उन से विदित होता है कि जी० वाइज महाशय भारतीय आर्य नवयुवकों को कला कौशल सिखाने में कितनी रुचि रखते थे।[2] ऐसा सुअवसर प्राप्त होने पर भी ऋ० द० का यह स्वप्न पूरा नहीं हुआ। इस का प्रधान कारण यह था कि ऋ० द० लाला मूलराज पर बहुत विश्वास करते थे और इस विषय में वे उनकी सम्मति चाहते थे। परन्तु खेद है लाला मूलराज ने ऋषि दयानन्द को यह सम्मति दी कि भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल सीखने के लिए

---

१. बिल्ली को देखकर कबूतर अपनी आंखें बन्द करके समझता है कि मैं बिल्ली को नहीं देखता तो बिल्ली भी मुझे नहीं देखती होगी। फल यह होता है कि बिल्ली कबूतर को खा जाती है।

२. प्रा० जी० वाइज के पत्रों में निर्दिष्ट विविध विषयों का उल्लेख हम आगे करेंगे।

विदेश भेजने की आवश्यकता नहीं है।[1] हमारा तो विश्वास है कि लाला मूलराज ब्रिटिश सरकार की ओर से ऋ० द० के कार्यों पर निगरानी रखने के लिये नियत किये गये थे। अन्यथा वे देशोन्नति के आधारभूत कला-कौशल के प्रशिक्षण जैसी महत्त्वपूर्ण योजना का विरोध न करते।

५--पत्र-लेखकों द्वारा पूछे गये विविध प्रश्न

ऋ० द० को लिखे गये पत्रों में अनेक व्यक्तियों ने विविध प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का ऋ० द० से अनुरोध किया है। उन्हें हम दो भागों में बांट सकते हैं—एक शास्त्र-विषयक प्रश्न, दूसरे सामान्य प्रश्न। हम इनका क्रमशः उल्लेख करते हैं—

शास्त्र-विषयक-प्रश्न

(१) **अयोगवाह-विषयक प्रश्न**—संस्कृत भाषा में स्वीकृत ६३ वा ६४ वर्णों में कुछ वर्ण **अयोगवाह** कहाते हैं। पं० ब्रजमोहनलाल शर्मा[2] पूर्ण संख्या ३१९ के पत्र में लिखते हैं—"आप से वेद शाखा तथा शाखान्तर गत अयोगवाह वर्ग के विषय में कुछ प्रश्न पूछना है ....पूछने की आज्ञा देकर अपना नाम सार्थक कर.........।' द्र०--भाग ३, पृष्ठ ४००, पं० २२-२४ तथा पृष्ठ ४०१, पं० १।

इस पत्र का ऋषि दयानन्द का उत्तर हमें प्राप्त नहीं हुआ। शास्त्रों में अयोगवाह वर्ग में ८ अक्षर गिने गये हैं—अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और नासिक्य चार यम। प्रथम चार वर्णों का स्वरूप निर्विवाद है। यमों के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियां हैं। वर्णोच्चारण शिक्षा से चार यम गिनाये हैं—ँ अनुनासिक चिह्न, ह्रस्व ॕ, दीर्घ ॰ और ळ अक्षर। इसकी भूमिका में 'कुं खुं गुं घुं यम नहीं है' ऐसा लिखा है। वर्णोच्चारण शिक्षा के सातवें प्रकरण में **पलिक्क्नी चक्ष्ग्नतुर्जग्मिम-र्जघ्नुः** इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हुए सं० १९३६ के संस्करण में

---

१. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४५९, भाग १, पृष्ठ ५१०-५११।

२. प्रस्तुत भाग ४, परिशिष्ट ४, पृष्ठ ७९६ पर श्री मामराज जी की इस पत्र पर जो टिप्पणी छपी है, उससे ज्ञात होता है कि पं० ब्रजमोहनलाल शर्मा ऋषि दयानन्द के सहपाठी थे।

'**त इमे यमाः**' ऐसा पाठ छापकर उक्त शब्दों में आये द्वितीय क् ख् ग् घ् को यम कहा है। तदनन्तर द्वितीय संस्करण (सन् १८८६) में **त इमेऽयमाः** ऐसा पाठ बनाकर उक्त अक्षरों की यम संज्ञा नहीं है, ऐसा लिखा है। वर्णोच्चारण शिक्षा में दर्शाये गये यमों में ँ यह अनुनासिक चिह्न स्वतन्त्र वर्ण नहीं है, यह स्पष्ट है। यह अ आ इ ई य् ल् आदि के सानुनासिक उच्चारण को दर्शाने के लिये अँ आँ इँ ईँ यँ् लँ् के रूप में लगाया जाता है। ह्रस्व ᳲ और दीर्घ ᳳ को भी किसी शास्त्रकार ने स्वतन्त्र वर्ण नहीं माना है। यह माध्यन्दिनी संहिता में अनुस्वार के दो प्रकार के उच्चारण के लिये अक्षर से आगे प्रयुक्त होने वाले चिह्न हैं। यह माध्यन्दिनी संहिता में जब अनुस्वार के आगे **र श ष स ह** ये पांच वर्ण होते हैं, तभी प्रयुक्त होता है। क्योंकि इन्हीं अक्षरों के परे रहने पर माध्यन्दिनी संहिता में अनुस्वार शुद्ध रूप में रहता है, अन्य व्यञ्जनों के परे उसे नित्य परसवर्ण **ङ् ञ् ण् न् म्** आदेश हो जाते हैं[1] (द्र०-हमारे द्वारा सम्पादित वा प्रकाशित 'माध्य-न्दिन-पदपाठ' परिशिष्ट ३)। 'ळ' अक्षर का उच्चारण जिस जिस प्रान्त की भाषा वा बोलियों में होता है, वहां इसका निरनासिक ही उच्चारण होता है। यमों का उच्चारण सानुनासिक माना गया है।

यम चार हैं वा बीस हैं? इस में भी विवाद है। सामान्य रूप से **कुँ खुँ गुँ घुँ यमाः** में चार का ही निर्देश है परन्तु इनमें उच्चरित उकार सभी वर्गों के सस्थान (=समान स्थानीय प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ) वर्गों का उपलक्षक है, ऐसा कहा गया है—**तेषामुकारः सस्थानवर्गीयोप-लक्षकः**। इस प्रकार पांच वर्गों के ५×४=२० यम होते हैं। इस शास्त्रीय तत्त्व को न समझने वाले आधुनिक विद्वानों ने माध्यन्दिन संहिता के पाठों में भी परिवर्तन कर दिया है। यथा **पत्नी** के स्थान में **पत्क्नी**, **आत्मा** के स्थान में **आत्क्मा, यज्ज्ञ** के स्थान में **यज्ग्ज** आदि,

यदि अयोगवाह विषयक प्रश्न का ऋ० द० का लिखा उत्तर-पत्र प्राप्त हो जाता तो इसका समाधान सहज हो जाता।

---

१. इस शास्त्रीय नियम की परीक्षा के लिये माध्यन्दिन संहिता के वैदिकों का पाठ द्रष्टव्य है। यथा निर्णयसागर, वेङ्कटेश्वर प्रेस की छपी पत्राकार संहिता अथवा उसके हस्तलेख। योरोपियन संस्करणों तथा उसके आधार पर छपे वैदिक यन्त्रालय आदि के छपे संस्करण प्रमाणभूत नहीं हैं। इनमें वैदिक पाठ में जहां नित्य परसवर्ण इष्ट है वहां भी अनुस्वार छाप दिया है। यह वैदिक पाठ की दृष्टि से अशुद्ध है।

२—मन्त्र-प्रतीक विषयक प्रश्न—बुलाकीराम गुप्त पूर्ण संख्या ३०५ के पत्र में लिखते हैं–"संस्कारविधि में दिये गये (यउदकेनेहृतीति) (अदिति केशान्) (औषधे त्रायस्वैनम्) प्रतीकों को पूरा पूरा लिखवाकर डाक द्वारा भिजवा दें।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३८६, पं० ८-१३। ये प्रतीकें संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३२) के चूडाकरण संस्कार में पृष्ठ ४७, पं० ७, ८, १२ पर निर्दिष्ट हैं।

३—पं० रमादत्त पूर्ण संख्या ५५९ के पत्र में पूछते हैं—

"(हिरण्यवर्णां हरिणी) यह श्रीसूक्त वेदानुकूल है वा प्रतिकूल। इस को कितने बार पढ़ने, कितनी आहुति देने से लक्ष्मी प्राप्त होती है। कृपा करके इसका उत्तर प्रसाद कीजिये सार्थ शुद्ध पाठ की १५ ऋचा कहां प्राप्त होंगी ? द्र०—भाग ४, पृष्ठ ६७२।

इस पत्र का उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पन्द्रह ऋचा वाले श्रीसूक्त (लक्ष्मीसूक्त) की संस्कृत व्याख्या ऋ० द० ने सं० १९३१ में प्रकाशित 'सभाष्यसन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधि' के अन्त में छपवाई थी। द्र०–दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह (रालाकट्रसं०) पृष्ठ ३५८-३६४।

४—यज्ञ में पशुबलि विधान विषयक प्रश्न—(क) पं० प्रभुदयाल पूर्ण संख्या ४१३ के पत्र में पूछते हैं—"मीमांसा दर्शन में बलिप्रदान का विधान किया है, वह वेदवाक्यानुसार है।.........जो वाक्यार्थ में भ्रम होय तो कृपा करके लिखिये।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५०६।

ऋ० द० ने इस पत्र का उत्तर पं० प्रभुदयाल को लिखा था। मूल पत्र तो नष्ट हो गया, परन्तु उस पत्र का जो भाव उन्होंने पं० भगवद्दत्त जी को लिख कर भेजा था, उसे हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ८०६, भाग २, पृष्ठ ८३६ पर छापा है। पाठक उसे अवश्य देखें।

(ख) पं० छुड़ाराम पूर्ण संख्या ५५८ के पत्र में पूछते हैं—"आपु कु प्रश्न पूछते हे सो आप सन्दे मिटाणा हमारा। कोई एसा कहते हे के वेद में पशुबधकरणा कहा है, परन्तु हमारे मांनणे मे आई नहि तब उसने कहा के वेद प्रमाण हे............होता यक्षदग्निॸ स्विष्टकृत्तम..........."। द्र०—भाग ४, पृष्ठ ६७०, पं० २८ से।

इस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने दिया वा नहीं, हमें ज्ञात नहीं। दिया भी होगा तो हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

यज्ञ में पशुयज्ञविषयक दो पत्र पूर्ण संख्या १६० तथा ३७४ के और हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध ऋ० द० कृत सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के साथ है। इस विषय में हम पूर्व पृष्ठ १०-१३ पर विचार कर चुके हैं, अतः यहां नहीं लिखते।

५—**अकाल मृत्यु के सम्बन्ध में प्रश्न**—कुन्दनलाल गुप्त पूर्ण संख्या ५०४ के पत्र मे पूछते हैं—"आयु के विषय मे इस दास कू भ्रम है अर्थात् अकालमृतु है वा नहीं और यत्न करके मृतु का निवारण होता है वा नहीं। यदि जो निवारण है तो यत्न से मृतु का सम्भव नहीं हो सक्ता और जो निवारण नहीं [तो] औषधी ब्रह्मचर्यादिक किस लिये है ? इस का सन्देह निवारणार्थ विस्तारपूर्वक पत्र शीघ्र भेजिये क्योंकि इस अनुचर कू यह निश्चय है कि अकाल मृतु नहीं है।" द्र०–भाग ३, पृष्ठ ५६५।

पत्र लेखक ने काल-मृत्यु और अकाल-मृत्यु सम्बन्धी विचार अति संक्षेप मे सुन्दर रूप में उपस्थित किये है। ऋ० द० ने इस पत्र का उत्तर दिया था वा नहीं, हमें ज्ञात नहीं। दिया भी होगा तो हमें उपलब्ध नहीं हुआ। यदि ऋ० द० का इस पत्र का उत्तर प्राप्त हो जाता तो आर्य-समाज में एतद्विषयक जो दो पक्ष पनप रहे हैं, वे न पनपते।

साधारण प्रश्न

१—कन्हैयालाल चौबे पूर्ण संख्या २५५ (भाग ३, पृष्ठ ३५०) के पत्र में तीन प्रश्न करते हैं—

क—सन्ध्योपासना और गायत्र्यादि नित्यकर्म सब वर्णों के लिये अलग अलग हैं वा एक ही ?

ख—कायस्थ शूद्र है अथवा किस वर्ण में आते हैं ?

ग—मुसलमानादि वैदिकमत में आवें तो उनके साथ कैसा व्यवहार करें ?

इन तीनों प्रश्नों का उत्तर ऋ० द० ने १६ अप्रेल १८८१ के पूर्ण संख्या ५७० के पत्र द्वारा दिया है। द्र०—भाग २, पृष्ठ ६०६।

२—माई भगवती पूर्ण संख्या ३७५ के पत्र में पूछती है—'[पुण्य-पाप के तुल्यता होने पर मनुष्य जन्म मिलता है तो] पाप पुण्य की तुल्यता किस प्रकार लेनी मेरे को तो यह शङ्का है [आगे दृष्टान्त देकर पूछा है]।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४६०, पं० १५-१८।

३—महाराज कुमार भाया जगदम्बिका प्रतापबहादुरसिंह पूर्ण संख्या ६०५ में पूछते हैं—'क्षत्रिय का उपनयनकाल मुख्य और गौण दोनों बीत चुके हैं अब उस क्षत्रिय की श्रद्धा है कि धर्मशस्त्रोक्त कोई पाप ....[1] जाता है कि इस विषय [पर] कृपा करके आज्ञा फरमाइये।" द्र०—भाग ४, पृष्ठ ७३८।

४—शारदा मांगीलाल पूर्ण संख्या ६०६ में पूछते हैं—"आप ब्रह्म का रूप साक्षात् किसी दूसरे को देखा सकते हैं या नहीं और इस [नीचे दिये] चक्र का अर्थ जवाब पत्र का समझ कर देना।" द्र०—भाग ४, पृष्ठ ७४०।

५—मनोहरदास खत्री पूर्ण संख्या ३०० में पूछते हैं—"राम फटाका तिलक विशेष का नाम है वा नहीं। नहीं तो यह शब्द कैसा है।......... रामफटाका शब्द का निर्णय कृपापूर्वक अवश्य लिख भेजें।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३८०-३८१।

मनोहरदास खत्री, अवैतनिक सम्पादक भारतमित्र कलकत्ता ने १६ मार्च १८८२ के अंक में किसी ठेकेदार के प्रसङ्ग में उसे **रामफटाकाधारी** लिख दिया था। उस पर ठेकेदार नालिश करने को तैयार हो गया। अतः इस पत्र में 'रामफटाका' शब्द का अर्थ पूछा है।

विशेष—संख्या २-३-४-५ के उत्तर हमें प्राप्त नहीं हुए।

६—दयाराम (मुलतान) पूर्ण संख्या २३६ के पत्रांश में पूछते हैं—"नकशा मर्दुमशुमारी के खानों की पूर्ति किस प्रकार करें।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३२७।

इस प्रश्न के उत्तर में ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ५२३ (भाग १, पृष्ठ ५७०) के पत्र द्वारा 'नकशा मर्दुमशुमारी के खानों की पूर्ति किस प्रकार करें' इस का उल्लेख किया है। ऋ० द० का उत्तर प्रत्येक आर्य को जनगणना के समय ध्यान में रखना चाहिये।

६--संस्कृत और आर्यभाषा का प्रचार प्रसार

ऋषि दयानन्द ने संस्कृत और आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रचार प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन छेड़ा था। संस्कृत भाषा के लिये उन्होंने अपने जीवन काल में ६-७ संस्कृत पाठशालाएं प्रारम्भ की थीं। इनका द०

१. जहां बिन्दुएं हैं वहां मूल पाठ नष्ट हो गया है।

लेखराम जी द्वारा संकलित वर्णन इस भाग के अन्त में पांचवें परिशिष्ट में दिया है, तथा भाग १ के आरम्भ में पं० भगवद्दत्त जी द्वारा लिखित भूमिका का **पत्र और विज्ञापनों में ऋषि के उज्ज्वल विचार**' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ ५१-६७ तक देखना चाहिये। ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से तत्कालीन अनेक आर्यों ने संस्कृत और आर्यभाषा का अध्ययन किया था। ऐसे व्यक्तियों को ऋ० द० सदा उत्साहित करते थे। जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर का एक पत्र उद्धृत करते हैं। वे अपने पूर्ण संख्या ३६६ में लिखते हैं—"मुझे हिन्दी लिखनी नहीं आती यदि लिखता हूँ तो बहुत अशुध लिखी जाती है, जैसे इसी पत्र से विदित होगा।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४८१ पं० ३-४।

इस का ऋ० द० का साक्षात् उत्तर तो हमें उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु जवाहर सिंह ने अपने दूसरे पूर्ण संख्या ४११ के पत्र में ऋ० द० के वचन उद्धृत किये हैं—"गौरव है जबकि आप का अमृतवत मधुर वचन कि '**जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्य भाषा में लिखी यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी**" मेरे पास विद्यमान है।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५०४, पं० ८-१२।

ऐसे ही एक व्यक्ति श्री क्षेमकरणदास जी थे। इन्होंने राजकीय सेवा से निवृत्त होने के पश्चात् संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। वेदों का अध्ययन करके बड़ोदा के महाराजा कालेज से तीन वेदों की परीक्षा देकर उत्तीर्ण होकर **त्रिवेद** (त्रिवेदी) बने। आपने अथर्ववेद का, जिस पर सायण भाष्य भी पूरा उपलब्ध नहीं है, उत्तम भाष्य किया। इसी प्रकार (गोपथ ब्राह्मण जिस पर किसी ने व्याख्या नहीं लिखी थी, का भाष्य किया।

ये उदाहरण हैं प्राचीन आर्यों के संस्कृत और आर्य भाषा के सीखने की उत्कट इच्छा के।

संस्कृत भाषा में पत्रोत्तर की चाहना

१—पं० गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल देशमुख अपने पूर्ण संख्या ५२१ के पत्र में लिखते हैं—"हम इच्छा करते हैं कि **आप के पत्र हम कु सब संस्कृत में आवे सो इच्छा आप पूर्ण** कीजिये। इस से हम कु भी संस्कृत पत्रव्यवहार का मार्ग समजा जायेगा—इति विनतिः"। द्र०—भाग ३, पृष्ठ ६१२, पं० ११-१३।

पुनः ये ही महानुभाव पूर्ण संख्या ५५३ के अपने संस्कृत पत्र में लिखते हैं—"**इत उत्तरं संस्कृतपत्रप्रेषणकृपयाऽनुगृह्णातु स्वामिनिति** भवद्भ्यो विज्ञापनमस्ति।" द्र०—भाग ४, पृष्ठ ६६४, पं० १-२।

२—मालपति मदुरा, लङ्का के निवासी डी० ए० राजा पाकसा ऋ० द० के २७ फरवरी १८८३ के पत्र का उत्तर देते हुए अन्त में लिखते हैं—

"आइन्दा जब आप मुझे खत लिखें तो कृपा करके अगर आपको तकलीफ नहीं तो **बजाय अंग्रेजी के संस्कृत में लिखें।**" द्र०—पूर्ण संख्या ४४६, भाग ४, पृष्ठ ६४६, पं० ३-५।

निदर्शनार्थ दो पत्र उद्धृत किये हैं। ऐसी ही प्रार्थना अन्य व्यक्तियों ने भी की थी। आज हमारी दशा यह है कि हम लोग संस्कृतभाषा के प्रचार के स्थान में अंग्रेजी भाषा के प्रचार प्रसार में जी जान से लगे हुए हैं। ऐसे आर्यों को प्रभु सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे ये दयानन्द की इच्छा के विपरीत आचरण न करें।

७-ऋषि दयानन्द के दरबार में रंक से राजा तक

[साधारण जनता से लेकर राजा महाराजा भी ऋ० द० से किस-किस प्रकार की आकाङ्क्षाओं की पूर्ति चाहते थे, इस का निदर्शन नीचे कराया जाता है।]

ऋषि दयानन्द केवल योगी, महात्मा, महापण्डित, प्रगल्भवक्ता, देशोद्धारक तथा बड़े नेता ही नहीं थे, अपितु वे जन साधारण के विविध मनोरथों के पूरक भी थे। उनके दरबार में राजा-महाराजा, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, मूर्ख-विद्वान्, योगी-भोगी, अनुयायी विरोधी सभी बिना किसी हिचकचाहट के उपस्थित होते थे। वह उपस्थिति चाहे प्रत्यक्ष रूप में हो चाहे पत्रों द्वारा। उन का द्वार सभी के लिये खुला रहता था और सभी अपनी आकाङ्क्षाओं की पूर्ति में दृढ विश्वास रखते थे। ऋ० द० भी यथाशक्ति उनकी आकाङ्क्षाओं को पूर्ण करते थे। ऋषि दयानन्द को लिखे गये भाग ३-४ के उपलब्ध पत्रों में इस प्रकार के विषयों की सूची तो बहुत लम्बी है, तथापि इन में से निदर्शनार्थ ऐसे कुछ प्रसङ्ग उपस्थित करते हैं। यथा—

१. पूर्ण संख्या २० (भाग ३, पृष्ठ ६) पर छपे पूना के **महार-मांग आदि शूद्र-अतिशूद्र व्यक्तियों द्वारा** जुनागंज पेठ के मोमीणपुर में स्थित शूद्र-अतिशूद्रों की पाठशाला में सं० १९३२ आषाढ़ शुदि १३ शुक्रवार (१६ जुलाई १८७५) को **व्याख्यान देने की प्रार्थना।**

ऋषि दयानन्द ने इन शूद्रातिशूद्र व्यक्तियों की प्रार्थना स्वीकार करके १६ जुलाई १८७५ को पत्र में निर्दिष्ट स्थान पर व्याख्यान दिया था।

२—पं० कृपाराम पूर्ण संख्या २५४ के पत्र में लिखते हैं—'दांत मजबूत होने को औषधी लिखें।' द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३५० पं० ११-१२।

ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ५६८ के पत्र में दांत को मजबूत करने की औषधि लिखकर पं० कृपाराम की इच्छा पूर्ण की थी। द्र०—भाग २, पृष्ठ ६०६।

३—ठाकुर जालिमसिंह पूर्ण संख्या २६३ के पत्र में लिखते हैं—"एक जेब घड़ी मेरे वास्तै खरीदि करि कै भेजि देवै उसे वास्तै ३०) रुपै में भेजता हूँ।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३७५, पं० ७-८।

यह पत्र ऋ० द० को बम्बई भेजा गया था। ऋ० द० ने ठा० जालिमसिंह को घड़ी भिजवाई वा नहीं, इस का उल्लेख हमें नहीं मिला। यतः ठा० जालिमसिंह का ऋ० द० से बहुत निकट का सम्बन्ध था और उन्होंने घड़ी के लिये ३० रुपये भी भेजे थे, अतः घड़ी अवश्य भिजवाई होगी।

४—उदयपुर के पुरोहित उदयलाल ने उदयपुर निवास काल में ऋ० द० को बम्बई से घड़ी मंगा कर देने को कहा था। इस घड़ी को भेजने के लिये ऋ० द० ने सेवकलाल कृष्णदास को लिखा था और जोधपुर में लक्ष्मण गोपाल देशमुख[1] को भी कहा था।

इस के सम्बन्ध में दोनों ओर के अनेक पत्रों में चर्चा मिलती है। द्र०—भाग ३, पूर्ण संख्या ३७६ (पृष्ठ ४६१, पं० १०), ३७६ (पृष्ठ ४६३, पं० ८-११), ४७२ (पृष्ठ ५५७, पं० १८-२४), ५२१ (पृष्ठ ६११, पं० ११-१७ तथा पृष्ठ ६१२, पं० १-४)।

इसी प्रकार 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पूर्ण संख्या ८२८ (पृष्ठ ८५६), ८५७ (पृष्ठ ८७६), ८५६ (पृष्ठ ८७६, पं० १०), ८६७ (पृष्ठ ८८४), ८६८ (पृष्ठ ८८४) के पत्रों में मिलती हैं। इस से स्पष्ट है

---

१. ये श्री रा० ब० पं० गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र हैं। ऋ० द० से योग की प्रक्रिया सीखने के लिये अजमेर पहुंचे थे और वहां से उनके साथ जोधपुर गये थे।

है कि ऋ० द० अपने एक भक्त की कामना-पूर्ति के लिये कितने सजग रहते थे।

५—रामाधार वाजपेयी पूर्ण संख्या २६७ के पत्र में लिखते हैं—"अगर आप को परिश्रम्य न हो तो १४ अष्ट पहलू मूंगों के दाने भेज दीजिये जो कि वजन में १४ तोले के होंय।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३७८, पं० ७-९।

६—स्वा० ईश्वरानन्द पूर्ण संख्या ५७२ के पत्र में लिखते हैं—"जिला सिरसा, ग्राम फतिहाबाद का [बींभा नाम का] विद्यार्थी········[मेरा महाभाष्य और वेदाङ्गप्रकाश] चोर के ले गया है।········कभी कभी वह कहता था कि मैं बीकानेर जाऊंगा। हे स्वामिन् आपसे बीकानेर तो कुछ दूर नहीं स्यात् पुस्तक मिल ही जाये तो मगधीश श्रीयुत ज्ञानानन्दजी से कह कर पुस्तक को खबर जरूर मंगवायो जी।" द्र०—भाग ४, पृष्ठ ७००, पं० १४-२०।

७—जोधपुर-नरेश के मुंहलगे मरजीदान मुसलमान से सतायी जा रही जोधपुर-नरेश के अन्तःपुर की दासी ने भी अपने उद्धार के लिये ऋ० द० से याचना की थी। द्र०—पूर्ण संख्या ५९३ का पत्र, भाग ४, पृष्ठ ७२५।

८—महाराणा सज्जनसिंह का ईसाईयों के प्रचार से चिन्तित होना और उस के निवारण के लिए ऋ० द० से प्रार्थना करना। इस विषय में बारहट कृष्णसिंह का **आषाढ़ शुक्ला** ७ सं० १९४० का पूर्ण संख्या ४९३ का पत्र, भाग ३, पृष्ठ ५८३, पं० १६ से अन्त तक दर्शनीय है।

इस विषय को ऋ० द० ने बड़ी गम्भीरता से लिया और तत्काल ईसाई और मुसलमान मत का खण्डन थोड़ा सा लिख कर **आषाढ़ शुक्ला** १४ सं० १९४० को रजिस्ट्री से भेज दिया। द्र०—ऋ० द० का बारहट कृष्णसिंह को लिखा गया पूर्ण संख्या ८५९ का पत्र (भाग २, पृष्ठ ८७७-८७९)।

९—कच्छ के नाबालिग रावसाहब पर अंग्रेज सरकार की ओर से आई विपत्ति (सम्भवतः—राज्याधिकार से वंचित करना) में ऋ० द० से सहायता की याचना। यतः यह विषय अत्यन्त गोपनीय था, अतः इसका साक्षात् किसी पत्र में उल्लेख नहीं है, तथापि कच्छ दरबार के राणा जालमसिंह बम्बई में सेवकलाल कृष्णदास से मिले थे और स्वामीजी को

बुलाने के लिये दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों को स्वामीजी की सेवा में आगरा भेजा था। इसका संकेत पूर्णसंख्या २४५ के पत्र (भाग ३, पृष्ठ ३४१-३४४) में मिलता है। सम्भव है बुलाने को भेजे गये व्यक्तियों के साथ एतद्विषयक गोपनीय पत्र भेजा हो। ऋ० द० तो स्वयं बम्बई न पहुंच सके, परन्तु इस विषय में उन्होंने गोपालराव हरि देशमुख और महादेव गोविन्द रानाडे को पत्र भेज कर सहायता करने को लिखा था। द्र०—ऋ० द० का पूर्ण संख्या ५४३ का पत्र, 'पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ५८५। इसी प्रकार एक पत्र राणा जालमसिंह को भी लिखा था। द्र०—ऋ० द० का पत्र पूर्ण संख्या ५४२, भाग १, पृष्ठ ५८५।

अब हम अतिसंक्षेप से कतिपय विविध विषयों को नीचे संगृहीत करते हैं—

१०–द्वारकानाथ की जीविकार्थ कार्य की याचना—पूर्ण संख्या ५६८, भाग ४, पृष्ठ ६६१, पं० २६-३०; पृष्ठ ६६३, पं० ७-१४।

११—जीविका-निष्पादक उपाय सुझाने और विना मूल्य वेदभाष्य-भूमिका भेजने की प्रार्थना—पूर्ण संख्या ५७०, भाग ४, पृष्ठ ६६६, पं० १२-१५)।

१२—समर्थदान के पिता की समर्थदान का मासिक बढ़ाने की प्रार्थना—पूर्ण संख्या ४०६, भाग ३, पृष्ठ ४८७-४८८।

१३—नौकरी का प्रबन्ध करने के लिए छगनलाल द्विवेदी का पूर्ण संख्या ४६८ का पत्र, भाग ३, पृष्ठ ५७४-५७६।

१४—जागीर-सम्बन्धी झगड़े के समाधान के सम्बन्ध में रामानंदर जी शाह का पूर्ण संख्या ५३४ का पत्र, भाग ४, पृष्ठ ६३३-६३४।

१५—राजकुमारियों के सम्बन्ध (विवाह) की बातचीत का ख्याल रखें—पूर्ण संख्या ४२१, भाग ३, पृष्ठ ५१२, पं० १५-२०। राजा उदित-नारायण सिंह मथुरा का कितना इलाका है? कैसे हैं? सो लिखें—पूर्ण संख्या ४२२, पृष्ठ ५१३, पं० १६-१७।

दोनों पत्र छगनलाल द्विवेदी (मसूदा) के हैं। पूर्ण संख्या ४२२ में छगनलाल द्विवेदी ने लिखा है—उन्होंने (उदित नारायणसिंह के भाई बलदेवप्रसाद ने) कहा था कि **स्वामीजी महाराज मथुरा में आते हैं तब हमारे वहां ही ठहरते हैं।** इसका वर्णन हमें ऋ० द० के किसी जीवन-चरित में नहीं मिला।

१६—शाहपुराधीश के लिए अन्तरङ्ग मन्त्री के रूप में जवाहरसिंह को बुलाना—पूर्ण संख्या ४११, भाग ३, पृष्ठ ५००, पं० १८ से पृष्ठ ५०१ पं० २१ तक।

१७—शाहपुराधीश के लिये ओवरसीयर का प्रबन्ध करना—पूर्ण संख्या ४३१, भाग ३, पृष्ठ ५२२, पं० २८-२६।

१८—बिट्ठल भाणा को चाकरी का रुपया दिलाना—पूर्ण संख्या ४३६, भाग ३, पृष्ठ ५२८, पं० २१-२३। सेवकलाल कृष्णदास आदि के द्वारा रुपया न देने पर स्वयं ४० रु० का मनिआर्डर भेजना—द्र०—पूर्ण संख्या ४६०, भाग ३, पृष्ठ ५४७, पं० १६-२० तथा पूर्ण संख्या ४६३, पृष्ठ ५४८, पं० ६-८।

१६—शाहपुराधीश नाहरसिंह का अपनी भुवा को पत्र पहुंचाने के लिये ऋ०द० को लिखना—पूर्ण संख्या ४४४, भाग ३, पृष्ठ ५३२, पं० ४-६।

२०—उज्ज्वल जयकर्ण के पिता और महाराजा प्रतापसिंह के मध्य-वर्तमान मनमुटाव को दूर करना—पूर्ण संख्या ५१६, भाग ३, पृष्ठ ६०६, पं० १७ तथा पृष्ठ ६१०, पं० १।

२१—आर्य पञ्चाङ्ग तैयार करने में सहायता मांगना—पूर्ण संख्या ५१३, भाग ३, पृष्ठ ६०३-६०५।

२२—पं० कालूराम शर्मा पूर्ण संख्या २६ के पत्र में पूछते हैं—'वेदोक्त मार्ग को अब तक कितने मनुष्य स्वीकार कर चुके हैं?' (भाग ३, पृष्ठ १२, पं० ४)। इसके उत्तर के लिये ऋ० द० का पूर्ण संख्या ७८ (भाग १, पृष्ठ १०७) का पत्र देखें।

अशुद्ध दिनचर्या छापने की शिकायत

पं० गोपालराव हरि (फर्रुखाबाद) ने दयानन्द-दिग्विजयार्क में चित्तौड़ में महाराणा सज्जनसिंह का स्वामी जी से प्रति दिन दो बार मिलना छापा था। यह असत्य था। उस पर उस समय के प्रत्यक्षद्रष्टा साधु अमृतराम नवीन-वेदान्ती ने स्वामी जी को शिकायत भरा पत्र लिखा—द्र०—पूर्ण संख्या ४०७, भाग ३, पृष्ठ ४८६-४६६। ऋ० द० ने साधु अमृत-राम का पत्र अपने पूर्ण संख्या ८०३ (भाग २, पृष्ठ ८३४) के पत्र के साथ पं० गोपालराव हरि को भेजा और लिखा—'आप को मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं तो उस के लिखने में कभी साहस मत करो। क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है (पं० १०-१३)।

८--ऋषि दयानन्द और राजा महाराजा

भारत के इन्दौर प्रभृति राज्यों के कतिपय नरेशों के साथ ऋ० द० का सम्पर्क जनवरी सन् १८७७ में देहली-दरबार के समय हुआ था। वे सब राजा-महाराजाओं, उस समय के प्रमुख समाज-सुधारकों और विभिन्न सम्प्रदायों के प्रमुख नेताओं को एक मञ्च पर इकट्ठा करके देश जाति और समाज की उन्नति के लिये विचार विनिमय करना चाहते थे, परन्तु वे किन्हीं कारणों से उस समय इस कार्य में सफल नहीं हुए। अपने निरन्तर प्रचार कार्य में उनको भारतीय राजनीति के प्रमुख सूत्र **यथा राजा तथा प्रजा** का ध्यान आया। महाभारत में भी कहा है—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो मा भूत् राजा कालस्य कारणम्॥

इस विचार के उदय होते ही ऋषि दयानन्द ने विचार किया कि यदि भारत के कतिपय प्रमुख राजा-महाराजा वैदिक धर्म के अनुयायी बन जावें तो जनता पर उस का सीधा प्रभाव पड़ेगा। इस दृष्टि से उन्होंने प्रथम राजस्थान के राजाओं को वैदिक धर्म का उपदेश करने का कार्यक्रम बनाया।

राजस्थान के राजा-महाराजाओं में आर्यकुल-दिवाकर उदयपुर के महाराणा का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। इसका प्रमुख कारण है सिसोदिया-वंशज मेवाड़ के महाराणाओं का निरन्तर एक सहस्र वर्ष तक विधर्मी विदेशी आक्रमणकारियों से जूझते हुए अपनी स्वतन्त्रता का बनाये रखना। वैसे भी भारत के गत १२०० वर्षों के इतिहास में एकमात्र सिसोदिया वंश ही ऐसा रहा, जिसका निरन्तर एक सहस्र वर्ष से ऊपर अपनी मेवाड़ की भूमि पर आधिपत्य बना रहा। वीरता पराक्रम स्वदेश प्रेम और आत्मबलिदान के जैसे दृश्य मेवाड़ के अतीत इतिहास के पृष्ठों पर अङ्कित मिलते हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से मेवाड़ के महाराणाओं का पुराना इतिहास अत्यन्त गौरवमय रहा है।

मेवाड़ की गद्दी पर उस समय महाराणा सज्जनसिंह विराजमान थे। ऋ० द० का उन के साथ प्रथम परिचय सन् १८८१ में जब लार्ड रिपन चित्तौड़-खण्डवा रेलमार्ग का उद्घाटन करने चित्तौड़ आये, तब चित्तौड़ में हुआ था। महाराणा और ऋषि दयानन्द दोनों ही प्रथम मिलन में ही

एक दूसरे की विशिष्टता को समझ गये थे। अत: ऋ० द० जब राजा-महाराजाओं में वैदिक धर्म के प्रचार के लिये राजपूताने की ओर उन्मुख हुए तो सब से प्रथम उदयपुर पहुंचे। वहां वे सं० १९३९ श्रावण (द्वि०) कृष्णा १२ से फाल्गुन कृष्णा ६ (१० अगस्त १८८२ से २८ फर्वरी १८८३) तक लगभग साढ़े ६ मास रहे।

राजा-महाराजाओं को पढ़ाना

ऋषि दयानन्द ने राजा-महाराजाओं में वैदिक धर्म के प्रति स्थायी आस्था उत्पन्न करने, अविद्यान्धकार से आवृत उन के ज्ञान-चक्षुओं को उन्मुक्त करने तथा भारतीय राजनीति के अनुसार राज्यकार्य का बोध कराने के लिये छ: दर्शनों और मनुस्मृति के राजधर्म प्रकरण (अ० ७-८-९) के पढ़ाने का पाठ्यक्रम बनाया। दर्शन शास्त्रों के सामान्य ज्ञान के द्वारा उन में सदसद्विवेक की शक्ति उत्पन्न की और मनुस्मृति का राजधर्म प्रकरण पढ़ा कर उन्हें राजाओं के कर्तव्य का बोध कराया।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को छहों दर्शनों के प्रमुख प्रकरणों के अध्यापन के साथ ही मनुस्मृति के अ० ७-८-९ भी पढ़ाये। महाराणा सज्जनसिंह की सज्जनता एवं कुशाग्र बुद्धि से ऋ० द० बहुत प्रभावित हुए। इनके द्वारा ऋ० द० को अपने उद्देश्य की भारी सफलता का भान हुआ। उधर महाराणा भी ऋ०द० के सत्य निर्भीक उपदेश से बहुत प्रभावित हुए। ऋ० द० ने पढ़ाने के अतिरिक्त पत्रों के माध्यम से जो सदुपदेश दिये वे अत्यन्त दर्शनीय एवं मननीय हैं। इसके लिये 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग दो में छपा पूर्ण संख्या ८८१ का पत्र विशेषरूप से द्रष्टव्य है। आथर्वण हीरालाल (उदयपुर) के पूर्ण संख्या ५९० (भाग ४) के पत्र की **'आपनी आज्ञानुसार श्री दरबार मे प्रतीदिन दो वषत अग्नीहोत्र होता हे वीशे आप जेरी तथो बन्दोबस्त करो छे तेन परमांणे थयां जाय छे कांई पण कसर पड़तो न थी'** (पृष्ठ ७२२, पं० ११-१३) पंक्तियों से विदित होता है कि ऋ० द० ने महाराणा सज्जनसिंह के महल में अग्निहोत्र प्रारम्भ कराया था। भारत के दुर्भाग्य के कारण ऋ० द० के अन्तर्धान के कुछ समय पश्चात् ही महाराणा सज्जनसिंह का भी स्वर्गवास हो गया। कहते हैं अंग्रेज सरकार ने अप्रकट रूप में मन्द विष के सतत प्रयोग से उन्हें मरवा दिया, जिस से भेद न खुले। ऋ० द० के सम्पर्क में आये राजा-

महाराजाओं के साथ अंग्रेज सरकार ने जो व्यवहार किया वह एक इतिहास का महत्त्वपूर्ण भाग है। इस पर किसी इतिहासज्ञ को शोध करना चाहिये। ऋषि दयानन्द के विष देने की घटना भी इसी दुश्चक्र का एक भाग है।

शाहपुराधीश नाहरसिंह

यद्यपि शाहपुरा मेवाड़-राज्य का ही एक भाग था, परन्तु अंग्रेज सरकार ने उसे स्वतन्त्र राज्य का दर्जा दिला दिया था, केवल वर्ष में एक बार शाहपुराधीश को उदयपुर के दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। महाराजा नाहरसिंह में भी मेवाड़ के सिसोदिया वंश का रक्त था। अतः वे भी ऋ० द० की ओर विशेषरूप से आकृष्ट हुए। उदयपुर निवासकाल में ही उन्होंने शाहपुरा पधारने का निमन्त्रण दिया था। तदनुसार ऋ० द० उदयपुर से शाहपुरा पहुंचे। वहां संवत् १९३९, फाल्गुन कृष्णा १४ से सं० १९४० ज्येष्ठ कृष्णा ४ (८ मार्च १८८३ से २६ मई १८८३) तक लगभग ढाई मास शाहपुरा रहे। शाहपुराधीश को छहों दर्शनों के प्रमुख प्रकरण और मनुस्मृति के अ० ७-८ पढ़ाये (द्र०—पूर्ण संख्या ४२१, भाग २, पृष्ठ ५१२, पं० २-९) और योग का अभ्यास भी कराया) द्र०—पूर्ण संख्या ४०४, भाग ३, पृष्ठ ४८६, पं० ११-१३)।

शाहपुराधीश पर ऋ० द० का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे पूर्णतया वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये। ऋ० द० ने उन्हें वैदिक कर्मकाण्ड में विशेषरूप से प्रवृत्त करने के लिए दर्शपूर्णमास आदि श्रौतयाग करते रहने की प्रेरणा दी। यह रीति उनके कुल में निरन्तर प्रचलित रही।

शाहपुराधीश की निर्भयता

महाराणा सज्जनसिंह के स्वर्गवास होने पर उनके निस्सन्तान होने के कारण देलवाड़ा के फतहसिंह राजराणा उदयपुर की गद्दी पर बैठे। यद्यपि ये भी ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आये थे और इनका ऋ० द० के साथ पत्र-व्यवहार भी हुआ था (द्र०—पूर्ण संख्या ३४६ तथा ३७३, भाग ३) परन्तु इन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। शाहपुराधीश नाहरसिंह को यद्यपि अंग्रेज सरकार ने राजा की उपाधि प्रदान कर दी थी, परन्तु उन्हें मेवाड़ के जागीरदार के नाते वर्ष में एक बार दरबार में उपस्थित होना पड़ता था। एक बार प्रसङ्गवश महाराणा फतहसिंह ने शाहपुराधीश को कहा आपने अपने पुरखों का धर्म क्यों छोड़ दिया? नाहरसिंह ने विनयपूर्वक कहा—'महाराणा जी मैंने अपने पुरखों का धर्म नहीं

छोड़ा, आपने छोड़ा है'। महाराणा ने कहा कैसे ? नाहरसिंह ने २-३ दिन का समय मांगा और अपने सेवक को सांडनी से शाहपुरा भेजकर सत्यार्थ प्रकाश की वह प्रति मंगवाई, जिस पर महाराणा सज्जनसिंह ने हस्ताक्षर करके शाहपुराधीश को दी थी। उसे महाराणा फतहसिंह के हाथों में देते हुए कहा कि आप के पूर्वज महाराणा ने मुझे यह ग्रन्थ दिया है सो मैं तो उनके धर्म पर ही चलता हूँ।

यह घटना शाहपुरा में राजकुमारों को धर्मशिक्षा देने के लिये नियुक्त श्री पं० भगवान्स्वरूप जी, जो पीछे वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता बने, ने सुनाई थी। माननीय पण्डितजी ने सत्यार्थप्रकाश की उक्त ऐतिहासिक प्रति को शाहपुरा से लाकर परोपकारिणी सभा को दिया था। यह परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है। मैंने स्वयम् इसे देखा है।

रावराजा मसूदा (अजमेर)

अजमेर जिले के अन्तर्गत **मसूदा** एक छोटा टिकाना था। इसके रावराजा बहादुरसिंह भी ऋषि दयानन्द के अनुयायी बन गये थे। प्रथम बार ऋ० द० सं० १९३५ मार्गशीर्ष सुदी ८ से पौष कृष्णा १ (=२—१० दिस० १८७८) तक केवल ९-१० दिन ही मसूदा रहे थे। इस बार सामान्य परिचयमात्र ही हुआ। दूसरी बार जब ऋ० द० मसूदा पधारे तो सं० १९३८ आषाढ़ कृष्णा १२ से भाद्र कृष्णा ९ (=२३ जून से १८ अगस्त १८८०) तक लगभग २ मास मसूदा रहे। इस बार उनके विविध विषयों पर १९ व्याख्यान तथा दो शास्त्रार्थ हुए। एक जैन साधु सिद्धकरण के साथ लिखित शास्त्रार्थ हुआ और दूसरा ब्यावर के बाबू बिहारीलाल ईसाई के साथ राव बहादुरसिंह का साधारण शास्त्रार्थ हुआ। इसकी मध्यस्थता ऋषि दयानन्द ने की थी[1]। इस बार राव बहादुरसिंह ऋषि दयानन्द के पक्के अनुयायी बन गये, परन्तु ऋ० द० उन्हें पढ़ाने का उपक्रम न कर सके। पुनः मसूदा आकर पढ़ाने का संकल्प ऋ० द० ने किया था (द्र०—पूर्ण संख्या ४२१, भाग ३, पृष्ठ ५१२ पं० २-३)। ऋ० द० शाहपुरा से मसूदा जाना चाहते थे, परन्तु रावराजा प्रतापसिंह और तेजसिंह का जोधपुर का बुलावा आ जाने से वे मसूदा न जाकर जोधपुर चले गये। जोधपुर से लौटकर मसूदा के रावराजा बहादुरसिंह

१. दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह पृष्ठ १८६, पं० ६-८।

को षड्दर्शनों का मुख्य मुख्य विषय और मनुस्मृति का राजधर्म-प्रकरण पढ़ाना चाहते थे। मसूदा के छगनलाल द्विवेदी के पूर्ण संख्या ५९८ (भाग ४, पृष्ठ ७२९) के पत्र से ज्ञात होता है ऋषि दयानन्द ने आश्विन मास (सं० १९४०) की किसी तिथि को मसूदा पहुंचने की तथा ब्यावर स्टेशन पर सवारी भेजने को लिख दिया था, परन्तु आश्विन बदी १३ (सं० १९४०) को जोधपुर में भारी वर्षा हो जाने से उन्होंने दूसरा पत्र लिखा कि अभी ८-७ दिन आना न हो सकेगा। यह पत्र ऋ० द० ने आश्विनी बदी १३ शनिवार (२९ सितम्बर) को ही लिखा होगा क्योंकि २९ सितम्बर की रात को ही उन्हें दूध में मिलाकर विष दिया था। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर शारीरिक स्थिति बिगड़ती गई और ३० अक्टूबर १८८३ को उनका निधन हो गया। इस प्रकार राव बहादुरसिंह की पढ़ने की और ऋ० द० की पढ़ाने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

जोधपुर नरेश यशवन्तसिंह

रावराजा तेजसिंह (जोधपुर) ऋ० द० के भक्त थे। वे जोधपुरनरेश यशवन्तसिंह के दुराचरण से दुःखी थे। वे चाहते थे कि ऋ० द० जोधपुर पधारें और महाराजा यशवन्तसिंह को उपदेश देवें, जिससे जोधपुर-नरेश दुर्गुणों से मुक्त होवें। उन्होंने महाराजा प्रतापसिंह से सम्मति करके और जोधपुर नरेश की अनुमति लेकर ऋ० द० को जोधपुर बुलाया। अनुमति देते समय जोधपुर नरेश ने ऋ० द० को अन्य साधु संन्यासी समान ही समझा होगा। अस्तु। जोधपुर आने पर ऋ० द० को म० यशवन्तसिंह के वेश्यागमन आदि विविध दुर्गुणों का ज्ञान हुआ। उन्होंने इस विषय में जोधपुरनरेश को ३-४ पत्र लिखे (द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पूर्ण संख्या ८७२, ९११ तथा अप्राप्त)। इन पत्रों से ऋ० द० की अदम्य निर्भीकता का परिचय मिलता है। आगे का इतिहास सब को विदित ही है। ऋ० द० सं० १९४० ज्येष्ठ कृष्ण १० से आश्विन शुक्ला १५ (=३१ मई से १८ अक्टूबर १८८३) तक लगभग ४ मास १० दिन जोधपुर रहे। इस बीच जोधपुर नरेश केवल ३-४ बार ऋ० द० की सेवा में उपस्थित हुए। यहां ऋषि दयानन्द का आना केवल निष्फल ही नहीं हुआ, उन्हें सदुपदेश के कारण विषपान भी करना पड़ा और यही उनके स्वर्गवास का कारण बना।

महाराजा प्रतापसिंह के आचार विचार में भी कुछ न्यूनता थी। इनके

विषय में महात्मा कालूराम पूर्ण संख्या ४५५ के पत्र में लिखते हैं—"मेरी अल्प बुद्धि मे अैसा आता है कि कधी ! प्रतापसिंह जी के ईसाई मत की आग्रे होवे तो आ[प नर]मता के साथ अैसिरित्ती से खण्डन किजिये इस मत का अ[सर] फेर कबी नै जमः।.........." द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५३९, पं० १८-२१।

ऊपर उदयपुर, शाहपुरा, मसूदा और जोधपुर के नरेशों के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, उसका तृतीय चतुर्थ भाग में स्वल्प वर्णन है, विशेष वृत्त जानने के लिये ऋ० द० के द्वारा इन नरेशों को लिखे गये पत्र दूसरे भाग में देखें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थान के चार राज्यों में से ३ राज्यों के आधीशों पर ऋ० द० की शिक्षा का प्रभूत प्रभाव पड़ा था। यदि महाराणा सज्जनसिंह का असामयिक निधन न होता तो राजस्थान का इतिहास ही भिन्न होता। अस्तु

१–क्षत्रियों के उत्थान के लिये क्षात्रशाला की योजना

उस समय देशी राज्यों के राजकुमारों वा सरदारों के पुत्रों की शिक्षा प्राय: अंग्रेजों की देखरेख में मेयो कालेज अजमेर, राजकुमार कालेज राजकोट प्रभृति स्थानों में होती थी। यह कार्य भी अंग्रेजों का भारतीय राजा-महाराजाओं को दास बनाये रखने के षड्यन्त्र का एक भाग था। इससे उन कालेजों में अध्ययन करनेवाले राजकुमार अनेक व्यसनों में फंस जाते थे अथवा उन्हें जानबूझ कर व्यसनी बनाया जाता था। जिससे वे न केवल दास ही बनते थे, अपितु भारतीय संस्कृति, सभ्यता और देश-प्रेम की भावना से भी रहित हो जाते थे।

ऋषि दयानन्द अंग्रेज सरकार के इस षड्यन्त्र से भले प्रकार परिचित थे। इसलिये राजकुमारों को इस महादोष से बचाने के लिये ऋ० द० ने महाराणा सज्जनसिंह तथा शाहपुराधीश नाहरसिंह को अनेक बार **क्षात्र-शाला** स्थापित करने की प्रेरणा दी।

ऋषि दयानन्द ने चित्तौड़ में प्रथम समागम के समय ही महाराणा सज्जनसिंह को **राजकुमार पाठशाला** स्थापित करने को कहा था। द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ६३९, भाग २, पृष्ठ ६६९, पं० २२-२४। इसके अनन्तर ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ८८१ में लिखा था—

"........**दूसरा १२५०००) सवा लाख रुपये क्षात्रशाला**.......**के लिये और २०००००) दो लाख वहां के क्षत्रिय सरदारों से लेकर क्षात्रशाला स्थापन शीघ्र कीजियेगा। इससे ऐसा समझिये कि जानो एक गवर्नर जनरल साहेब और आये थे॥**" भाग २, पृष्ठ ८९९, पं० १२-१९।

ऋ० द० ने महाराणा सज्जनसिंह को जिस प्रकार के शब्दों में क्षात्रशाला स्थापित करने को लिखा है वे ऋ० द० की दूरदृष्टि और प्रत्येक कार्य के प्रति जागरूकता को प्रकट करते हैं।

इसी प्रकार शाहपुराधीश नाहरसिंह को भी क्षात्रशाला स्थापित करने के लिये प्रेरित किया था। पूर्ण संख्या ८३४(भाग २, पृष्ठ ८६०, पं० १०) में ऋ० द० पूछते हैं—'**क्षात्रशाला का आरम्भ हो गया होगा।**'

ऋषि दयानन्द के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के साथ यह सदुद्योग भी भारत के मन्दभाग्य तथा ऋ० द० की असामयिक मृत्यु से पूरा न हो सका। ऋ० द० के पश्चात् उनका न कोई ऐसा शिष्य था और न कोई सर्वतोमुखी प्रतिभावाला विद्वान् वा संन्यासी ही ऐसा प्रकट हुआ जो ऋषि दयानन्द के अधूरे रहे कार्यों की ओर ध्यान देता।

१०--गोरक्षा के लिये प्रबल आन्दोलन

ऋषि दयानन्द **ने गोरक्षा** के लिए केवल **गोकरुणानिधि** ग्रन्थ **की** ही रचना नहीं की, अपितु उन्होंने इस **महत्तम** कार्य के लिये '**हस्ताक्षर कराने**' का एक देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ किया था। यह उनके तथा उनको अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखे गये विविध पत्रों से स्पष्ट है। इस विशिष्ट कार्य के लिये उन्होंने राजा से रङ्क तक सभी वर्गों के व्यक्तियों **को** प्रेरित किया था। उनकी **एक करोड़ हस्ताक्षर** कराके गोरक्षा के लिये ब्रिटिश-साम्राज्ञी विक्टोरिया को एक सशक्त ज्ञापन प्रस्तुत करने की योजना थी। यद्यपि यह महत्त्वपूर्ण कार्य उनके असामयिक **निधन से** पूरा न हो सका, फिर भी इस कार्य के आद्य प्रवर्तक ऋ० द० ही थे, यह तो विदित होता ही है।

भारत के भाग्य-विधातारूप गो-रक्षा कार्य के लिये ऋषि दयानन्द के प्रयत्न से जन साधारण से लेकर राजा महाराजा तक कितने प्रभावित हुए थे। इसके परिज्ञान के लिये हम यहां केवल उन व्यक्तियों के नाम और उनके द्वारा कराये गये हस्ताक्षरों की, जो संख्या भाग ३-४ के पत्रों में उपलब्ध होती है, निर्देश करते हैं—

१–शाहपुराधीश नाहरसिंह द्वारा	४००००	पृष्ठ ४१२
२–गोपालराव हरि (फर्रुखाबाद)	७२०००	पृष्ठ ४२१
३–कटिला की ठकुरानी साहिबा	६३०३	पृष्ठ ४४३
४–जालिमसिंह (रूपधनी)	१००००	पृष्ठ ४४३
५–सेवकलाल कृष्णदास (बम्बई)	१५३२०	पृष्ठ ४६३

"पण्डित कालूराम शर्मा के प्रयत्न से गोरक्षा का बन्दोबस्त रावराजा सीकर के इलाके के ५५५ ग्रामों में चन्दा सालाना हो गया है। रामगढ़, लक्ष्मणगढ़, फतेपुर इन में रुपया कुछ हो गया है।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३१८, पं० ८-११।

इनके अतिरिक्त होल्कर (इन्दौर), रतलाम, बीकानेर, जेसलमेर (भाग ४, पृष्ठ ६४४, पं० ११-१२), जैपुर, बूंदी, कोटा आदि राज्यों में भी गोरक्षार्थ हस्ताक्षर कराने का प्रयत्न हो रहा था। जयपुर के महाराजा की ओर से गौवों के राज्य से निकासी पर लगाये गये प्रतिबन्ध के विषय में ठाकुर नन्दकिशोर ने पूर्ण संख्या २३५ के पत्र में ऋ० द० को लिखा था—"कालूराम जी का जयपुर आना सफल रहा। जयपुर में गो-वध निषेध का प्रबन्ध हो गया है। जयपुर के महाराजा की ओर से गौवों का निर्यात नहीं होगा।" द्र०-भाग ३, पृष्ठ ३८४, पं० ११-१३।

महाराणा सज्जनसिंह ने गवादि उपयोगी पशुओं की हत्या बन्द करने के विषय में जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह को पत्र लिखा था। उसके उत्तर में जोधपुरनरेश ने लिखा था—

"म्हारी प्रजा १४, ६१, १५६ हिन्दू ने, १, ३७, ११६ मुसलमान या तीन पशु (गाय, बैल और भैंस) नही मारिया जावणरा प्रबन्ध में खुशी है और मैं पिण रजामन्द हां। सं० १९३९, पोष बदि ५

खास मुहर

दस्तखत—राजराजेश्वर महाराजाधिराज
जसवन्तसिंह, मारवाड़, जोधपुर

यह पत्र हमारे स्वर्गीय मित्र ठाकुर जगदीशसिंह गहलोत ने अपने 'राजपूताना का इतिहास' भाग १ के पृष्ठ २८७ पर उद्धृत किया है। सं० १९३९, पौष बदि ५ को शुक्रवार २९ दिसम्बर सन् १८८२ था। इन दिनों में ऋ० दयानन्द उदयपुर में थे।

मुंशी समर्थदान पूर्ण संख्या ५३१ के पत्र में लिखते हैं—"गोवध

निवारणार्थ हस्ताक्षर कराने में देर क्यों होती है? लार्डरिपन के जाने का समय निकट चला आता है। इनके गये पीछे कुच्छ न होगा। जो कुच्छ अच्छा होना है सो इन्हीं के समय में होगा।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ६२६, पं० १६-२१।

पूर्ण संख्या ५४५ के पत्र में मुंशी समर्थदान ने फिर यही बात लिखा है। द्र०—भाग ४, पृष्ठ ६४५, पं० ७-६।

ऋषि दयानन्द का यह कार्यक्रम भी उनकी असामयिक मृत्यु के कारण पूर्ण न हुआ।

आशा थी कि भारत के स्वतन्त्र होने पर गोवध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लग जायेगा। क्योंकि म० गांधी गोवध की स्वराज्य होने पर कल्पना भी नहीं कर सकते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि मुझे कोई १ घण्टे के लिये डिक्टेटर बना दे तो सबसे प्रथम काम गोहत्या बन्दी का करूंगा। परन्तु खेद है महात्मा गांधी के नामलेवा कांग्रेसी जनों और उसके नेताओं ने जिस प्रकार संविधान में हिन्दी के राष्ट्रभाषा के स्वीकृत हो जाने पर भी ३६ वर्ष के सुदीर्घ काल में अंग्रेजी-भक्ति के कारण उसकी उपेक्षा की और कर रहे हैं तथा जैसे महात्मा गांधी के मद्यनिषेध के स्थान में मद्य को राष्ट्रिय आय का स्रोत मानकर उसका प्रचार किया जा रहा है, उसी प्रकार गोमांस तथा चमड़े के निर्यात को विदेशी मुद्रा कमाने का साधन मानकर गोवध-बन्दी को टालती जा रही है। बापू का नामलेवी कांग्रेसी सरकार के ये तीनों कार्य जहां अत्यन्त गर्हित हैं, वहां मद्यबन्दी और गोवध-बन्दी न करने से भारतीय प्रजा के स्वास्थ्य को कितना नुकसान पहुंच रहा है उसकी ओर से भी आंखें मूंद कर रखी हैं। महात्मा गान्धी के उत्तराधिकारी विनोबा भावे भी मद्य-निषेध और गोवध-निषेध के लिये कहते-कहते स्वर्ग चले गये। नीतिकारों ने ठीक ही कहा है—**लोभश्चेदगुणेन किम्।**

११--तत्कालीन आर्यों का अदम्य साहस

ठा० रघुनाथसिंह और ठा० गोविन्दसिंह जयपुर राज्य के जागीरदार थे। ये दोनों ऋ० द० के शिष्य थे। जयपुर-नरेश के गुरु कोई मथुरा के ब्रह्मचारी थे। उन्होंने गौरीशङ्कर आदि २५ आर्यों की नामावली के साथ जयपुर-नरेश को पत्र लिखा—'तू गोपाल का भक्त है और यह दयानन्द सरस्वती की सभा के मनुष्य प्रतिमा-पूजन का खंडन करते हैं। इस कारण इनका भद्र कराकर (= सिर मुंडाकर) राज्य से बाहर निकाल दो।' पत्र

आकर जयपुर नरेश ने ठा० गोबिन्दसिंह और रघुनाथसिंह को बुलवाकर कहा क्या बात है ? इस पर ठा० रघुनाथसिंह ने कहा—'महाराज बेशक इन लोगों का भद्र कराकर निकालने चाहियें परन्तु इस में मेरा नाम प्रथम होना चाहिये । मैं स्वामी दयानन्द का प्रथम शिष्य हूँ । खैर कुछ चिन्ता नहीं अब तक आपकी आज्ञा से राज किया अब आपकी आज्ञा से इस रूप को धारण करेंगे' ।

पूर्ण संख्या ४०३ के पत्र का ४९४ वां ४९५ वां पृष्ठ पठनीय है। इससे उस समय के आर्यों के अदम्य साहस का ज्ञान होता है । इस पत्र के लेखक बिहारीलाल मन्त्री वैदिक धर्मसभा जयपुर ने उक्त प्रसङ्ग मे पूर्व लिखा है—'उस समय ठाकुर रघुनाथसिंह की क्षात्रवृत्ति ने प्रकाश किया और निश्शंक होकर कहा—महाराज बेशक ········।

आर्य समाज की स्थापना काल से लेकर अब तक धर्म देश जाति और समाज के लिये बलिदान हुए शतशः आर्यवीरों की बलिदान-गाथाओं के पीछे उनका धर्म देश जाति और समाज की रक्षा के लिये प्रेरणा करने वाला उनका अदम्य उत्साह ही था । आज यह उत्साह प्रतिदिन क्षीण हो रहा है । यह चिन्ता का विषय है ।

१२--तत्कालीन आर्यों का पारस्परिक सौहार्द और विरोध

ऋषि दयानन्द को लिखे गये भाग ३-४ में छपे पत्रों से जो प्रकाश पड़ता है, उसका ऊपर संक्षेप से उल्लेख किया है । यह उल्लेख तब तक अधूरा रहेगा, जब तक तत्कालीन आर्यों के कृष्णपक्ष का भी उल्लेख न किया जाये । इसी दृष्टि से इन पत्रों से तात्कालिक आर्यों के पारस्परिक सौहार्द और विरोध के जो स्वर उजागर होते हैं, उनका भी संक्षेप से नीचे उल्लेख करते हैं—

पारस्परिक सौहार्द

यद्यपि तत्कालीन आर्यों के पारस्परिक सौहार्द को उजागर करनेवाला एक ही पत्र है, पुनरपि वह उस समय के आर्यों के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण व्यवहार को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ है । दानापुर आर्यसमाज के मन्त्री

रामनारायणलाल अपने २-३ साथियों के साथ ऋ० द० के दर्शन करने और आर्यसमाज बम्बई के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए १९ या २० मार्च १८८२ को बम्बई पहुंचे थे। वहां से लौटते हुए कई स्थानों पर घूमते हुए आर्य व्यक्तियों से मिलते हुए वापस दानापुर पहुंच कर उन्होंने पूर्ण संख्या ३०६ (भाग ३) पर छपा पत्र ऋ० द० को लिखा था। उसमें वापसी यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा है—

"स्वामीजी महाराज जहां-जहां आर्य समाज में हम लोग गै वहां के सभासद् ऐसे प्रेम से वर्ते कि मैं समझता हूँ कि अपना कोई सहोदर भाई भी न करेगा।........" (द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३८८, पं० २१-२३

पारस्परिक विरोध

निश्चय ही उस समय के आर्यों में सौहार्द की भावना अत्यधिक थी, केवल 'आर्य' शब्द का अथवा 'नमस्ते' शब्द का प्रयोग वा श्रवण ही पारस्परिक ऐकात्म्यता के लिये पर्याप्त था। संसार में देव और असुर अथवा इनकी प्रकृति वाले पुरुष तो सदा रहे हैं और रहेंगे। इस दृष्टि से इन पत्रों से अनेक स्थानों के आर्यों में आसुर भाव अर्थात् पारस्परिक विरोध विद्वेष का पक्ष भी उजागर होता है। हम यहां उन पत्रों का उल्लेख न करके केवल उनका संकेत मात्र कर रहे हैं, जहां पारस्परिक कलह मनमुटाव आदि उत्पन्न हो गये थे। इस विषय में जो व्यक्ति देखना चाहें वे आर्यसमाज अजमेर के पं० मुन्नालाल और कमलनयन शर्मा तथा आर्यसमाज लखनऊ के पं० रामाधार वाजपेयी और पं० इन्द्रनारायण आदि के पत्र पढ़ें।

इसी प्रकार पूर्ण संख्या ४११ (भाग ३, पृष्ठ ५०३, पं० ४-१२) तथा पूर्ण संख्या ५८४ (भाग ४, पृष्ठ ७१६, पं० १२-१३) से ज्ञात होता है कि आर्यसमाज लाहौर और फर्रुखाबाद के आर्यों में भी यह प्रवृत्ति आरम्भ हो गई थी।

उत्तरवर्ती काल में यह विरोध की प्रवृत्ति अनेक रूपों में फैल गई। पंजाब में कालेज पार्टी और गुरुकुल पार्टी के रूप में, उत्तर प्रदेश में बाबू पार्टी और ब्राह्मण पार्टी के रूप में परस्पर विरोध उजागर हुआ। इस काल में परस्पर वैमनस्य होने से जहां आर्यसमाज को क्षति पहुंची, वहां फिर भी कुछ न कुछ कार्य होता रहा, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तो प्रत्येक आर्यसमाजी सब प्रकार से अनुशासन से मुक्त हो गया। इस ने अब तो छोटी-छोटा आर्यसमाजों तक यह पारस्परिक विरोध फैल गया

है। हम वेद की सांमनस्य भावना को सर्वथा भुला बैठे हैं। हमारा आचरण आर्यसमाज के नियमों और वेद की शिक्षाओं से सर्वथा विपरीत हो गया है। इस सब का मूल कारण आर्यसमाज के सन्मुख कर्तव्य (प्रोग्राम) का अभाव, स्वाध्याय में अरुचि और उसका अभाव तथा ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था के साथ-साथ लक्ष्मी की अथवा लक्ष्मीवान् व्यक्ति की पूजा है। जब तक आर्यों में तप, त्याग और ज्ञान की पूजा होती रही, यह एक सबल संगठन बना रहा। जब से लक्ष्मी की पूजा होने लगी तब से पौराणिक लक्ष्मीवाहन उल्लू के समान हम भी दृष्टिविहीन सदसद्-विचार-शून्य हो गये। और आपस में लड़ने-झगड़ने में अथवा किसी अधिकार विशेष की प्राप्ति के लिये निकृष्टतम साधनों का उपयोग करने लगे।

परमात्मा हम सबको सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे हम महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रतिबोधित वैदिक शिक्षाओं पर आरूढ़ होकर अपना और देश-जाति समाज का कल्याण करने में समर्थ हों, यही हमारी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है। सहस्रों वर्षों के पश्चात् दयानन्द जैसे सर्वतः प्रतिभा-सम्पन्न तपःपूत ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ने इस देश में जन्म लेकर हमें सुमार्ग दिखाया, परन्तु हमने उस महात्मा की शिक्षा को १०० वर्ष के भीतर ही विस्मृत कर दिया। जिस अन्धकूप से उसने हमें निकाला, उसी में हम पुनः गिर गये।

विभिन्न व्यक्तियों के पत्र-समूह

ऋषि दयानन्द को लिखे गये भाग ३-४ में छपे पत्रों में कुछ व्यक्तियों के पत्रों की संख्या अधिक है। उन में से कतिपय व्यक्तियों के पत्रों पर यहां संक्षेप से लिखते हैं—

१—कर्नल आल्काट और मैडम ब्लेवेस्तकी के पत्र

इन व्यक्तियों के कुछ प्रारम्भिक पत्र अमेरिका से लिखे गये थे। उन का प्रयोजन तो ऋ० द० से सम्पर्क जोड़ना था, परन्तु लिखे गये थे बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के नाम, जो बम्बई में वेदभाष्य कार्यालय के प्रबन्धक थे। तदनन्तर कुछ पत्र सीधे ऋषि दयानन्द को लिखे गये। इन पत्रों को देखने से स्पष्ट विदित होता है कि ये लोग ऋ० द० के प्रभाव से भारतवर्ष में थियोसोफिकल सोसाइटी को खड़ा करना चाहते थे। यतः इन का उद्देश्य ही स्वार्थपूर्ण था, अतः इन लोगों ने आरम्भ में ऋ०द० का

अपने यथार्थ मनोभावों एवं मान्यताओं के विषय में यथावत् न बताकर ऋ० द० की अनुकूलता प्राप्त करने के लिये वेद ईश्वर आदि के सम्बन्ध में अपने विचारों को गोलमालरूप में तथा समय पड़ने पर मिथ्यारूप में उपस्थित किया। परन्तु जैसे-जैसे इस अज्ञानान्धकार से आवृत भारत-भूमि में उनके पैर जमते गये अपना वास्तविक स्वरूप शनैः शनैः प्रकट करना आरम्भ किया। आरम्भ में इन व्यक्तियों के पत्रों और व्यवहार से ऋ० द० पर्याप्तरूप में प्रभावित हुए थे। यह ऋ० द० के पूर्ण संख्या ३१५, ३१६, ३१७ (भाग १, पृष्ठ ३४८-३५३) के पत्रों से स्पष्ट है। इतना ही नहीं, जब २७ अगस्त १८८० में ऋ० द० ने मेरठ में प्रथम स्वीकार-पत्र (वसीयतनामा) रजिस्ट्री कराया था उसमें भी कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेस्तकी का नाम सभासद के रूप में लिखा था। किन्तु अन्त में जब ऋषि दयानन्द को इनका यथार्थस्वरूप ज्ञात हो गया, तो उन्होंने इन लोगों से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न करने की स्पष्ट घोषणा कर दी।

इस सारे प्रकरण को यथावत् जानने के लिए दोनों ओर के पत्रों को मिला कर पढ़ना चाहिये। प० लेखराम कृत ऋ० द० के जीवन चरित (हिन्दी सं०) में पृष्ठ ८५४ से पृष्ठ ८८८ तक इस विषय का पूर्ण विवरण उपलब्ध होता है। अतः इस विषय में यथार्थ जानकारी चाहने वाले महानुभाव जीवनचरित का यह प्रकरण अवश्य देखें।

जीवनचरितों में एक भूल—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी-स०) पृष्ठ ८७८ पर ऋ० द० के २२ मार्च १८८२ के (पूर्ण संख्या ६४२, भाग २, पृष्ठ ६७२) पत्र का उल्लेख करके लिखा है कि "जब उस [पत्र] का कोई उत्तर न आया तो नियत तिथि के दिन स्वामी जी ने काऊसजी हाल में सन्ध्या के ६ बजे दो घण्टे तक व्याख्यान दिया"। ऐसा ही अन्य जीवनचरितों में भी लिखा है।

२२ मार्च १८८२ के पत्र में ऋ० द० ने मैडम ब्लेवेस्की को लिखा था—"········आप अकेली अथवा कर्नल सहित इस बखेड़े को न निबटा लोगी तो **मैं २८ मार्च सन् १८८२ मंगलवार** को फ्रामजी कावसजी हाल में आपके विरुद्ध वक्तृता दूंगा।"

पं० लेखराम जी कृत जीवन-चरित में '**नियत तिथि के दिन**' शब्दों से स्पष्ट होता है कि ऋ० द० ने थियोसोफिकल सोसाइटी के विरुद्ध २८ मार्च १८८२ को व्याख्यान दिया था।

व्याख्यान की शुद्ध तारीख २६ मार्च १८८२—यद्यपि पत्र के अनुसार ऋ० द० को २८ मार्च को ही सोसाइटी के विरुद्ध व्याख्यान देना था, परन्तु किन्हीं कारणों से (सम्भवतः रविवार की सुविधा के कारण) यह व्याख्यान २८ मार्च के स्थान पर २६ मार्च को हुआ था। इस तिथि की सूचना आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई की उस समय की गुजराती भाषा में लिखी हस्तलिखित कार्यवाही[1] से मिलती है। कार्यवाही के ८४वें पृष्ठ पर स्पष्ट लिखा है—

"चैत्र शुक्ल पक्ष ७मी ने वा० रवि संवत् १८३८[2], ता० २६ मी मार्च सने १८८२ ए रोज आर्यसमाज सांजना साडा पांच वागे फरामजी कावशजी इंस्टीटयूट मां मल्यो हतो. ते प्रसंगे वर्तमान पत्र मां आपेली जाहेर खबर प्रमाणे स्वामीजी ए आर्यसमाज अने थियोसोफिकल सोसाइटी नो सम्बन्ध ए विषय पर भाषण आप्युं हतुं."

[आगे भाषण का संक्षिप्त सार कार्यवाही में अङ्कित है

इस प्राचीन लिखित साक्ष्य से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने 'आर्य समाज और थियोसोफिकल सोसाइटी का सम्बन्ध' विषय पर विशेष व्याख्यान २६ मार्च १८८२ को दिया था, २८ मार्च को नहीं दिया था। भावी ऋ० द० के चरित-लेखकों को यह तिथि शोध लेनी चाहिये।

२—मौलवी मुहम्मद कासिम के पत्र

ऋ० द० के रुड़की निवास काल (२५ जुलाई से २१ अगस्त १८७८) में वहां के मुसलमानों ने शास्त्रार्थ करने के लिए मौलवी मुहम्मद कासिम को बुलाया था। शास्त्रार्थ के नियम, स्थान, दर्शक-संख्या और शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो अथवा मौखिक इत्यादि विषयों में दोनों ओर से १०-१० पत्रों का आदान-प्रदान हुआ। मौलवी मुहम्मद कासिम के पत्र जो तृतीय भाग में छपे हैं, प्रायः आक्षेपात्मक हैं, व्यर्थ में समय बिताने के बहाने रूप हैं। अन्त में इस पत्रव्यवहार का कोई फल न निकला, शास्त्रार्थ नहीं हुआ।

---

१. इस कार्यवाही-संचिका में से इस बार ऋषि दयानन्द ने बम्बई निवासकाल (३० दिसम्बर १८८१ से २४ जून १८८२ तक) की कार्यवाही का हिन्दी अनुवाद हमने वेदवाणी के सन् १९८२ के मार्च मास के अङ्क में 'ऋषि दयानन्द और आर्य-समाज से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' नामक संग्रह में छापा है। यह संग्रह इसी नाम से पुस्तकरूप में स्वतन्त्र भी छापा है। द्र०—पृष्ठ ७७।

२. यह गुजराती संवत् है। उत्तरभारतीय सं० १९३९ जानना चाहिये।

मालवी मुहम्मद कासिम के एक पत्र का सम्बन्ध ऋषि की विशेष मान्यता के साथ है। अतः उस पर यहां विचार किया जाता है—

इन पत्रों में पूर्ण संख्या ७२ के अन्त में पृष्ठ ६५ से पूर्वसम्बद्ध जो पत्र छपा है, उससे ऋ० द० के एक महत्त्वपूर्ण लेख पर प्रकाश पड़ता है। उस पत्र में पृष्ठ ६७ पर लिखा है— **'कानपुर के विज्ञापन में इक्कीस शास्त्रों पर आस्था प्रकट की थी·········'** (पंक्ति ४)।

इस पर यहां विचार करना हम आवश्यक समझते हैं। क्योंकि इस विषय में आर्यसमाज के कुछ विद्वानों में भ्रान्ति है और वे ऋषि के पत्र और विज्ञापनों की अप्रामाणिकता में इसी विज्ञापन को प्राय: उद्धृत करते हैं। इस में विज्ञापन की विवादास्पद बनाई गई पंक्ति है—**ज्योतिषम् १४, तत्र भूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति। तत्रैका भृगुसंहिता सत्या वेदितव्या।** इस का शब्दार्थ है—'ज्योतिष जिस में भूत भविष्यत् और वर्तमान का ज्ञान है। उनमें एक भृगुसंहिता सत्य है।' इस वाक्य में 'भूत भविष्यत् और वर्तमान' के किस विषय का ज्ञान है, यह स्पष्ट नहीं किया है।

ऋ० द० के पत्रों और विज्ञापनों की अप्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये पं० वैद्यनाथ शास्त्री ने इस पंक्ति को उद्धृत किया है (द्र०—सार्वदेशिक' पत्र २७ जुलाई १९८०)। उन्होंने ऋ० द० की पंक्ति का अर्थ समझा है—'इसमें भूत भविष्यत् और वर्तमान जन्मों का ज्ञान है।' अतः भृगुसंहिता के फल बोधक होने से वह अप्रमाण है।

इस विषय में हमने 'वेदवाणी' सितम्बर १९८० के अङ्क में तथा ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के तृतीय [एवं चतुर्थ] संस्करण के भाग १ को भूमिका में [क्रमशः] पृष्ठ १४-१८, [१५-१६] तक विस्तार से विवेचना की है। यहां हम संक्षेप से इस विषय पर लिखते हैं (एक नया प्रमाण भी)।

कानपुर के उक्त विज्ञापन (सं० १९२६) के लगभग ५ वर्ष पश्चात् सं० १९३१ (सन् १८७४) में लिखे गये तथा सं० १९३२ (सन् १८७५) में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) के तृतीय समुल्लास में पृष्ठ ८६ पर लिखा है—**भृग्वादि मुनियों के लिखे सूत्ररूप और भाष्यों को पढ़ें।** इस से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द जिस भृगुसंहिता को प्रमाण मानते थे, वह सूत्र बद्ध थी। उसमें फलित ज्ञान का विषय नहीं था, क्योंकि उसी प्रकरण में आगे फलित ज्ञान विधायक **मुहूर्त्तचिन्तामण्यादिक' जाल ग्रन्थों को न पढ़ें** ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।

सम्भव है इससे वादी को सन्तोष न हो तो हम दो प्रमाण जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के रचने (सं० १९३३=सन् १८७६) के पश्चात् के हैं, उपस्थित करते हैं—

१—मौलवी कासिम के उपर्युक्त लेख का जो उत्तर ऋषि दयानन्द ने १५ अगस्त सन् १८७८ के पूर्ण संख्या १९३ के पत्र में दिया था उस पर ध्यान देना चाहिये। ऋ० द० लिखते हैं—**मैंने उस शास्त्रार्थ में पवित्र वेद के इक्कीस विभिन्न व्याख्यानों की सत्यता स्वीकार की है और अब भी उनके ठीक होने का स्वीकार करता हूं** (भाग १, पृष्ठ २६०, पं० १०-१२)।

इस लेख से स्पष्ट है कि ऋ० द० कानपुर के विज्ञापन में निर्दिष्ट भृगुसंहिता की सत्यता को वे सन् १८७८ (=सं० १९३५) में भी स्वीकार करते थे। अब एक और प्रमाण भी इसके पश्चात् का उपस्थित करते हैं—

२—धर्मसभा फर्रुखाबाद के ६ अक्टूबर १८७९ के विज्ञापन और प्रश्नों के उत्तर में आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने १२ अक्टूबर १८७९ को जो विज्ञापन और उत्तर धर्मसभा को भेजे थे, उसमें धर्मसभा के प्रश्नों के उत्तर ऋ० द० ने ७ अक्टूबर को लिखा दिये थे (द्र०—पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ५२१-५२७)। उनमें १३वें प्रश्न के उत्तर में लिखा है—'**भृगु सिद्धान्त जिसमें केवल गणित विद्या है, उसको आप्त ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं।**'

कोई भी आर्य विद्वान् 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के लेखन-काल (सं० १९३३ सन् १८७६) के पीछे के ऋषि दयानन्द के लेख को अप्रमाण वा मिथ्या नहीं मानता। अत: ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेखन-काल के दो तीन वर्ष पश्चात् ऋ० द० द्वारा भृगुसंहिता की सत्यता को स्वीकार करने से स्पष्ट है कि '**तत्र भूतभविष्यद्वर्तमानानां ज्ञानमस्ति**' का अर्थ उनकी दृष्टि में गणित द्वारा तीनों कालों की ग्रहादि की गति से सम्बद्ध तिथि-नक्षत्र सूर्यचन्द्र-ग्रहण आदि के ज्ञान है, न कि जन्मविषयक ज्ञान।

३— भाई जवाहरसिंह के पत्र

भाई जवाहरसिंह, मन्त्री आर्यसमाज लाहौर के लाहौर तथा शाहपुरा से लिखे गये पत्रों में दो तीन विषय ऐसे हैं, जिनकी ओर हम पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं—

१—जवाहरसिंह पूर्ण संख्या ४११ के पत्र में लिखते हैं—'हां कुछ

पुलीटिकल विद्या का स्वभाव से प्रेम है……।" द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५०१, पं० १८-१६।

२—जवाहरसिंह का आर्यभाषा का अभ्यास न होने पर भी ऋ० द० के पत्रों का आर्यभाषा में उत्तर देना। जवाहरसिंह ने प्रथम पत्र (पूर्ण संख्या ३९६) के अन्त में लिखा था—"प्रन्तु जैसे आई वैसे लिख दी इस कारण कि शायद तकलीफ न हौवे" (द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४८१, पं० ६-७)। इस के उत्तर में ऋषि दयानन्द ने आर्यभाषा में पत्र लिखने पर जो उत्साहवर्धक वाक्य लिखा था (मूल पत्र हमें नहीं मिला) उसे जवाहरसिंह ने पूर्ण संख्या ४११ के पत्र में इस प्रकार उद्धृत किया है—"जबकि आपका अमृतवत् मधुर वचन कि **जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी** मेरे पास विद्यमान है।" द्र०—भाग ३, पृष्ट ५०४, पं० ९-१२।

जवाहरसिंह के पत्रों में आये इन विषयों पर म० मुन्शीराम जी ने 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १ भूमिका में विस्तार से लिखा है। अतः हम इस पर कुछ नहीं लिखते। म० मुंशीराम जी द्वारा लिखित 'पत्रव्यवहार' की 'भूमिका' को हम आगे छाप रहे हैं।

३—जवाहरसिंह के पूर्ण संख्या ४११ के पत्र में थियोसोफिकल सोसाइटी के कुतुहमीलालसिंह के द्वारा अंगुली कटा बैठने का एक रोचक वर्णन मिलता है। पाठक उसे भाग ३, पृष्ठ ५०२ पर अवश्य देखें। थियोसोफिकल सोसाइटी वाले किस प्रकार योग, गुरुडम, भूतप्रेत, मृतात्मा को बुलाने आदि के प्रचार द्वारा पठित जनों और साधारण लोगों को अपने जाल में फंसाते थे, उसका यह एक उदाहरण है।

४—जर्मनी के जी० वाईज के पत्र

ऋ० द० ने भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल का प्रशिक्षण दिलाने के लिये जर्मनी के कुछ व्यक्तियों से पत्रव्यवहार किया था (मूल पत्र अनुपलब्ध)। उनके उत्तर में प्रो० जी० वाईज ने ९ पत्र ऋ०द० को लिखे थे। ये पत्र जहां तक हमें ज्ञात है पहले लाहौर में प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी भाषा के 'आर्य' पत्र में अथवा 'वैदिक मैगजीन' में छपे थे। मास्टर लक्ष्मण जी ने ऋ० द० के जीवनचरित के परिशिष्ट ८-९ में इनका उर्दू अनुवाद छापा है। मूल पत्रों के उपलब्ध न हो सकने के कारण हमने इन का उर्दू अनुवाद ही इस संग्रह में दिया है। यतः ये पत्र अत्यन्त महत्त्व के हैं और

इनमें अनेक विषयों का उल्लेख है। अतः हम इनका संक्षिप्त विवरण प्रकृत प्रकरण के अन्त में छाप रहे हैं (द्र०—पृष्ठ ६२-६६)।

५—गुजरांवाला के ठाकरदास जैनी के पत्र

ठाकरदास जैनी ने सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में की गई जैन मत की समीक्षा को लेकर ७ लम्बे पत्र लिखे हैं। ठाकरदास जैनी के पत्रों को उसके द्वारा प्रकाशित **दयानन्दमुखचपेटिका** (प्रथम भाग) से लेकर हमने छापा है। दयानन्दमुखचपेटिका में ठाकरदास ने अपने पत्रों के उत्तर में लिखे गये ऋ० द० के पत्र भी छापे हैं। इसी से सम्बद्ध कुछ पत्र अन्यों के भी हैं।

ठाकरदास ने सभी पत्रों में एक ही बात बार बार दोहराई है। वह है, सत्यार्थप्रकाश(प्र० सं०) के १२वें समुल्लास में जैनमत के खण्डन में जो प्रमाण उद्धृत किये हैं, वे जैनियों के किस शास्त्र के हैं। अन्त में ठाकरदास ने ऋ० द० के बम्बई निवास काल में बम्बई पहुंच कर हाईकोर्ट के सलिसिटर मि० स्मिथ और फ्रियर से १३ जून १८८३ को एक नोटिस जारी करवाया (द्र०—पूर्ण संख्या ३२५, भाग ३, पृष्ठ ४०६-४०८)। इस का उत्तर आर्यसमाज बम्बई के मन्त्री सेवकलाल कृष्णदास की ओर से पेन और गिलबर्ट ने दिया (द्र०—पूर्ण संख्या ६७६, भाग २, पृष्ठ ७०४-७०५)। इस प्रकार यह काण्ड समाप्त हुआ।

६—वैं० य० के प्रबन्ध तथा वेदभाष्य-मुद्रण से सम्बद्ध पत्र

वैदिक यन्त्रालय (काशी-प्रयाग) के प्रबन्ध और वेदभाष्य आदि ग्रन्थों के मुद्रण के सम्बन्ध में पं० दयाराम, मुंशी समर्थदान, पं० सुन्दरलाल, पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त के पत्रों की एक बड़ी संख्या भाग ३-४ में संगृहीत है। इन पत्रों से जहां ऋ० द० के ग्रन्थों के लेखन, अनुवाद, संशोधन, मुद्रण और प्रकाशन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है, वहाँ इन पत्रों से यह भी विदित होता है कि ऋ० द० को प्रेस के प्रबन्ध, कागज, स्याही, सीसा, टाइप आदि मंगवाने वा भिजवाने का कार्य भी करना पड़ता था। इससे वेदभाष्य आदि के ग्रन्थों के लेखन में कितनी बाधा पड़ती होगी, इसका अनुमान लगाना दुष्कर नहीं है। एक बार तो वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्ध में खिन्न होकर फर्रुखाबाद के सेठ निर्भयराम को यहां तक लिख दिया था कि "और जो तुम इसका प्रबन्ध कुछ न करोगे तो ऐसा लूटमार में हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा—

फिर तो हम अपने समीप कुछ न रख सकेंगे और वेदभाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे। केवल लंगोटी लगा एक आनन्द में विचरेंगे" (द्र०—पूर्ण संख्या ५५६, भाग १, पृष्ठ ५६५, पं० १५-१८)।

७—आ० स० अजमेर और लखनऊ के पत्र

आर्यसमाज अजमेर और लखनऊ के अधिकारियों के पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि दयानन्द के समय में ही आर्यसमाज में राग-द्वेष के कारण झगड़े आरम्भ हो गये थे। इस सम्बन्ध में हम पूर्व पृष्ठ ५४-५५ पर लिख चुके हैं।

जी० वाईज के महत्त्वपूर्ण पत्रों का संक्षिप्त विवरण

हम पूर्व लिख चुके हैं कि ऋषि दयानन्द ने भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल सिखाने के लिये जर्मनी के अनेक व्यक्तियों से पत्रव्यवहार किया था। उनमें से '१६ अल्वर्श स्ट्रीट वेडशन जर्मनी' के प्रो० जी० वाईज के भेजे गये ६ पत्र ऋ० द० को प्राप्त हुए थे। मूल पत्र सम्भवतः अंग्रेजी में थे। उनका उर्दू अनुवाद मास्टर लक्ष्मण जी ने स्वकृत ऋ० द० के उर्दू जीवन चरित में छापा था। उन्हें हमने तृतीय भाग में पूर्ण संख्या १७३, १७४, १७५, १७६, १६५, २००, २०१, २०२ और २१० पर छापा है।

प्रो० जी० वाईज के पत्रों को पढ़ने से विदित होता है कि जर्मन लोग किन-किन विषयों में भारतीय नवयुवकों को प्रशिक्षण देने को तथा व्यय आदि में न्यूनता करने को तैयार थे तथा साथ ही हम आर्यों से आर्य-विज्ञान की उपलब्धि के लिये भी कितने लालायित थे। साथ ही इन से अनेक विषयों की महत्त्वपूर्ण जानकारी भी उपलब्ध होती है। प्रो० जी० वाईज के ७वें पत्र से उसके व्यक्तिगत चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। इसलिये हम जी० वाइज के प्रत्येक पत्र का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

१—पूर्ण संख्या १७३ के प्रथम पत्र से भारतीय दर्शन के प्रति जी० वाईज को कितनी अभिरुचि थी और उसकी योरोप में प्रचार की कितनी आवश्यकता वे समझते थे। इस पर प्रकाश पड़ता है।

२-३—पूर्ण संख्या १७४-१७५ पर छपे दूसरे और तीसरे पत्र में प्रो० जी० वाईज ने उन शिल्पों का विवरण दिया है, जिनका प्रशिक्षण जर्मनी में दिया जा सकता था। यथा—राजनितिक अर्थशास्त्र, शार्टहैण्ड, बढ़ई-गिरी, लोहे का काम, रंगसाजी घड़ीसाजी।

दूसरे पत्र में इंगलेण्ड के राजनीतिक अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। तीसरे पत्र में घड़ीसाजी (घड़ी बनाने) के काम और उसके लाभ का विशेष रूप से वर्णन किया है। भारत में बनी घड़ियों के सस्ते और उत्तम होने में विश्वास प्रकट करते हुए तीन हेतु दिये हैं।

४–पूर्ण संख्या १७६ पर छपे **चौथे पत्र** में जर्मनी में संस्कृत भाषा का पठन-पाठन कहां-कहां होता है, इसका उल्लेख किया है। जी० वाइज के लेखानुसार उस समय **जर्मनी के प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाई जाती थी।** सम्भव है इस सम्बन्ध में ऋ० द० ने जी० वाईज से किसी पत्र में पूछा होगा। अन्त में रंगसाजी और घड़ीसाजी के सम्बन्ध में पुनः लिखा है।

५–पूर्ण संख्या १६५ पर छपे **पांचवें पत्र** में प्रो० जी० वाईज ने भारतीय छात्रों को कला-कौशल सिखाने में अपनी विशेष अभिरुचि दिखाई है। **जापान** अपने नवयुवकों को कला-कौशल सिखाने के लिये लण्डन, जर्मनी और फ्रांस में भेजता है, पर वह क्या गलती करता है, इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह गलती भारतीय नवयुवक न करें इस का प्रबन्ध देखभाल करने का उत्तरदायित्व स्वयं लेते हुए लिखता है—**आप विश्वास रखें हम प्रत्येक अवस्था में आपकी और भारतीय नवयुवकों की इच्छा पूरी करना चाहते हैं।**

६–पूर्ण संख्या २०० के **छठे पत्र** में योरोपीय लोगों के जीवन पर कटाक्ष करते हुए लिखा है—'क्या मसीह ने यह शिक्षा नहीं दी थी कि **सबसे पहले उस सामान को इकट्ठा करो जो सर्वोत्तम है, जिसको चोर कभी चुरा नहीं सकता, नहीं दीमक खा सकती है और न जंग लग सकता है।** आजकल लाखों ईसाई गिरजों में बैठकर गीत गाते और दुआ करते हैं कि हे खुदाबन्द! उन्हें वह सब कुछ दो जो उनके पास नहीं और जिसकी उनको जरुरत है दे दे। ये लोग बुद्धि या पवित्र रोशनी के लिए प्रार्थना नहीं करते, न ही दिल दिमाग की शुद्धताई और इन्सान और परमात्मा के साथ मोहब्बत के लिए तत्पर होते हैं।'

'मनुष्य का कर्त्तव्य यही है कि एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए जिन्दा रहे, न कि सब से अलग थलग अपने लिये ही जीवे।" **यदि हम इस प्राकृतिक नियम का पालन करें, एक दूसरे को धोखा देकर न लूटें तो इस दुनिया में हम भिन्न-भिन्न विचारों के व्यक्ति एक प्रसन्न सहिष्णु कुटुम्ब की भांति रह सकते हैं।**'

मेरा हृदय कह रहा है कि 'यूरोप का **अन्धापन और प्रकृति की मूर्ति-पूजा से निकालने और उस ज्ञान की तरफ वापस आने के लिये मदद देने का काम आर्य लोगों की किस्मत में लिखा है**………।'

७–पूर्ण संख्या २०१ पर छपे **सातवें पत्र** में प्रो० जी० वाईज लिखते हैं—९ ता० के पोस्ट कार्ड में कतिपय पंक्तियां कृपा कर के लिखी; उन से ज्ञात होता है कि 'कमेटी और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की सम्मति है कि नवयुवकों को योरोप में योग्य ज्ञान और कला-कौशल सीखने के लिये भेजना जरूरी नहीं है।'

आप के लड़के जो हमारे यहां आकर उन की जानकारी प्राप्त करके उन के बनाने का तरीका सीख कर खुद बना सकेंगे। इस के लिये जहां तक हमारी शक्ति है उनकी मदद करने को तैयार हैं। इस के बदले में हम आप से वा आप के लड़कों से वे विशेषताएं सीखने के लिये तय्यार हैं जो उन्हें स्वभावत: आर्य-विज्ञान और आप की शिक्षा से प्राप्त हैं।……… इस प्रकार हिन्दुस्तान और जर्मनी के प्राकृतिक ज्ञान और आत्मिक ज्ञान का आदान-प्रदान हो जायेगा।

प्राकृतिक इतिहास के योरोपीय प्राध्यापकों का विचार है कि मनुष्य बालों वाले पशुओं की, जिन के पूछ भी थी, सन्तान हैं ………क्या ही अच्छा होता अगर थोड़ा सा वह उत्तम दर्शन और ज्ञान मानव को हासिल होता जो पुराने समय में हिन्दुस्तान में विद्यमान था।………

मैं आर्यों के लिये खर्चे की शर्त में उनकी स्थिति के अनुसार कम करने को तैयार हूँ ताकि वे लड़के भी हमारे पास आ सकें जिन के माता पिता अमीरों के समान रुपया खर्च नहीं कर सकते।

मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब कि आर्यों के आम आचरणों और पवित्र मिसाल से हमारे जर्मन नौजवान भी उस उत्तम विशेषता को प्राप्त कर सकें जो कि नौजवानों के लिये अत्यन्त आवश्यक है।………

अन्त में जी० वाइज लिखते हैं—'इसलिये आप से प्रार्थना करता हूँ कि **आप कमेटी की परवाह न करें** प्राय: करके बहुमत आमतौर पर सही ठिकाने पर नहीं पहुंचा करता, चाहे अकेले अकेले हर व्यक्ति कितना ही होशियार क्यों न हो।'

टिप्पणी—ऊपर के सातवें पत्र के प्रथम उद्धरण में जिस कमेटी और विशिष्ट व्यक्तियों को सम्मति का संकेत किया है। उनमें एक विशिष्ट

व्यक्ति लाला मूलराज एम० ए० थे। कला-कौशल सिखाने के सम्बन्ध में जर्मनी से जितने भी पत्र आये थे, उन्हें ऋ० द० ने लाला मूलराज को भेजा था। द०-प्रथम भाग में लाला मूलराज के नाम लिखे पत्र, पूर्ण संख्या ४३६,(पृष्ठ ४७६, पं० ३३), पूर्ण संख्या ४४५ (पृष्ठ ४८५, पं० १६-२०)। ऋ० द० लाला मूलराज पर पूरा विश्वास करते थे। लाला मूलराज भी ऊपर से अपने को दयानन्द का अनुयायी और भक्त प्रकट करते थे, परन्तु भीतर से वे ऋ० द० के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य में बाधा उत्पन्न करते थे। इसके कई प्रमाण उपलब्ध हो गये हैं। वस्तुत: वे ऋ०द० और आर्यसमाज के कार्यों पर निगरानी रखने के लिये अंग्रेजी सरकार की ओर से नियुक्त थे। अन्यथा वे देशोन्नति के प्रकृत पवित्र और महत्तम कार्य में बाधक न बनते। भला ब्रिटिश सरकार यह कैसे सह सकती थी कि भारतीय नौजवान जर्मनी में जाकर तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें। ऋ० द० ने अपने सरल स्वभाव के कारण हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, मुंशी बख्तावरसिंह, मुंशी इन्द्रमणि प्रभृति अनेकों व्यक्तियों पर विश्वास किया और उन्होंने ऋ० द० के साथ विश्वासघात किया। इन व्यक्तियों ने तो केवल धन के लोभ-वश ऋषि दयानन्द का विरोध किया था, परन्तु मूलराज का विरोध ब्रिटिश शासन के विशिष्ट व्यक्ति होने के कारण था। इसी कारण ही तो ब्रिटिश सरकार ने उन्हें रायबहादुरी का खिताब दिया था। अस्तु

८—पूर्ण संख्या २०२ के **आठवें पत्र** में कतिपय सामान्य बातों के अनन्तर हमारी थोड़े दिन की सांसारिक स्थिति वा उसका प्रयोजन क्या है? आत्मा उसे छोड़कर कहां चला जाता है? आदि का विवेचन है।

९–पूर्ण संख्या २१० पर छपे **नवम पत्र** में प्रो० जो० वाइज ने लिखा है—'आपका पत्र मिलने[1] से मेरे दिल में नया जोश उत्पन्न हुआ है कि हम अपना समय और शक्ति आपके नवयुवकों को अपनी इच्छानुसार सहायता करें।'.........जिससे भविष्य में अपने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने में महत्त्वपूर्ण भाग लेंगे। हम आप के छात्रों की जो कुछ भी सहायता कर सकते हैं, बड़ी प्रसन्नता से करेंगे, जहां तक हमारे वश में है। आपके छात्र विविध कला-कौशल सीख सकते हैं। हमें आपकी उन्नति पर कोई ईर्ष्या नहीं है। हम जर्मन लोगों की हिन्दुस्तान के साथ हार्दिक हमदर्दी है।'

इसके पश्चात् लिखा है—'**भारतीय आर्य जिन्होंने किसी समय यूरोप**

१. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ है।

पर विजय पाई आज पराधीन है, परन्तु वे स्वतन्त्रता भूमि और सम्पत्ति बिना खून खराबी के फिर प्राप्त कर सकते है, यदि वे उस मार्ग पर चले जिस पर उनके पूर्वज किसी सीमा तक चलते थे।·········आज वह विजय शक्ति आदि के बिना बुद्धि के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। केवल ज्ञान से भी अन्तिम विजय प्राप्त नहीं होती, जब तक ईश्वरीय ज्ञान प्रत्येक विषय में मार्ग-निदर्शन नहीं करता योरोप की विशिष्ट उन्नति बिल्कुल झूटी है।

आगे वर्तमान योरोपीय विज्ञान और वैज्ञानिकों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है--'**उन मूर्ख वैज्ञानिको के पीछे चलते हैं, जिनको यह भी पता नहीं कि वे कौन हैं और इन शरीरों में भी एक आत्मा है जो मृत्यु होने पर शरीर से निकल जाता है और दूसरी दुनिया में चला जाता है**·····।'

प्रो० जी० वाईज के पत्र बड़े महत्त्व के हैं। हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे इन पत्रों को एक बार अवश्य पढ़ें। यद्यपि इनकी भाषा उर्दू है, पुनरपि आर्यभाषा जाननेवालों को भाव-ग्रहण में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

हमने तृतीय चतुर्थ भाग में छापे गये पत्रों के आधार पर कतिपय विषयों पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। यदि सभी पत्रों और उनमें निर्दिष्ट सभी विषयों का स्पर्श किया जाता तो लेख का आकार बहुत बढ़ जाता। हम पाठकों से निवेदन करेंगे कि वे ऋषि दयानन्द के जिन पत्रों के साथ उनको लिखे गये पत्रों का सम्बन्ध है, मिला कर पढ़ें। उससे ऋ०द० के अभिप्राय को समझने में सुगमता होगी। इसी दृष्टि से हमने इस संस्करण में दोनों ओर के पत्रों को छापा है और प्रत्युत्तर रूप में प्राप्त पत्र किस भाग में कहां छपा है, इसका निर्देश टिप्पणी में यथास्थान किया है।

विशेष—आरम्भ में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को लिखे गये पत्र एक भाग में ही छापने का संकल्प था। अतः प्रथम और द्वितीय भाग में ऋ० द० को लिखे गये पत्रों के विषय में टिप्पणी में '**तृतीय भाग में देखो**' निर्देश किया है, परन्तु उपलब्ध सामग्री की अधिकता के कारण दो भाग करने पड़े। अतः तृतीय भाग के **पृष्ठ ६८७ से आगे** के पत्रों को **चतुर्थ भाग में देखें**।



श्री म० मुन्शीरामजी जिज्ञासु द्वारा लिखित--

भूमिका[१]

ऋषि श्रेणी के महानुभावों के जीवन किसी देश वा मनुष्य समूह विशेष की सम्पत्ति नहीं। उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी ज्ञात हो सके उसे सर्वसाधारण के लाभ के लिए प्रकाशित करना सच्चे मानवी इतिहास की उन्नति का साधन समझना चाहिये।

यह पत्रव्यवहार मैंने पहिले पहिल सद्धर्मप्रचारक नामी साप्ताहिक पत्र में छपवाना आरम्भ किया था और यह मेरे स्वप्न में भी न था कि इनको पुस्तकाकाररूप में पबलिक के सामने आने का सौभाग्य मिलेगा। किन्तु घटनाएं ही कुछ ऐसी होती गईं जिनका परिणाम इन पत्रों का कुछ काल के लिए सुरक्षित हो जाना हुआ।

मैंने इन पत्रों को सद्धर्मप्रचारक द्वारा पबलिक करते हुवे, २४ आषाढ़ सम्वत् १९६६ के अङ्क में, अपनी इस प्रवृत्ति का कारण यूं वर्णन किया था:—

ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार

चिरकाल से ऋषि दयानन्द के अपूर्ण जीवन वृत्तान्त को पूर्ण करने का प्रयत्न हो रहा है किन्तु अब तक पण्डित लेखराम के ग्रन्थ के पश्चात् किसी आर्य्य महाशय ने भी इस बड़े काम का बोझ उठाने का साहस नहीं किया।

परोपकारिणी सभा ने अपने दिसेम्बर १९०६ के अधिवेशन में इस कार्य्य के गौरव को समझ कर ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र की पूर्ति के

---

१. यह भूमिका म० मुन्शीराम जी ने स्वसम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' के प्रथम भाग में प्रकाशित की थी। इसमें कई आवश्यक बातों पर आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। इसलिये उनके शब्द, भावना और परिश्रम को सुरक्षित करने के लिए हम इसे यहां छाप रहे हैं।

लिये आर्य्यसमाज तथा परोपकारिणी सभा के इतिहास लिखवाने भी आवश्यक समझे। इसके लिए रेजोल्यूशन भी पास हुवा, किन्तु साल भर में काम कुछ भी न हुआ। इस लिए दूसरे वर्ष अर्थात् १९०७ के दिसम्बर वाले अधिवेशन में यह काम मेरे सुपुर्द हुआ। मैंने एक वर्ष तक बराबर समाजों तथा सामाजिक संस्थाओं के समाचार मंगवाने तथा इन के वृत्तान्त तय्यार करने का प्रयत्न किया। दिसम्बर १९०८ तक बहुत सा मसाला जमा हो गया था। उस अधिवेशन के पश्चात् मैंने ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार की पड़ताल की तो बहुत से पत्र फटे हुये तथा चूहों के काटे हुवे पाए गए। कई पत्रों को कीड़े लग गये थे। जो कुछ भी पत्रादि मुझे मिले मैं उन्हें अपने साथ लाया और उन की जांच पड़ताल आरम्भ की। गत वर्ष इस काम पर ५५।।।)।। व्यय हुवे जो बिल देकर ले चुका हूँ। इस वर्ष फिर ६०) के लगभग व्यय हो चुका है, और मैंने सारा मसाला इस योग्य बना लिया था कि पूरा अवकाश मिलने पर आर्यसमाज का इतिहास तथा उसकी शिक्षा पर अपने विचार पुस्तकरूप में पेश कर सकता। किन्तु कुछ ऐसे कारण हो गए हैं (जिन का प्रकाश समय आने पर होगा) कि अब परोपकारिणी सभा की ओर से मेरा कोई पुस्तक तय्यार करके छपवाना कठिन है। इस लिए सारा तय्यार किया हुवा मसाला परोपकारिणी सभा के आगामी अधिवेशन में उक्त सभा के अधिकारियों के सुपुर्द कर दूंगा।

किन्तु ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार को यदि अब खटाई में डाला गया तो फिर उस के सर्वथा गल जाने की ही सम्भावना है। अत एव इन सर्व पत्रों को एक साथ छाप देता हूँ जिससे आर्यसमाज का इतिहास लिखनेवालों को सुगमता से एक ही स्थान में ऋषि के जीवन का ठीक हाल मिल जाय। बड़े आदमियों के जीवन किसी पुरुष वा जाति विशेष की जायदाद नहीं इसलिए उन के सम्बन्ध में जो कुछ भी पता लगे उससे सर्वसाधारण को लाभ पहुंचाना चाहिये। इस उद्देश्य को मन में रख कर मैं ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार को क्रमशः प्रचारक के इसी अङ्क में छापना आरम्भ करता हूँ।

अभी पांच अङ्कों में पत्रव्यवहार के १६० पृष्ठ निकले थे कि ग्राहकों ने सर्व विषयों के लेखों को देखने की चेष्टा फिर प्रकट की, जिस पर १० भाद्रपद सम्वत् १९६६ के अङ्क में पृष्ट ६ पर निम्नलिखित लेख द्वारा उन

का प्रचारक में छपना (३२ पृष्ठ और देकर) बन्द करने का नोटिस दिया गया:—

"ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार जिस विचार से मैंने प्रचारक में निकालना आरम्भ किया था उस के समझनेवाले भी प्रचारक परिवार के बहुत से सभासद हैं; किन्तु फिर भी बहुतों ने शिकायत की है कि वे प्रचारक के कालमों में सर्व विषयों को देखना ही पसन्द करते हैं। इस लिये मैंने उक्त पत्रव्यवहार केवल आगामी अङ्क के साथ मुद्रित करा भविष्यत के लिये इन कालमों में छापना बन्द कर दिया है। अब पत्र जुदे छप रहे हैं और जब ५०० पृष्ठ की पुस्तक तयार हो जावेगी उस समय पत्रव्यवहार का प्रथम भाग मुद्रित कर दिया जायगा। ऋषि दयानन्द के भेजे हुवे पत्र कई महाशयों के पास होंगे। मैं उन से अपील करता हूँ कि वे असल पत्र रजिस्टरी कराके मेरे पास भेज दें। मैं उनकी ठीक नकल करके पत्र ज्यों का त्यों रजिस्टरी द्वारा लौटा दिया करूंगा, और साथ ही जो व्यय भेजने वालों का होगा उसके टिकट भेज दिया करूंगा।

जो पत्रव्यवहार मैं मुद्रित कर रहा हूं यदि इस समय भी मैं उसकी ओर ध्यान न देता तो ये सब पत्र भी कीड़ों तथा चूहों की भेट हो जाते। मेरा उद्देश्य किसी भी प्रकार के पत्र को भी पबलिक करने से रोकने का नहीं है। मेरी सम्मति यह है कि ऋषि दयानन्द का जीवन वृत्तान्त तय्यार करते हुवे भी जिन महाशयों ने कुछ पत्र रोक रक्खे उन्होंने अधर्म्म का काम किया। ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार से यदि उनकी कोई निर्बलता भी प्रकाशित हो, वा किसी पत्र से हमारे जमे हुवे संस्कारों तथा विश्वासों पर यदि किसी प्रकार की चोट भी लगे तब भी किसी आर्य्यसमाजी का अधिकार नहीं कि वह इस पत्रव्यवहार में से एक शब्द भी न्यूनाधिक करे। मैं इस लिए आर्य्यसमाज के बड़े से बड़े विरोधियों से भी प्रार्थना करता हूं कि वे निश्शङ्क होकर अपने हस्तगत पत्र मुझे भेजदें। यदि उन को अविश्वास हो कि मैं उन के पत्र न लौटाऊंगा तो वे अपने हाथ से अपने अधिकार में आए पत्रों की नकलें कर के अपने हस्ताक्षर करदें और असल मेरे किसी विश्वासपात्र आदमी को दिखा दें, मैं फिर भी उन की भेजी नकलों को छाप दूंगा। इस पत्रव्यवहार के मुद्रित करने से मेरा तात्पर्य यह है कि ऋषि दयानन्द का जीवन वृत्तान्त लिखने तथा आर्य्यसमाज का इतिहास तय्यार करनेवालों की सम्मतियों की पड़ताल करने तथा उन की भूलों को ठीक करने की कसौटी सर्वसाधारण के हाथ में मौजूद रहे"।

मैं अपने पाठकों से विशेष निवेदन करता हूँ कि यदि उन के ज्ञान में कोई ऐसे भद्र पुरुष हों जिनके पास ऋषि दयानन्द के भेजे पत्र हों, वा ऋषि के नाम उनके भेजे हुये पत्रों की लिपि उन के पास हो तो मेरे पास भेजने के लिए उन्हें प्रेरणा करें।

इन पत्रों में पाठकगण ऋषि दयानन्द के अपने भेजे हुए पत्र वा लेख कम देखेंगे, जिस के लिए उन के साथ मुझे भी बड़ा शोक है। यह आशा रखना कुछ असङ्गत न था कि वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ताओं तथा निरीक्षकों के नाम भेजे हुवे पत्र तो, कम से कम, वैदिक यन्त्रालय में मिलेंगे। और जब यह देखा जाता है कि ऋषि दयानन्द पत्रोत्तर देने के लिए बहुधा स्वयम् केवल मसौदा बना कर ही देते थे और पत्र दूसरों से लिखवा कर भेजते थे, और साथ ही जब यह भी ध्यान में लाया जाता है कि ऋषि दयानन्द साधारण कामों में भी सावधान रहनेवाले थे, तो बड़े गूढ़ तथा आवश्यक पत्रों के मसौदे न पाकर बहुत ही आश्चर्य होता है। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ताओं तथा अन्य वैतनिक कर्म्मचारियों के नाम भेजे पत्रों के वैदिक यन्त्रालय में न मौजूद होने का कारण तो स्पष्ट है। इन लोगों में [वे] कम थे जो निस्वार्थ हो कर काम करते रहे हों। उन के अपने आचरण ऐसे न थे कि वह अपने स्वामी की दी हुई शिक्षाओं को पबलिक के सामने रखने का हौसला कर सकते। कुछ ऐसे भी होंगे अपने बचाव के लिए ऋषि के दिये हुवे प्रशंसापत्रों की आवश्यकता थी। और शेष भाग ऐसा होगा जो ऐसे पूज्य विद्वान् के हस्ताक्षर से आये पत्रों को केवल आत्मप्रसाद रूप से ही अपने पास रखना चाहते हों। किन्तु जो पत्र जर्मनी आदि देशों में भेजे गए और जो भारतवर्ष में निवास करनेवाले श्रद्धालु विदेशियों के नाम लिखे गये होंगे, उनके मसौदे अवश्य परोपकारिणी सभा के अधिकारियों के पास मिलने चाहियें थे।

किन्तु इस के न मिलने के कारण का अनुमान करना भी कठिन नहीं है। मुझे विश्वसनीय साधनों से पता लगा है कि ऋषि दयानन्द की बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें तथा पत्रादि पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या अपने घर उठा कर ले गये थे। मुझे यह भी पता लगा था कि उक्त पण्ड्या जी आर्य्य पुरुषों को धमकियां दिया करते हैं कि यदि वह अपने काबू आई हुई चिट्ठियों को छाप देंगे तो आर्य्यसमाज को बहुत हानि पहुंचेगी। इसी धमकी को लक्ष्य में रख कर मैंने १० भाद्रपद सं० १९६६ वि० का लेख दिया था, जिसका कुछ भी परिणाम न निकलने का मुझे शोक है।

मैं यहां फिर अपने पहिले लेख को दुहराते हुवे श्री पण्डया मोहनलाल विष्णुलाल तथा अन्य ऐसे सज्जनों से, जिन के पास ऋषि दयानन्द का कोई पत्र हो, निवेदन करता हूँ कि जिस शर्त पर भी सम्भव हो सके वे उन पत्रों की नकल मुझे [प्र]दान करें। मैं बिना इस विचार के कि उनके छापने से आर्य्यसमाज को हानि पहुंचेगी, वा लाभ, उन्हें इस ग्रन्थमाला के द्वितीय भाग निकलते समय (यदि उसकी मांग हुई) छाप दूंगा।

इस पत्रमाला में कुछ पत्र कई एक सज्जनों को अनावश्यक प्रतीत होंगे और कइयों की भाषा उनको ऐसी अखरेगी कि उन्हें पढ़ते समय वे मुझ पर बहुत ही क्रुद्ध होंगे। ऐसे सज्जनों को समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक पुरुष के आचार बहुत सी छोटी बड़ी घटनाओं के समूह से ही बनते हैं, जिनमें से एक प्रकार की घटना को भी पाठकों से छिपाने पर वे उस पुरुष के जीवन पर ठीक सम्मति स्थिर नहीं कर सकें। यदि मैं भी इस समय "पत्रमाला" के संग्रहीता के स्थान में जीवन-वृत्तान्त का सम्पादक होता तो मैं भी कांट छांट से न चूकता, किन्तु मेरा अधिकार इस समय यह न था और जब ठीक तथ्य (Facts) ही पाठकों के सामने रखने का कर्त्तव्य हो तो भाषा को बदलना भी एक प्रकार के अनधिकार जमाने के तुल्य ही है।

मुद्रित पत्रों पर एक दृष्टि

स्वामी आत्मानन्द के पत्रों[1] से पता लगता है कि शिमला समाज के स्थापन करने वाले पण्डित **परमानन्द** बाजपेई तथा डाक्टर **ठाकुरदास** थे जो दोनों हमसे बिछुड़ चुके हैं। लाला खुशीराम जो भी बड़े पुराने आर्य्य हैं जो स० १८८३ ई० में कालिका आर्य्यसमाज के मन्त्री थे। पृष्ठ ५ पर इटावा वाले पण्डित भीमसेन के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचारणीय है:— **"भीमसेन के होने से आप के पास कोई नहीं रहेगा"**[2]। इससे ज्ञात होता है कि पण्डित भीमसेन की असलियत को श्री स्वामी दयानन्दजी के देहान्त समय से कुछ काल पहले ही उनके कुछ सच्चे सेवकों ने समझ लिया था। कैसे शोक की बात है कि कुछ आर्य्य पुरुषों के बारबार की चेतावनी देने पर भी श्री स्वामी आत्मानन्दजी से उन के इतिहास सम्बन्धी अगाध ज्ञान

१. प्रस्तुत संस्करण में स्वामी आत्मानन्द जी के पत्र भाग ३, पूर्ण संख्या ४८८, ४९२, ४९५ पर छपे हैं।

२. द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५८६, पं० २२।

को लेखनोबद्ध करने का किसी सज्जन ने भी प्रयत्न न किया जिसमे आर्य्यसमाज के इतिहास का बड़ा अमूल्य भाग हमारे लिए अप्राप्त हो गया।

ईश्वरानन्द के पत्र[1] बड़े ही मनोरञ्जक हैं। ज्ञात होता है कि यह महाशय साधारण भाषा लिखना भी आर्य्यसामाजिक पुरुषों के सत्सङ्ग से ही सीखे थे। इनके अन्तिम जीवनचरित्र को इनके यहां दिए पत्रों के साथ मिलाया जावे तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो पुरुष बारबार पापों के लिए खुले दिल से प्रसिद्ध क्षमा मांगता है वह अपना सुधार करने के स्थान में कई बार अपने आप को निर्लज्ज बना कर किसी सुधार के योग्य भी नहीं रहता।

स्वामी सहजानन्द के पत्रों[2] से ज्ञात होता है कि उन को संस्कृत की योग्यता बढ़ाने की लगन थी। अंग्रेजी सन्ध्या के अशुद्ध अर्थों के लिए शोक प्रकट करने[3] तथा समाजों को पुनर्जीवित करने के जो विचार स्वामी सहजानन्द ने प्रकट किये हैं उनको पढ़ कर शोक होता है कि ऐसे योग्य पुरुष को आर्य्यसमाज क्यों न सम्भाल सका। इनके पत्रों में मास्टर दया-राम, बाबू (वर्त्तमान रायबहादुर) मंगूमल, बाबू विष्णुसहाय तथा मास्टर मुर्लीधरादि के धर्म्मभाव तथा पुरुषार्थ का बहुत कुछ वर्णन आता है[4]। इनके पत्रों मे यह भी ज्ञात होता है कि स्वर्गवासी महाराजा फरीदकोट वैदिक धर्म्म के श्रद्धालु थे[5]।

पण्डित भीमसेन के पत्रों[6] से तो वही "टकाधर्म्म" की बू आती है, किन्तु उनके साथ

पण्डित सुन्दरलाल जी (रायबहादुर) का पत्र[7] व्यवहार मिला कर

१. ईश्वरानन्द के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या ४७६, ४६१, ४६८, ५०२, ५११, ५२२, ५२५, ५३५, ५५४, ५७२, ५८१, ५८८, ५६२, ५६६ पर छपे हैं।

२. इनके पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या ३६५, ४२६, ४४२, ४६४, ४८७, ५१५, ५२८, ५६७, ५६५, ५६६ पर छपे हैं।

३. द्र०—भाग ३, पृष्ठ ६२७, पं० ६-११।

४. द्र०—भाग ४, पूर्ण संख्या ५६६ का पत्र, पृष्ठ ७३०-७३१।

५. द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५४६, भाग ४, पृष्ठ ७३१, प० २-६।

६. पं० भीमसेन के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या २७१, २८३, २६०, २६५, ३०४, ३१५, ४२३, ५४३, ५५१, ५७३ पर छपे हैं।

७. पं० सुन्दरलाल के पत्र इस संस्करण में भाग ३ में पूर्ण संख्या १७६, २४७,

यह भी पता लगता है कि भीमसेन और ज्वालादत्त ने ही वेदाङ्गप्रकाश के सर्व अङ्क बनाए थे. और इस लिए उन ग्रन्थों की अशुद्धियों के लिए ऋषि दयानन्द को जिम्मेवार ठहराना जहां अनुचित है वहां उन ग्रन्थों का वह मान्य भी नहीं करना चाहिए जो उन्हें ऋषि दयानन्द के नाम के सम्बन्ध से इस समय प्राप्त है। रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल के पत्र सं० ७[२] से विदित होता है कि सं० १८८२ ई० मे पहिले ही लाहौर आर्य्य-समाज के सामयिक अधिकारी वैदिक यन्त्रालय को लाहौर ले जाने के पीछे पड़े हुए थे। (देखिये पृष्ठ ६५)[3]

भारतमित्र के सम्पादक के नाम जो पृ० ६८ से ७३[४] तक छपा है वह न केवल थियोसोफिस्टों की लीला के विषय में ही ऋषि दयानन्द की सम्मति का परिचय देता है प्रत्युत वेद विषय पर भी उनकी सम्मति को यथावत् प्रकाशित करता है। निम्नलिखित पंक्तियां बहुत ही शिक्षाप्रद है:—"और जो उन्हों ने यह लिखा है कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर की प्रेरणा युक्त हों तो उन का भाष्य निर्भ्रम हो सके; **मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूं। परन्तु वेद मनुष्य के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं इस अभिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुंच सकेगी और इतने तक कार्य्य मनुष्य कर सकेंगे। इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत्** निष्पक्षपात हो कर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूँ ....और सत्यार्थ होने से ही वेदों का निर्भ्रान्तत्व यथावत् सिद्ध है।"

ठाकुर रघुनाथसिंह के क्षत्रीत्व की उत्तेजक कहानी पृष्ठ ८५[५] पर पढ़ने के योग्य है। यदि उस धर्म्मभाव का आर्य्य पुरुष पुनः स्मरण करेंगे तो इस सन्दिग्ध समय में भी धर्म्म का बेड़ा पार होगा।

२७५, २८४, २६०, ३१६, ३२२ पर छपे हैं।

१. इस विषय को विस्तार से जानने के लिये हमारा 'ऋ० द० स० के ग्रन्थों का इतिहास' का नवम अध्याय 'वेदाङ्गप्रकाश और उनके रचयिता' देखना चाहिये।　　२. प्रस्तुत संस्करण में पूर्ण संख्या २६० का पत्र।

३. प्रस्तुत संस्करण में द्र०—भाग ३, पृष्ठ ३७३, पं० ५-६।

४. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ८६३, भाग २, पृष्ठ ८८०-८८३ तक छपा है।

५. यह कहानी प्रस्तुत संस्करण के भाग ३, पृष्ठ ४६४ पं० २७ से पृष्ठ ४६५ पं० १५ तक देखें।

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह जी आजकल जयपुर की राजसभा के मन्त्री हैं। इन के पत्रों[1] से विदित होता है कि आप वैदिक धर्म्म के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। कैसे शोक की बात है कि ऐसे भद्र पुरुषों की योग्यता से धर्म की वृद्धि में सहायता लेने की शक्ति आर्य्य पुरुषों में लुप्त होती जाती है। इस के कारणों पर विचार कर के उन्हें निर्मूल करना चाहिये।

गोरक्षा विषय[2] में जो वृहत् कार्य्य ऋषि दयानन्द करना चाहते थे उस का वर्णन फुटकर पत्रों में कई स्थानों पर आया है। इन पत्रों से विदित होता है कि लाखों क्या करोड़ों हस्ताक्षर, गोवध रोकने के लिए करा के बृटिश गवर्नमन्ट की सेवा में भेजने का वे विचार रखते थे, और इस कार्य्य में राजों महाराजों को भी सम्मिलित करना चाहते थे।

पं० दामोदर शास्त्री—(नाथद्वारा वाले) का पत्र[3] बड़ा मनोरञ्जक है।

भाई जवाहिरसिंह जी के पत्र[4] बहुत ही शिक्षाप्रद हैं। भाई जी पहिले लाहौर आर्य्यसमाज के मन्त्री थे। जब मैं सं० १६४२ वि० में आर्य्यसमाज का सभासद् बना उस समय भी आप उसी पद पर सुशोभित थे, और भाई दित्तसिंह जी के साथ मिल कर वैदिक धर्म्म प्रचार का कार्य्य बड़े उत्साह से करते थे। इन को ऋषि दयानन्द के शाहपुरा राज्य के लिए योग्य आदमी मांगने पर लाहौर आर्य्यसमाज ने भेजा था। इन पत्रों से लाहौर समाज के आरम्भिक विचारों का भी बहुत कुछ पता लगता है। भाई जवाहिरसिंह में एक गुण अन्य लाहौरी आर्य्यसमाजियों से बढ़ कर था। जहां कुछ एक अन्य लाहौरी आर्य्यसामाजिक लीडरों ने मरते दम तक

---

१. ठाकुर नन्दकिशोरसिंह जी के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या ३०३, ४०६, ४४६, ४४७, ४८८, ५०८, ५३६, ५५२ पर छपे हैं।

२. गोरक्षा के विषय में ऋषि दयानन्द ने जो आन्दोलन आरम्भ किया था उसके सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के और उनको लिखे गये अनेक पत्र उपलब्ध होते है। उनके लिये द्वितीय भाग के आरम्भ में दी गई विषय सूची पृष्ठ १६ तथा चतुर्थ भाग प्रारम्भ में छपे प्राक्कथन के पृष्ठ ५०-५२ देखें।

३. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में पूर्ण संख्या ४२७, भाग ३, पृष्ठ ५१६-५१८ पर छपा है।

४. भाई जवाहरसिंह के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या ३६६, ४११, ४३ , ४४०, ४५३, ४६४, ४७४, ४७५, ४७८, ५६०, ६०० पर छपे हैं।

आर्य्यभाषा का लिखना न सीखा वा अभ्यास न किया वहां भाई जी ने जिस मत को ग्रहण किया था उसके प्रवर्तक की इच्छानुसार उस मत का साधारण भाषा का अभ्यास पुरुषार्थ से आरम्भ कर दिया था। पृष्ठ १२५ पर का लेख[1] आजकल के उन नवशिक्षित बूढ़ों और पुर्जोश जवानों के लिए विचारणीय है जो अंग्रेजी तथा उर्दू की लाठी से ही आर्य्यसामाजिक सर्वसाधारण के गल्ले को हांकना चाहते हैं।

भाई जवाहिरसिंह के पत्रों के उत्तर में जो लेख ऋषि दयानन्द की ओर से आते रहे थे उनके प्राप्त करने का मैंने प्रयत्न किया था, और उन प्रतिएं लेने की आज्ञा उक्त भाई जी से मांगी थी। किन्तु भाई जी ने उत्तर में लिखा कि यद्यपि उन्होंने वे पत्र पण्डित लेखराम को दिखलाए थे तथापि अब वे पत्र किसी ऐसे स्थान में रक्खे जा चुके हैं कि उन का पता नहीं लगता। यदि वे पत्र मिल जाते तो ऋषि दयानन्द की बहुत सी सम्मतियों का विस्पष्ट ज्ञान हो सक्ता।

भाई जवाहिरसिंह जी के पत्रों से कई सन्दिग्ध मामलों पर प्रकाश पड़ेगा और उन लेखों से भिन्न भिन्न प्रकृति के लोग भिन्न भिन्न परिणाम निकालेंगे; इसलिए मैं उन सब पर यहां कोई विचार नहीं करना चाहता। केवल एक विषय पर मुझे कुछ वक्तव्य है। यह बात प्रसिद्ध है कि आर्य्यसमाज के विषय में लाहौर समाज के स्थापित होने के दिन से ही "पुलिटिकल बाडी" होने का दोष लगना शुरू हो गया था। साथ ही यह स्पष्ट था कि उक्त आर्य्यसमाज के अतिरिक्त अन्य किसी आर्य्यसमाज पर यह दोष नहीं लगाया जाता था। मुझे भली प्रकार स्मरण है कि जब सम्वत् १९४७ में एक डिपुटी कमिश्नर के इस कहने पर कि आर्य्यसमाज एक "पुलिटीकल बाडी" है, मैंने उन के इस कथन का दृढ़ता से निषेध किया था तो उन्होंने उत्तर में यही कहा था कि जालंधर आर्य्यसमाज वा अन्य किसी आर्य्यसमाज को "पुलिटिकल बाडी" कोई नहीं कहता। किन्तु लाहौर आर्य्यसमाज को प्रायः अङ्गरेज राजनैतिक सभा समझते हैं। अब तक यह समझा जाता रहा है कि शायद इस के कारण आर्य्यसमाज लाहौर के आरम्भिक सब अधिकारी तथा कार्य्यकर्त्ता होंगे। किन्तु भाई जी के पत्र से ज्ञात होता है कि शायद लाहौर आर्य्यसमाज की इस बदनामी के मूल

१. यह लेख प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ५०३, पं० ३२ से पृष्ठ ५०४, पं० १२ तक छपा है।

कारण आप ही हों। आप के दूसरे ही पत्र में (पृष्ठ १२० पर[1])पाठक नीचे दिए वाक्य पाएंगे—

"हां कुछ पुलीटिकल (Political) विद्या का स्वभाव से प्रेम है यांने समाज के सज्जन पुरुष यही कहते हैं कि तुम इस काम को अच्छा निबाहोगे"।

उपरोक्त लेख से यह भी सिद्ध होता है कि लाहौर आर्य्यसमाज के पहिले काम करनेवालों में से केवल भाई जी ही राजनैतिक विद्या में निपुण समझे जाते थे। अब देखना यह है कि लाहौर आर्य्यसमाज की राजनैतिक प्रसिद्धी का कारण क्या था। भारतवर्ष में निवास करने वाले अंग्रेजों (Anglo-Indians) का यह स्वभाव है कि उन का एक भाई भी जिस बात को जिस प्रकार लिख दे उसी लकीर पर सब चल पड़ते हैं; अपने स्वदेशी भाइयों के संदिग्ध लेख पर भी विदेशी युक्ति तथा प्रमाण को सुनने के लिये तय्यार नहीं होते। मेरा अनुमान यह है कि आर्य्यसमाज के विषय में इस प्रकार के विचार मिस्टर जानकैम्पबेल ओमन साहेब (Mr John Campbell Oman) ने फैलाये थे जो गवर्नमेंण्ट कालेज लाहौर में पदार्थ विज्ञान के अध्यापक (Science Professor) थे। पं० गुरुदत्त जी इन्हीं के शिष्य थे और जब शिष्य गुरु को बहुत पीछे छोड़ कर पदार्थ विद्या की अपेक्षा वेदों का अधिक मान करने लग गए तो गुरु को कुछ क्षोभ भी हुआ। इन्हों ने एक पुस्तक सन् १८८२ ई० के आरम्भ में लिखी थी जिस का नाम रक्खा था—

Indian Life Religious and Social.

सबसे पहिले आर्य्यसमाज को पुलिटिकल बाड़ी सिद्ध करने का इस पुस्तक द्वारा प्रयत्न हुआ था। उस पुस्तक में नए हाल, जो प्रोफेसर साहेब को इङ्गलेण्ड बैठे ही मालूम हुए, बढ़ा कर उस का नाम अब

CULTS CUSTOMS AND SUPERSTITIONS OF INDIA

रक्खा गया है। इस नई पुस्तक का मुद्रण सं० १९०८ ई० में शायद इसी लिए किया गया कि उस समय की पुलिटिकल हलचल के रौ में बहे हुए

१. प्रस्तुत संस्करण में आगे दिया गया उद्धरण भाग ३ के पृष्ठ ५०१ की पं० १८-२० पर छपा है।

पुरुषों में इस पुस्तक के प्रचार होने की अधिक सम्भावना थी। इस पुस्तक का निम्न लेख ठीक तौर पर बतला देगा कि आर्य्यसमाज के विषय में राजनैतिक दल होने का मिथ्या प्रलाप किस प्रकार आरम्भ हुआ। पृष्ठ १४१ पर मिस्टर ओमन साहेब लिखते हैं—

"He (Dayananda) is also credited With the outspoken expression of an opinion about the Present-day degeneration of Englishmen in India. I have been, the Swami is reported to have said to an English clergyman who came to visit him, I have been an early riser from my childhood. In the begining I saw that Englishmen would get up early in the morning and taking their children with them would go out for a walk. The excess of wealth has made them indolent since. They are seen stretched on their beds in their bunglows till the sun is up, and I cannot but perceive that, like the old Aryas, the days of your fall are also coming Without too much straining after the discovery of the more hidden causes of current happenings, we may perhaps be justified in recognizing in this significant condemnation and equally significant Preliction, uttered by or attributed to Dayananda, an encouragement of the later political activities of the seet which he founded; particularly as the reformer was intent upon the **regenaration of Aryavarta**, and the words patriotism and nationality constantly upon his lips. As early in the history of the Arya Samaj of Lahore as 1882, I find that the programme of the Anniversary celebration contains the following item: "A lecture in Vernacular by Bhai J.........S.........Secretary Arya Samaj Lahore, on ' Nationality " and the subject has, I know, been always much in the thoughts of the samajists."

तात्पर्य यह कि एक अंग्रेज पादरी साहेब जब स्वामी दयानन्द को मिलने गये तो उन से उक्त स्वामीजी ने कहा कि पहिले मैं अंग्रेजों को अपने बच्चों सहित प्रातःकाल ही बाहिर वायु-सेवन के लिये जाते देखता था। किन्तु अब सूर्य उदय होने के पीछे तक लेटे रहते हैं। इससे अनुमान होता है कि पुराने आर्यों की तरह तुम्हारे गिरने के दिन भी समीप आ रहे हैं। एक संन्यासी के मुंह से ऐसा उपदेश अपने अन्दर कुछ विचित्र घटना नहीं रख सकता, किन्तु ओमन साहेब को इस के अन्दर ही आर्य्यसामाजिक मत की पुलिटिकल उद्योगता का बीज दिखाई देता है और उस की स्पष्ट साक्षी वह इस प्रकार वर्णन करते हैं—"आर्य्यसमाज लाहौर के इतिहास में बहुत ही आरम्भ अर्थात् सं० १८८२ ई० में उसके वार्षिकोत्सव के समयविभाग में निम्नलिखित विषय भी है; एक व्याख्यान भाइ G···· S·····(मतलब जवाहिरसिंह से प्रतीत होता है)मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर की ओर से Nationality (कौमियत-स्वदेशीयता) पर—और मैं जानता हूँ कि यह विषय आर्यसमाजियों के ध्यान में अधिक रहता है"। यदि प्रोफेसर ओमन साहेब के टेढ़े कटाक्षों की पड़ताल किसी अन्य समय के लिए छोड़लें तो भी स्पष्ट दीखता है कि उन के कटाक्षों के प्रबल कारणों में से भाई जवाहिरसिंह जी के एक व्याख्यान का विज्ञापन ही है। अब जब कि भाई जी को आर्य्यसमाज से जुदा हुये २१ वर्षों से अधिक समय व्यतीत हो गया और आर्य्यसमाज के सभासदों ने बहुमत से अपने मन्तव्यों तथा कर्त्तव्यों का परिचय भी दे दिया तो उसी लकीर को पीटते जाना अन्य मतावलम्बियों का न्याय नहीं है।

पण्डित कालूराम (सेठों के रामगढ़ वाले) के दो पत्र[1] विशेष प्रकार से मनोरञ्जक सिद्ध होंगे। एक तो दीमक ने इन पत्रों को गूढ़ बना दिया है और उस पर पं० कालूराम की भाषा विचित्र—मेरी सम्मति में जिन पाठकों का समय खाली हो उन्हें समय काटने का इससे बढ़कर मनोरञ्जक साधन न मिलेगा[2] कि पण्डित कालूराम के दोनों पत्रों की पहलियों के बूझने में उसे लगावें।

---

१. ये दोनों पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३ में पूर्ण संख्या ४५५, ४८६ पर छपे हैं।

२. ये पत्र मनोरञ्जन पहेलियां बूझने के नहीं है। भाषा का ज्ञान न्यून होने

पण्डित कालूराम ऋषि दयानन्द के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। आपने रामगढ़ में एक स्थान बनवाया था जहां नित्य सत्यार्थप्रकाश की कथा बाङ्गड़ देश के सर्व साधारण में होती थी। इन के सैकड़ों शिष्य थे जिन की विशेषता यह हुआ करती थी कि **जो आज्ञा उन्हें सत्यार्थप्रकाश में दिखला दी जाय उसे वे शिरोधार्य समझते थे।**[1] कालूराम जी के स्थान में दो मेले प्रतिवर्ष होते थे जिन में भोजन का सत्कार सहस्रों पुरुषों का हुआ करता था। उनकी मृत्यु के पश्चात् न जाने उनके स्थान की यह महिमा रही वा नहीं, किन्तु उनके जीवन में आर्यसमाज का बड़ा उत्तम कार्य होता रहा।

अजमेर वालों के पत्र—विशेष विचार से देखने के योग्य हैं। कमलनयनशर्मा[2] तथा मुन्नालाल[3] के पत्रों से विदित होता है कि अजमेर आर्यसमाज में परस्पर का विरोध ऋषि दयानन्द के जीवन में ही आरम्भ हो गया था। इस पत्रव्यवहार पर यदि आज की तिथि डालदी जावे तब भी कोई अचम्भे की बात न होगी। इस समय सर्व प्रान्तों के आर्यसमाजों में इसी दुर्घटना के दर्शन होते हैं। यदि आर्यसमाज को, उस के अग्रणी, जीवित रख कर वैदिक धर्म्म के प्रचार का साधन बनाना चाहते हैं तो उन्हें इस रोग की जड़ का पता लगाना चाहिए।

स्वामी केशवानन्द न जाने कौन थे जिन का वर्णन कमलनयन शर्मा

और राजस्थानी भाषा में लिखे होने से म० मुंशीराम जी की समझ में नहीं आये। ध्यान से पढ़ने पर इनमें कई आवश्यक विषयों का संकेत मिलता है। यथा—पृष्ठ ५३९ पं० ९ तथा पृष्ठ ५४० पं० ३ तक जोधपुर के प्रतापसिंह जी का ईसाई मत की ओर झुकाव और उससे उन्हें बचाने की प्रार्थना। इसी प्रकार पृष्ठ ५७९ पर गोरक्षा सम्बन्धी पत्र पर हस्ताक्षर कराना।

१. इस सम्बन्ध मे 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ १०६ की टिप्पणी ४ भी देखें।

२. कमलनयन शर्मा के पत्र इस संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या ४४८, ४६१, ४८१, ५०५, ५१४, ५५६, ५६१, ५७५, ५८५ पर छपे हैं।

३. मुन्नालाल के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३-४ में पूर्ण संख्या २७३, ३४९ ४०१, ५६३, ६०३ पर छपे हैं।

के पत्र में आता है[1]। इन्हीं के पत्र सं० ४ में पृष्ठ १७१[2] पर निम्नलिखित विचारणीय है "............ **सर्दार भक्तसिंह इञ्जिनियर हुए हैं। उन्हीं के दफतर में मैं भी काम करता हूं। वे कहते थे कि गुजरात में मूलराज A.M. हम से मिले थे। और आर्य्यसमाजों को पक्षपाती कहते थे इस कारण हमने** और उन्हों ने मिल कर एक संस्कृत पाठशाला जुदे हो कर नियत की है"। रायबहादुर मूलराज जी इस समय [हम] पर बड़ा उपकार करेंगे यदि यह बतलावें कि आरम्भ से ही आर्य्यसमाज के अन्दर किस प्रकार के पक्षपात ने घर कर लिया था।

जोधपुर से जो यह समाचार प्रसिद्ध होना लिखा है कि स्वामी जी का देहान्त होगया[3] यह तो एक बार नहीं कई बार कई स्थानों से सुनने में आया था परन्तु पृष्ठ १९२[4] पर जो मारवाड़ राज के विकट होने का लेख है उस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऋषि दयानन्द निर्भय हो कर धर्म्म का प्रचार करने वाले उपदेशक थे और इस लिए ऋषि पद के अधिकारी।

पण्डित शुकदेवप्रसाद के पत्र[5] के साथ जो पण्डित शिवकुमार शास्त्री का पत्र[6] अजमेर के पण्डित शालिग्राम के नाम का पृष्ठ २११ तथा २१२ पर छपा है, उस से ज्ञात होता है कि श्री पण्डित शिवकुमार जी बराबर श्री स्वामी दयानन्दजी का अत्यन्त मान्य करते तथा उनके उद्देश्यों के साथ अन्तरीय भाव से सहमत थे[7]।

---

१. प्रस्तुत संस्करण में द्रष्टव्य भाग ३, पृष्ठ ५३१, पं० १७; पृष्ठ ५४६, पं० ३१; पृष्ठ ५७१, पं० ८; पृष्ठ ५९६, पं० २। इन स्वा० केशवानन्द के सम्बन्ध में हमें भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

२. इस पृष्ठ पर निर्दिष्ट अगला उद्धरण प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ५७२, पं० १-५ पर छपा है।

३. यह वर्णन हमें नहीं मिला। हां, भाग ३, पृष्ठ ५९६, पं० ४-५ में स्वामी जी से फौजदारी होने का वर्णन मिलता है।

४. प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ७१७, पं० ८-९।

५. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ६२४ पर छपा है।

६. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ६२५ पर छपा है।

७. पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१३ से ज्ञात होता है कि ये ऋ० द० द्वारा स्थापित काशी की पाठशाला में पढ़ाते थे।

बलदेव के पत्र—सं० ३ व ४–से[1] विदित होता है कि उन दिनों श्री स्वामी महाराज के इङ्गलेन्ड की ओर प्रस्थान करने की अफवाह फैल रही थी। यदि ऋषि दयानन्द एक बार लन्डनादि नगरों में भ्रमण कर आते तो न जाने धर्म्मान्दोलन के काम को कैसा प्रबल पलटा मिलता? किन्तु यह होना ही न था। बेफिकरे बलदेव से रोटी पर सैर करने के शौकीन अब भी बहुतेरे घूमते फिरते हैं। पृष्ठ २२० पर वर्णित "स्वामी गङ्गेशजी"[2] का पता फिर नहीं मिला। पृष्ठ २२१ पर बिल्हौर वाले "मंगीलाल"[3] जी की बुझौती को जो बूझ दे उसे मैं भी कुछ पारितोषिक देने को तय्यार हूँ।

गोरक्षा— की ओर प्रथम ध्यान आकर्षित करनेवाले स्वामी दयानन्द ही थे। पृष्ठ २२७ पर दिये, गोपीनाथ के पत्र[4] से विदित होता है कि रामगढ़ वाले पंडित कालूराम ने इस शुभ कार्य के लिए बड़ा परिश्रम किया था। एक सेठ ने मुझे ठीक लिखा था कि आज कल की सब गो-शालाएं तथा पिञ्जरापोल श्री स्वामीजी की ही मङ्गल इच्छा के परिणाम हैं।

भिनगा के भया **राजेन्द्रबहादुरसिंह**—का पत्र[5] पाठकों को बहुत ही विस्मित कर देगा। इस पत्र से विदित होता है कि पुराने सत्यार्थप्रकाश में किए मांस विधान की पुष्टि पञ्चमहायज्ञविधि के किसी आरम्भिक संस्करण से भी कुछ लोग समझते थे यद्यपि पुराने सत्यार्थप्रकाश **से कुछ पहिले छपी पञ्चमहायज्ञविधि में मांस-भक्षण का निषेध** है[6]। मेरी सम्मति में इस पत्र

---

१. प्रस्तुत संस्करण में उपरि संकेतित पत्र भाग ४ में पूर्ण संख्या ५६५, ५७७ पर छपे हैं।

२ ऊपर वर्णित पृष्ठ संख्या के लिये प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ६६५-६६६ देखें। इन गंगेश स्वामी जी के लिये इस चौथे भाग के अन्त में परिशिष्ट ४ में पृष्ठ ८०२ पर श्री मामराज जी की टि० संख्या ४२-४३ देखें।

३. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पूर्ण संख्या ६०६, पृष्ठ ७४० पर छपा है।

४. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या २२४ पृष्ठ ३१८ पर छपा है।

५. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ३७४, पृष्ठ ४५६-४५७ पर छपा है।

६. सं० १९३१ में छपी पञ्चमहायज्ञविधि में न मांस-भक्षण का निषेध है और नाही विधायक वचन। हां, मृतक-श्राद्ध का खण्डन अवश्य है।

से विस्मित होने के स्थान में सन्देह की निवृत्ति हो सकती है। जिन पुरुषों ने ऐसे पत्रों को दबाए रक्खा है उन्होंने अधिकतः संदिग्धावस्था उत्पन्न कर दी है। यह पत्र संवत् १९३९ के चैत्र में लिखा गया, और कार्त्तिक संवत् १९४० वि० में स्वामीजो का देहान्त हुआ। उन की मृत्यु के १॥ वर्ष पहिले तक ज्ञात होता है कि उनका ध्यान **मांस विधान** की भूल की ओर किसी ने आकर्षित नहीं किया।[1] यही कारण मालूम होता है कि मृतक श्राद्ध के विरुद्ध विज्ञापन देते हुए भी स्वामीजी ने मांस विषयक अशुद्ध लेख का वर्णन नहीं किया।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह जी के यहां दोनों समय अग्निहोत्र होने का वर्णन जो पृष्ठ २३९ पर हीरालाल अथर्वणी ने किया है[2] उससे पता लगता है कि महाराजों की रुचि वैदिक कर्मकाण्ड की ओर बढ़ चली थी।

महाशय लक्ष्मण गोपाल देशमुख, असिस्टेन्ट कलक्टर खानदेश के पत्र[3] यद्यपि केवल घड़ी की खरीदारी के सम्बन्ध में होने से कई पाठकों का तुच्छ प्रतीत होंगे, किन्तु मेरी दृष्टि में वे बहुमूल्य हैं। इन से पता लगता है कि आर्य्यभाषा तथा संस्कृत के प्रचार को जिस ऋषि दयानन्द ने पुष्टि दी थी, यदि उसका अनुकरण उन के शिष्य करते तो आज यह हीन दशा न दिखाई देती कि **आर्य्यसमाज के कतिपय भूषणों को यह भी लिखते लज्जा नहीं आती कि यदि उनसे उत्तर प्राप्ति की इच्छा हो तो उन के नाम पत्र इङ्गलिश वा उर्दू भाषा में ही भेजा जावे।**

---

१. यह लिखना भी उचित नहीं है। सं० १९३३ में छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह के पत्र में, जो प्रस्तुत संस्करण में पूर्ण संख्या १६०, भाग ३, पृष्ठ १२९ पर छपा है, उल्लेख है। इस पत्र का जो उत्तर ऋ० द० ने दिया था वह भाग १, पूर्ण संख्या ३९४, पृष्ठ ४२७ पर छपा है। हमने दोनों पत्रों को अन्तिम बार स० १९३६ के काशी गमन-काल का मानकर सं० १९३६ के प्रकरण में छापा है। वस्तुतः ये पत्र सं० १९३३ के हैं। इसकी पूरी विवेचना के लिये हमारे इसी भाग में छपे प्राक्कथन के पृष्ठ १०-१३ तक देखें। म० मुंशीराम जी को ठाकुर मुकुन्दसिंह का और उसके उत्तर में लिखा ऋ० द० का पत्र उपलब्ध नहीं हुआ था।

२. हीरालाल अथर्वणी का यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ७२२ पर छपा है। देखो इसी पृष्ठ की पं० ११-१२।

३. ये पत्र प्रस्तुत संस्करण में क्रमशः भाग ३, पृष्ठ ६११ तथा भाग ४, पृष्ठ

मुंबई आर्य्यसमाज के मन्त्री के पत्र में पृष्ठ २४६ की समाप्ति पर कैसे हृदयवेधक शब्द[1] हैं जो आज भी उसी प्रकार सर्व आर्य्यसमाजों में गूंज रहे हैं—"**कार्य्य करनेवाले बहोत कम है [कि] अपना तन मन धन लगा के करें, वाक्यबिलास करने वाले बहोत हैं**" यह शिकायत उस समय तक दूर न होगी जब तक कि सदाचार को ही धर्म्मशीलता की जड़ न समझ लिया जावे।

मन्त्री सेवकलाल कृष्णलाल जी का पत्र सं० ६[2] जैनमत की पुस्तकों के विषय में बड़ा मनोरंजक है; इस मत की पुस्तकों के दर्शन भी स्वामी जी महाराज को इन्हीं सज्जनों द्वारा हुए थे। पृष्ठ २७५[3] से ज्ञात होता है कि जून १८८३ ई० में स्वामी आलाराम आर्य्यसमाजी बन कर मुम्बई पहुंचे हुए थे और उस समय तक संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे; किन्तु उस भाषा का अभ्यास दृढ़ता से कर रहे थे। उस समय श्री स्वामी जी के चरणों में पूरी श्रद्धा रखते थे[4], किन्तु आज अन्यों से बिगड़ने के कारण अपने पूर्व गुरु को गालीप्रदान कर रहे हैं। काल की विचित्र गति है !

लालजी बैजनाथ व्यास के पत्रों से (जो पृष्ठ २८० से २८५ तक दिए गए हैं)[5] विदित होता है कि स्वामी जी के इस पंचभौतिक देहत्याग करने से कुछ मास पहिले ही मुम्बई आर्य्यसमाज की अवस्था ढीली पड़ गई था। अन्य कई आर्य्यसमाजों की निर्बलता का हाल भी इन्हीं दिनों के

---

६६३ पर छपे हैं। इन दोनों पत्रों के अन्त में लक्ष्मण गोपाल देशमुख ने संस्कृत में पत्रोत्तर देने की प्रार्थना की है। द्र०—क्रमशः पृष्ठ ६६२, ६६४।

१. ये आगे लिखे शब्द प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ३०७, पं० १६-२१ पर छपे हैं।

२. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या २४१, पृष्ठ ३३१-३३४ तथा ३३८-३३६ तक द्रष्टव्य है।

३. इस पृष्ठ पर उल्लिखित स्वामी आलाराम का उल्लेख प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ५५८ पं० ८-१८ तक है।

४. स्वामी आलाराम का भाग ४, पूर्ण संख्या ६१८, पृष्ठ ७४५-७४६ पर छपा पत्र भी देखना चाहिये।

५. इन पृष्ठों में संकलित लालजी बैजनाथ व्यास के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ४३६, ४५६, ४६३; भाग ४, पूर्ण संख्या ५६४, ५७६ पर छपे हैं।

लिखे हुए पत्रों से विदित होता है। न केवल यही, बल्कि अजमेर, लखनऊ, फरुखाबादादि के पत्रों से यह भी विदित होता है कि ऐसी अनुचित अवस्था बहुधा कुछ सभासदों के स्वार्थवश होने तथा परस्पर के विद्वेष से उत्पन्न हो चली थी।[१] यह सच है कि ऋषि के परलोकगमन के कुछ वर्षों पीछे एक विचित्र प्रेम तथा पवित्रता की लहर उठी थी किन्तु परस्पर के द्वेष तथा सदाचार की अविद्यमानता ने उस लहर को भी बिलकुल बैठा दिया है।[२] यदि वैदिक धर्म्म का पुनरुद्धार अभीष्ट है तो आर्यसमाज के अग्रणियों को आचार संशोधन का कोई विशेष उपाय सोचना चाहिए।

कवि सुखराम त्र्यम्बकराम का पत्र[३] केवल एक नमूने का दिया है जिससे विदित होता है कि लोगों में उस समय धार्मिक विषयों के आन्दोलन की जिज्ञासा केवल श्री स्वामी दयानन्द जी के उपदेशों से ही उत्पन्न हुई थी। **पृष्ठ २९२ पर जिस ग्रन्थ [दयानन्द सरस्वतिजु भाषण]**[४] **का "ग्रहमदाबाद गुजरात वर्नाक्युलर सुसाइटी" के पुस्तकालय में विद्यमान होना वर्णित है और जिस का मूल्य ॥।)** लिखा है, क्या वह पूना वाले व्याख्यान ही थे वा उन से भिन्न कोई पुस्तक थी? इस का पता लगाना चाहिए।

लाला मथुरादास का पत्र[५] [पृष्ठ ३०५ पर] बतलाता है कि उन्होंने जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का संक्षिप्त **अनुवाद उर्दू में प्रकाशित** किया था उस में श्री स्वामी जी की सम्मति नहीं ली थी। उन्होंने कुल छपी हुई प्रतियां वैदिक यन्त्रालय में दे दी थीं। अच्छा ही होता यदि उन्हें न बेचा जाता जिस से बहुत सी भूलों से सर्व साधारण का बचाव होता।

धर्म्मवीर पण्डित लेखराम का एक ही पत्र[६], देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ, मिला है यह पत्र विचित्र है। लाला कन्हैयालाल अलखधारी तथा मुन्शी इन्द्रमणि की पुस्तकों से इन्होंने अन्य मतों के खण्डन की शिक्षा

१. इसके लिये इसी भाग में छपे हमारे प्राक्कथन के पृष्ठ ५३-५५ देखें।

२. यह स्थिति वर्तमान में अत्यन्त शोचनीय दशा तक पहुंच चुकी है।

३. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या २८५, पर छपा है।

४. इस पुस्तक के निर्देश के लिए प्रस्तुत संस्करण भाग ३, पृष्ठ ३६८, पं० २-३ देखें। तथा चतुर्थ भाग के प्रारम्भ में प्राक्कथन का पृष्ठ ३० देखें।

५. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ७४३-७४४ पर देखें।

६. यह पत्र इस संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ३९४, पृष्ठ ४०५-४०६ पर छपा है।

ला थी इसलिए मुन्शी इन्द्रमणि के साथ श्री स्वामी जी का बिगाड़ उन्हें सह्य न था। श्री स्वामी जी के जीवन-चरित[1] में मुन्शी इन्द्रमणि के मामले पर जो कुछ लिखा है उसका इस पत्र के साथ मुकाबिला करने से विदित होता है कि पण्डित लेखराम जी सत्यग्राही बड़े दृढ़ थे। एक बात और विदित होती है। वैदिक धर्म्म में प्रेम उत्पन्न होते ही पण्डित लेखराम ने देवनागरी अक्षरों का अभ्यास आरम्भ कर दिया था और अपनी भाषा की अशुद्धियों के कारण अपने कर्त्तव्य-पालन में किञ्चित् भी नहीं घबराते थे।

स्वामी आत्माराम का पत्र[2] पृष्ठ ३१२ तथा ३१३ पर उन की विचित्र जीवनी पर बड़ा प्रकाश डालता है।

शङ्का समाधान का अवसर विरोधियों को तो बहुत मिलता रहा किन्तु बड़ा ही शोक है कि जिस समय आर्य्यसमाजियों के दिलों में धर्म्म-विषयों के आन्दोलन की जिज्ञासा उत्पन्न हुई उस समय ऋषि के परलोक गमन की तय्यारियां हो रही थीं। पृष्ठ ३१४, ३१५ पर क्षेमकरणदास का पत्र मुक्ति विषय के प्रश्न युक्त कैसा हृदयवेधक है[3]। उधर जोधपुर में विष देने की तय्यारी दुष्ट कर रहे हैं और इधर प्यासे धर्म्म का मर्म जानने की जिज्ञासा कर रहे हैं। किन्तु शोक यह है कि अभिमान और द्वेष के अन्धकार से अन्धे किए गए आर्य्यसमाजी तब तक भी अपने धर्म के मूल-स्रोत वेद पर विचार करने को उद्यत नहीं होते।

देहरादून के पण्डित ज्योतिःस्वरूप का एक लेख पृष्ठ ३१६[4] पर वैय्याकरणों के पढ़ने योग्य है।

ऋषि की स्वाभाविक शान्ति तथा सत्य प्रियता का नमूना देखना हो तो पृष्ठ ३३३ से ३३७ तक साधु अमृतराम नवीन-वेदान्ती तथा पण्डित

---

१. द्र०—जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८३९-८५४।

२. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पूर्ण संख्या ६१८, पृष्ठ ७४५-७४६ पर छपा है।

३. पं० क्षेमकरणदास जी का यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ७०७-७०८ पर छपा है। इनके प्रश्न के विषय में इसी भाग के आरम्भ में छपे प्राक्कथन के पृष्ठ ३-१५ तक विस्तार से लिखा है।

४. यह पं० ज्योतिःस्वरूप का निर्दिष्ट लेख प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ३६०, पं० ९-१५ तक छपा है।

गोपालराव हरि का पत्रव्यवहार[1] अवश्य पढ़िए ।

लखनऊ आर्य्यसमाज के आरम्भिक झगड़े के विषय में पृष्ठ ३३८ से ३६६ तक के पत्र[2], जो उभय पक्ष ने श्री स्वामी जी के नाम लिखे, इस लिए दिए गए हैं कि पाठक यदि वर्त्तमान समय की अव्यवस्था को दूर करने के लिए कुछ शिक्षा लेना चाहें तो ले सकें ।

इन पत्रों में पृष्ठ ३५६ पर की निम्नलिखित पंक्तियां कुछ विचार साध्य हैं । महाशय रामाधार वाजपेई ने एक स्थान पर अपने आर्य्य-समाज के अधिवेशन से उठ जाने का कारण यह बतलाया था कि **उनका सन्ध्या का समय हो गया था**[3] । उत्तर में हरनामप्रसाद जी मन्त्री लिखते हैं:—"**और सन्ध्या वन्दन के विषय में तो समाज विषय भी अनेक प्रकार के धर्म सम्बन्धी देशोन्नतिकारक और परोपकारक होने के कारण न्यून नहीं वरन अधिक है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वामीजी ही महाराज को देखिए**[4] ।"

आर्य्यसमाज में इस प्रकार की अविद्या अब तक फैली हुई है जिससे बड़ी हानि हो रही है । स्वामीजी महाराज संन्यासी थे । संन्यासी का दिन-रात ही स्वाध्याय में व्यतीत होता है । संन्यास का अधिकार ही तब होता है जब स्वभावत: ही दिनरात ओ३म् का ध्यान रह सके । संन्यासी सर्व बाह्य बन्धनों से मुक्त होता है इस लिए उसके वास्ते कोई विशेष समय वा नियम सन्ध्योपासन का नियत नहीं । किन्तु **प्रत्येक गृहस्थ के लिए तो दोनों कालों की सन्ध्या ही सर्वोत्तम स्वाध्याय है । इसे ब्रह्मयज्ञ कहा है और पांचों महायज्ञों में इसका प्रथम पद है ।** इस समय भी आर्य्यसमाज में ऐसे उत्तर सुनने में आते हैं जिन से अपने कानों को दु:ख पहुंचता है—"**हम सन्ध्या से भी उत्तम काम कर रहे हैं ।**" क्या आज जो नास्तिकपन की सी लहर आर्य्यसमाज के किसी किसी विभाग में उठ रही है, वह इसी अनियम का परिणाम तो नहीं ? विचारशीलों को अवश्य सोचना चाहिए ।

---

१. अमृतराम वेदान्ती का पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ४८८-४९० पर छपा है । पं० गोपालराव का पत्र पृष्ठ ४९०-४९२ पर देखें ।

२. उक्त पृष्ठों में छपे रामाधार बाजपेयी के पत्र प्रस्तुत संस्करण के भाग ३, पूर्ण संख्या २९७, ३५४; (तथा अन्यों के) पूर्ण संख्या ३४१, ३४२, ३५३, ३६१ पर देखें ।

३. द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४३१, पं० ३२ तथा पृष्ठ ४३२, पं० १ ।

४. द्र०—भाग ३, पृष्ठ ४३२, पं० ५-८ ।

महाशय भोलानाथ जी मन्त्री आर्य्यसमाज बरेली के पत्र[1] (पृष्ठ ३६७ से ३७१ तक) के साथ यदि ऋषि दयानन्द का चौबे कन्हैयालाल के नाम का पत्र[2](पृष्ठ ३८४,३८५) मिलाकर पढ़ा जाय तो पता लगेगा कि वर्णाश्रम धर्म्म के जिस उच्च शिखर पर ऋषि हमें ले जाना चाहता था अब तक भी हम उस से बहुत नीचे खड़े हैं।

प्रश्न स्पष्ट शब्दों में यह है—"क्या आर्य्यसमाज ने उस आदर्श तक पहुंचने के लिए, जिस को लक्ष में रख कर ऋषि दयानन्द ने उनकी बुनियाद डाली थी, कोई पग आगे उठाया है ?" ऋषि दयानन्द का लक्ष क्या था उन के निज कथित जीवन वृत्तान्त[3] के अन्तिम शब्दों से भलीभांति प्रकट होता है—"**ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि प्रत्येक स्थान में आर्य्यसमाज स्थापित हो कर मूर्त्ति पूजा आदि दुष्ट आचार बन्द हो जावें, वेद शास्त्रों का सच्चा अर्थ समझ में आवे और उन्हीं के अनुकूल लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति हो जावे।**" यह स्पष्ट है कि वैदिक ज्ञान का समझाना और उसके अनुकूल आचरण कराने का प्रयत्न करना आर्य्यसमाजों के स्थापित किये जाने का उद्देश्य था; अर्थात् कर्म को ज्ञान के अनुकूल सांचे में ढालना प्रत्येक आर्य का धर्म है। क्या इस धर्म के पालन करने में प्रयत्न हो रहा है ? जितना प्रयत्न ज्ञान और क्रिया को अविरोधी करने में होगा उतनी ही आर्यसमाज की सफलता समझी जायगी।

वैदिक मर्यादा के अनुसार मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य दुखों से छूटकर परमानन्द का प्राप्त करना है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्णाश्रम धर्म साधन हैं। कर्मकाण्ड का सार वर्णाश्रम धर्म का पालन है। इसलिये यदि आर्य्यसमाज ने वर्णाश्रम धर्म के पालन में कोई पग बढ़ाया है तो

---

१. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ३३५, पृष्ठ ४६४-४१६ तक छपा है।

२. ऋ० द० का कन्हैयालाल चौबे के नाम लिखा पत्र भाग २, पूर्ण संख्या ५७०, पृष्ठ ६०८-६०९ पर छपा है।

३. यह निज कथित जीवन-वृत्तान्त पूना के पन्द्रहवें व्याख्यान में कहा था। उसी के अन्त के शब्द यहां उद्धृत किये हैं। हमने इस वर्ष (सन् १८७५ में) पूना के प्रतिदिन के व्याख्यान के मराठी भाषा में छपे ट्रैक्टों से सीधा आर्य भाषा में अनुवाद करके पूना के प्रवचन छापे हैं, (पुराने अनुवाद बहुत भ्रष्ट हैं) साथ में बम्बई के प्रवचन भी छापे हैं। द्र०— 'ऋ० द० के शास्त्रार्थ और प्रवचन' अथवा 'पूना बम्बई प्रवचन'।

समझना चाहिये कि अपने लक्ष की ओर चल रहा है; अन्यथा उस की दशा शोचनीय समझी जायगी।

पहिले आश्रमव्यवस्था के सुधार की ओर दृष्टि देना चाहिए। बिना संस्कार के सुधार होना कठिन है, और सारे संस्कार आश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत हैं, इस लिए यदि हमारी आश्रम व्यवस्था सुधर न रही हो तो आर्य्यसमाज को अभी बाल्यावस्था में स्थित समझा जायगा।

पहिला आश्रम ब्रह्मचर्य है। क्या आर्य्यसमाज ने अपने गत ३३ वर्षों के जीवन में इस आश्रम के सुधार के लिए कुछ प्रयत्न किया है? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। जिस वस्तु का अभाव हो उसका सुधार कैसे हो सकता है? गृहस्थ और संन्यास का आभासमात्र तो ऋषि दयानन्द के उपदेशों से पहिले भी विद्यमान था; इस लिए उन का सुधार हो सकता था। किन्तु ब्रह्मचर्य्याश्रम का तो नाटक भी उड़ चुका था, इस लिए उस के सुधार के कुछ अर्थ ही न थे। हां ब्रह्मचर्य्याश्रम को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता थी। इस समय ब्रह्मचर्य्याश्रम के पुनर्जीवित करने के लिये आर्य्यसमाजों की ओर से बड़ा प्रबल प्रयत्न हो रहा है। गुरुकुलों का स्थापित होना इस प्रयत्न का प्रत्यक्ष प्रमाण है। किन्तु फिर भी यदि गुरुकुलों के प्रबन्धकर्त्ताओं से पूछा जायगा तो वे बतलावेंगे कि केवल पाठशाला तथा आश्रम खोल देने से ब्रह्मचर्य्याश्रम का भविष्य नहीं सुधर सकता।

पैत्रिक संस्कारों का सन्तानों पर बड़ा असर पड़ता है। माता के तो सर्व स्वभावों का सन्तान में पुनर्जन्म होता है। आचार्य कुल की रक्षा का पूरा फल तभी प्राप्त हो सकता है जब कि गुरुकुलों में प्रवेश करने वाले बालक तथा बालिकाओं के माता पिता अपने आचरणों के सुधार की ओर दृष्टि डालें और अयोग्यता की अवस्था में सन्तानोत्पत्ति की क्रिया को ही पाप समझें। मेरा यह मतलब नहीं है कि वर्त्तमान गुरुकुलों में आचार्य, अध्यापक तथा अधिष्ठाता आदर्श पुरुष हैं। मैं जानता हूँ कि उनमें बहुत सी त्रुटियें हैं जिन के दूर हुवे बिना पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। किन्तु यदि छात्रों के अन्तःकरणों में पैत्रिक संस्कार उत्तम जमे हुवे हों और उन के शरीर भी स्वस्थ ब्रह्मचारी माता पिता के अङ्गों के अङ्ग हों तो उन के तेज से उन के संरक्षकों के अन्तःकरण भी आप से आप शुद्ध होते जाएंगे। परिणाम यह निकला कि जब तक ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने वालों के पैत्रिक संस्कार शुद्ध न हों तथा उन के संरक्षकों के शरीर मन तथा आत्मा पवित्र न हों तब तक ब्रह्मचर्याश्रम का सुधार कठिन है;

अर्थात् गृहस्थाश्रम की शुद्धि पर ही ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिरता का निर्भर है जहां ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति का श्रोत गृहस्थ है वहां आचार्य अध्यापकादि भी गृहस्थाश्रम में पूर्ण शिक्षा लाभ कर के ही ब्रह्मचारियों को संसार मार्ग के कंटकों से बचाने में कृतकार्य हो सक्ते हैं।

तब गृहस्थ पर ही ब्रह्मचर्याश्रम का निर्भर है इसमें क्या सन्देह है, और इस में भी कुछ कक्तव्य नहीं कि गृहस्थ ब्रह्मचर्य से ज्येष्ठ आश्रम है। किन्तु मनु भगवान् इस को सर्व आश्रमों में ज्येष्ठ (बड़ा) बतलाते हैं। यह माना कि समय के क्रम से गृहस्थ का दर्जा वानप्रस्थ तथा संन्यास के नीचे दिखाई देता है किन्तु सारे आश्रमों का श्रोत होने से इसे ज्येष्ठ आश्रम बतलाया गया है। इसलिए इस की अवस्था के विचार से प्रथम अन्य आश्रमों की अवस्था पर थोड़ी दृष्टि डालनी चाहिये। वानप्रस्थाश्रम का इस समय सर्वथा अभाव है। गृहस्थ में आनन्द की इच्छा से लोग प्रवेश करते हैं। गृहस्थ स्त्री-पुरुषों की भोग क्रियाओं के बाह्य चित्र को देख कर मोहित हो सौन्दर्य की तलाश में आंख मूंद कर वर्त्तमान प्रणाली का गृहस्थ भोगना आरम्भ करते हैं। ठोकर लगते हा आंख खुलती है; तब पता लगता है कि गुलाब के फूल के सौन्दर्य के साथ कांटे भी हैं जिन से बचे बिना सर्व साधारण के लिए गृहस्थाश्रम नर्क धाम बन रहा है। जिन्हों ने अविद्यारूपी निद्रा को त्याग दिया और अपने धर्म को समझ कर मृग तृष्णारूपी सौन्दर्य का पीछा छोड़ दिया उन के लिए तो वही गृहस्थ स्वर्ग लोक बन गया और उस के कर्त्तव्यों को पालन करने में ही उन्हें शान्ति मिल गई। उन के लिये सम्भव है कि वे गृहस्थाश्रम की अवधि को पूरा करके वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें और अपने गृहस्थ के निरोक्षणों पर पुनः विचार कर के आगे चलने की तय्यारी करें। किन्तु **जो पुरुष केवल सांसारिक सौन्दर्य रूपी मृग तृष्णा के पीछे ही आतुर हो कर भाग रहे थे, वे वानप्रस्थाश्रम में "लोहे के चने चबाने" कब आसक्ते हैं, वे सीधे संन्यासाश्रम की ओर दौड़ते हैं।** इस लिए वानप्रस्थाश्रम को पुनर्जीवित करने के लिए भी पहिले गृहस्थाश्रम के सुधार की आवश्यकता है।

क्या संन्यासाश्रम की अवस्था ठीक है? आर्यसमाज के सभासद् कृतघ्न नहीं हैं और इसलिये वे आर्य्यसमाजिक उन संन्यासियों की प्रशंसा करते है जो वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य्य करते रहे हैं वा अब कर रहे हैं। किन्तु क्या हमारे संन्यासी महात्मा स्वयम् इस बात को अनुभव नहीं करते कि यदि वे आश्रमाताश्रम उन्नति करते हुये सच्चे ब्राह्मण बनने के पश्चात्

संन्यास धारण करते तो संसार की भी भलाई होती। संन्यासी कर्मकाण्ड के सर्व बन्धनों से छूट जाता है। क्या उस प्रकार जैसे सिक्खों के गुरु "बन्धन तोड़" कर "निर्वान" हो गये थे? नहीं, प्रत्युत उस प्रकार जैसे कि ब्रह्मवादियों ने वर्णन किया है। सूत्र, शिखा, सन्ध्या, अग्निहोत्र कोई बन्धन भी संन्यासी के लिये नहीं रहता। किन्तु क्यों? इस का उत्तर उपनिषदों में लिखा है—

[१] **सशिखं वपनं कृत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद् बुधः।**
यदक्षरं परं ब्रह्म तत् सूत्रमिति धारयेत्॥

[२] **बहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः।**
ब्रह्मभावमयं सूत्रं धारयेद्यः स चेतनः॥

[३] **शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतश्च तन्मयम्।**
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः॥

[४] **निरोद्धका ध्यानं संध्या वाक्कायक्लेशवर्जिता।**
सन्धिनी सर्वभूतानां सा संध्या ह्येक दण्डिनाम्॥

संन्यासी को शिखा सहित यज्ञोपवीत का सूत्र त्याग करने का क्यों आदेश है? इस लिये कि जिस मनुष्य को परमात्मा की सामीप्यता सर्व कालों में प्राप्त तथा ज्ञात है, जिस के रोम रोम में ओ३म् रम रहा है, उसके लिये चितावनी के किसी चिह्न की भी आवश्यकता नहीं। जिस का शरीर तो क्या, मन और आत्मा भी पवित्र हो गया हो और जिसके ब्रह्म रन्ध्र में ज्ञान का चक्र चल रहा हो उसे सूत के तागे तथा बालों के चिह्न से सहायता लेने की क्या जरूरत है और जो क्षण क्षण में ब्रह्म के ध्यान में ही निमग्न रहनेवाला प्राणी मात्र को समदृष्टि से देखता हो, उसे काल विशेष में ध्यान लगाने की आवश्यकता क्यों? और योगयुक्त संन्यासी को अग्निहोत्र का बन्धन तो बांध ही नहीं सकता। क्योंकि—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥

दुर्गन्ध को दूर करने के लिए वह यत्न करे जो दुर्गन्ध फैलाता हो। जिसके समीप दुर्गन्ध नहीं आ सकती उसे दुर्गन्ध के दूर करने के प्रयत्न की भी आवश्यकता नहीं।

क्या आज कल के संन्यासी स्वयं न मान लेंगे कि ऊपर की कसौटी पर चढ़ने के योग्य वे नहीं हैं। सांसारिक पुरुषों से भी बढ़ कर धनोपार्जन

में लगे हुए हों, और इसलिए जिनको राग द्वेष में विवश होकर फंसना पड़े जो अज्ञान की निद्रा के वशीभूत होकर विषय भोग को ही आनन्द का साधन समझ रहे हों, जिन के मन और आत्मा तो दूर रहे, शरीर भी शुद्ध न हों क्या उन को शिखा, सूत्र अग्निहोत्र, सन्ध्यादि बन्धनों का त्याग करना योग्य है? ऊपर के प्रश्न पर दृष्टि डालते ही ऐसे पुरुष, जिन के विषय में गुसांई तुलसीदास लिख गये हैं कि:—

परहित हानि लाभ जिन्हकेरे। उजरे हर्ष विषाद बसेरे।।
हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।।

आर्य्यसमाज के संन्यासियों को मेरे विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न करेंगे; किन्तु मैं इन महानुभावों को तनिक भी दोष नहीं देता। जब पांच सहस्र वर्षों से गिरते गिरते गृहस्थाश्रम रूपी सागर की दशा वह हो गई है जो किसी से छुपी हुई नहीं तो तीनों प्रकार की एषणाओं से सर्वथा न मुक्त होते हुए भी आज कल के संन्यास-वेषधारी जो कुछ सेवा धर्म की कर रहे हैं वह भी थोड़ी नहीं हैं। तब क्या सन्देह है कि जब तक गृहस्थाश्रम का सुधार न होगा तब तक संन्यासाश्रम भी जो सर्व आश्रमों को मर्यादा में रखने का साधन है, अपना कर्त्तव्य पालन करने में समर्थ न होगा।

अन्तिम परिणाम यह निकला कि सर्वआश्रमों के सुधार का निर्भर गृहस्थाश्रम पर ही है और उस के सुधार के लिए आवश्यक है कि वर्णव्यवस्था की प्रणालि ठीक हो। पश्चिमीय देशों में जो आनापन्थ तथा नास्तिकपन की लहर उठ रही है और मनुष्य समाज को निगल जाने के लिए तय्यार है उसे निर्बल करने का सिवाय वर्णव्यवस्था की ठीक स्थिति के और कोई साधन नहीं है। तब क्या यह परिणाम निकालना कठिन है कि वर्णव्यवस्था को उस की गिरी हुई अवस्था से जब तक न उठाया जायगा तब तक आर्य्यसमाज अपने उद्देश्य की ओर एक पग भी नहीं उठा सकता।

धर्म्म विषयों पर प्रामाणिक व्यवस्था की जैसी उस समय आवश्यकता थी अब भी वैसी ही है। शोक कि इन पत्रों के जो उत्तर ऋषि दयानन्द की ओर से दिया गए वह नहीं मिल सकते नहीं तो बहुत से सन्देहों की निवृत्ति आप से आप हो जाती।

छुन्नीलाल विद्यार्थी का पत्र[1] (पृष्ठ ३९९ तथा ४०० पर) केवल यह

१. यह पत्र इस संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ७३८-७३९ पर छपा है।

दिखाने के लिए दिया गया है कि "**तुकबन्दी का शौक**" **किसी विशेष जाति, पंक्ति वा आयु आदि की "मीरास" नहीं है।**

खड्गज्ञान का नमूना एक पृष्ठ ५०१ वाले पत्र[१] से भी मिलता है।

महाशय प्रभुदयाल का पत्र[२], पृष्ठ ४०२, ४०३, सिद्ध करता है कि इन महानुभावों का दर्शनों के आर्य्यभाषा युक्त भाष्य का परिश्रम ऋषि दयानन्द के सत्सङ्ग का ही परिणाम था।

पण्डित ज्वालादत्त के पत्रों[३] से न केवल यह विदित होता है कि ऋषि दयानन्द के नाम से जो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं उनमें बहुत कुछ हाथ अन्य पण्डितों का था, जिसके कारण उन ग्रन्थों में अनेक अशुद्धियां रह गई हैं; बल्कि यह भी पता लगता है कि इन लोगों के परस्पर के रागद्वेष तथा अन्तरीय कुटिल भावों के कारण भी उस महान् आत्मा के उद्देश्य को बहुत कुछ हानि पहुंचती रही है। पण्डित ज्वालादत्त ने योग्यता कहां से सम्पादन की उसका पता ४१८ पृष्ठ से लगता है:[४]—"अब मामा जी ने लिखा है कि तुम्हारा महाभाष्य हम भेजदेंगे। गलती जो आपने निकाली मैं स्वीकार करता हूं, यह [मेरा] दोष है…………" मुंशी समर्थदान से इन की बनती ही न थी[५] और दिनरात जले बुझे हुए रहते थे। इस असन्तुष्टता के कारण इन्होंने और क्या अनथ करना चाहा था उस का वर्णन तब करूंगा जब मुझे शेष पत्रव्यवहार छापने का अवसर मिलेगा। इन लोगों की लीला का कुछ परिचय रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल के पत्र[६] से मिलता है जो पृष्ठ ४२३ से ४२६ तक छपा है।

---

१. यहां पृष्ठ ५०१ छपा है। म० मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार में केवल ४७२ पृष्ठ हैं। पूर्वापर के अनुसन्धान से यहां पृष्ठ संख्या ४०१ मानें तो वहां भी खड्गज्ञान का नमूना नहीं मिलता। हां, ऋ० द० द्वारा किये गये प्रतिमा-पूजनादि खण्डन के प्रभाव का तो उस में वर्णन है। अतः खड्गज्ञान शब्द विचारणीय है।

२. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ५०५-५०६ पर छपा है।

३. पं० ज्वालादत्त के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या २२३, २३४, २३५, २३६, २४०, २४६, ३५१ पर छपे हैं।

४. आगे उद्ध्रियमाण पाठ प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ३३०, पं० २५-२७ पर छपा है।

५. भाग ३, पृष्ठ ४२५-४२७ पर छपा पुरा पत्र पठनीय है, विशेषकर पृष्ठ ४२६, पं० १०-१६ तथा पृष्ठ ४२७, पं० २४-२५।

६. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पृष्ठ ४०२-४०५ तक छपा है।

दानापुर के रामनारायणलाल का पत्र पढ़ने योग्य है, जिसमे पता लगता है कि सं० १८८२ ई० में आर्य्यसामाजिक पुरुषों का प्रेम बड़ा ही उत्साह जनक था। पृष्ठ ४३० पर कैसे मनोहर शब्द हैं[1]। इस पत्र मे यह भी ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्तृत्व की टांग आर्य्यसमाज के मेम्बर उसी समय तोड़ने लग गए थे। पृ० ४२९ पर जो ग्रन्थ-संशोधन के लिए सभा का प्रस्ताव पेश किया गया है[2] उस की आज भी वैसी ही आवश्यकता है जैसी उस समय थी।

द्वारकानाथ का पत्र[3] पृष्ठ ४३२ से ४३९ तक इस लिए दिया गया है कि ऋषि दयानन्द के धर्म्मप्रचार के गौरव को लोग समझ सकें। जहां राजों, महाराजों, सेठ साहूकारों, धुरन्धर संस्कृत के पण्डितों तथा विदेशी विद्वानों में दयानन्द के सिंहनाद ने हलचल मचा दी थी, वहां साधारण पुरुषों को भी विद्योन्नति के लिये न्यौछावर करने के लिए तय्यार कर दिया था।

समाप्ति के समीप माई भगवती[4] तथा लाला जीवनदास के पत्र[5] दिए हैं वे पहिले सद्धर्म्म-प्रचारक पत्र में छप चुके हैं। सब से अन्तिम पत्र मुन्शी समर्थदान जी के हैं[6] जिन्हें केवल दिग्दर्शनमात्र समझना चाहिये। मेरे पास अब तक इतने पत्र बचे पड़े हैं कि यदि उन्हें छपाया जावे तो ५०० पृष्ठों की एक और पुस्तक तय्यार हो जावे[7]। वैदिक यन्त्रालय के

---

१. रामनारायण लाल का यह पत्र भाग ३, पूर्ण संख्या ३०६ पर छपा है। ये मनोहर शब्द इसी पत्र में पृष्ठ ३८८, पं० २१-२६ तक पढ़ें।

२. द्र०—वही पत्र भाग ३, पृष्ठ ३८८, पं० ७-१४ तक।

३. यह पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ४, पृष्ठ ६९०-६९५ तक छपा है।

४. माई भगवती के पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ३६२, ३७५ पर छपे हैं।

५. लाला जीवनदास के नाम लिखा ऋ० द० का पत्र प्रस्तुत संस्करण में भाग २, पूर्ण संख्या ६५९ पर छपा है।

६. मुन्शी समर्थदान के उक्त पत्र इस संस्करण में भाग ३, पूर्ण संख्या ५३१; भाग ४, पूर्ण संख्या ५३८, ५४५, ५५० पर छपे हैं।

७. पं० भगवद्दत्त जी के पास लाहौर में ऋ० द० को भेजे गये लगभग ५०० पत्रों का संग्रह था (जिन्हें श्री मामराज जी ढूंढ कर लाये थे)। वे देश-विभाजन के समय वहीं छूट जाने से नष्ट हो गये। इस प्रकार श्री मुंशीरामजी और पं० भगवद्दत्त

प्रबन्धकर्त्ताओं के लम्बे पत्र-व्यवहार के अतिरिक्त बहुत से अन्य उपयोगी पत्र बच रहे हैं। इन सब के अतिरिक्त उन अंग्रेजी पत्रों के अनुवाद भी छपने चाहिएं जो वैदिकमेगेजीन में निकल चुके हैं। किन्तु इन सर्व पत्रों के मुद्रित करने का विचार उस समय तक रोकना पड़ता है जब तक यह पता न लगे कि जो पुस्तक मैं आज समाप्त कर के सर्वसाधारण के हाथों में देने लगा हूँ उस का कुछ आदर होगा वा नहीं।

इस प्रकार की पुस्तकों का छपना दो तरह ही हो सकता है। या तो काफी ग्राहक बन जावें जिनके अग्रिम भेजे धन से छपाई का काम हो सके, वा कुछ उदार पुरुष छपाई के लिए धन देदें। पहिले ढङ्ग में क्लेश बहुत रहता है जिन के कारण मैं उसको वर्त्ताव में नहीं ला सकता। दूसरे ढङ्ग पर काम हो सकता है। यदि एक वा कई भद्र पुरुष मिल कर ५००) जमा कर दें तो पत्र-व्यवहार का दूसरा भाग भी छप जायगा।

ग्रन्थ की समाप्ति पर मुझे अपने प्रिय भाई पण्डित ब्रह्मानन्द को धन्यवाद देना है जिन्होंने ग्रन्थ के संशोधनादि में मुझे सहायता दे कर बाधित किया।

शान्ति भवन।
जालन्धर शहर।
प्रविष्टा १७ फाल्गुन सं० १९६६ वि० } **मुन्शीराम जिज्ञासु**



जी दोनों को प्रकाशन-योग्य पत्र उन्हें आवश्यक-साधन प्राप्त न होने से नष्ट हो गये। इससे समाज की कितनी भारी हानि हुई, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

श्री पं० चमूपति जी द्वारा लिखित

भूमिका[1]

गुरुकुल के संस्थापक श्री महात्मा मुन्शीराम जी ने १९६६ वि० में **"ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार"** प्रकाशित किया था। उस संग्रह में ऋषि के पत्र कम थे। अधिक पत्र वे थे जो अन्य सज्जनों ने ऋषि के पास भेजे थे। इस के पश्चात् श्री पं० भगवद्दत्त जी ने चार भागों में "ऋषि दयानन्द के पत्र तथा विज्ञापन" मुद्रित कराये। इन संग्रहों में केवल ऋषि के पत्र संगृहीत हुए हैं। पटियाला रियासत के राज-ऐतिहासिक श्रीयुत किशोरीसिंह जी की कृपा से हमें ऋषि दयानन्द के राजपूताना-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार के कुछेक संग्रह प्राप्त हुए हैं। इनमें ऋषि के अपने पत्र भी हैं[2] और ऋषि के नाम अन्य महानुभावों के पत्र भी। इन संग्रहों को हम **"ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार—द्वितीय भाग"** नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। ये पत्र ऋषि के जीवन के अन्तिम भाग से सम्बन्ध रखते हैं। अतः इन में प्रकट की गई ऋषि की सम्मतियों की प्रामाणिकता बहुत अधिक है।

राजाओं में ऋषि की कितनी अधिक प्रतिष्ठा थी? किस प्रकार प्रत्येक नरेश ऋषि के दर्शनों के लिए लालायित रहता था? किस निर्भीकता और फिर किस नीति-निपुणता से ऋषि उनके वैयक्तिक जीवन तथा राज्य-शासन का एक साथ सुधार कर रहे थे? इस प्रकार के अनेक विषयों पर इन पत्रों के अध्ययन से प्रकाश पड़ता है। कई पत्रों में उपदेश-रूप से ऋषि के राजनैतिक सिद्धान्त उल्लिखित हैं। उन से ऋषि की प्रकाण्ड नीतिज्ञता प्रमाणित होती है। आर्य संस्कृति से प्रगाढ़ प्रेम, प्राणीमात्र के लिए असीम दया, गोरक्षा की विशाल आयोजना, राजकुमारों को

---

१. यह भूमिका श्री पं० चमूपति जी ने स्वसम्पादित 'ऋ० द० का पत्र-व्यवहार' भाग २ में प्रकाशित की थी। उसे सुरक्षित रखने के लिए हम इसे यहां छाप रहे हैं। इसी भूमिका के अन्त में उक्त पत्र-व्यवहार में निर्दिष्ट व्यक्तियों का ठा० किशोरसिंह द्वारा लिखा जो परिचय छपा है, उसे भी साथ में दे रहे हैं।

२. ऋ० द० के ये पत्र 'पत्र और विज्ञापन' भाग ४ में यथास्थान छपे हैं।

धनुर्वेद-शिक्षा के लिए क्षात्रशाला खोलने का उद्योग—इत्यादि प्रकरण बार-बार पाठकों के दृष्टिगोचर होंगे। ऋषि के जीवन-चरित लिखन में इन पत्रों की सहायता का महत्त्व अकथनीय है।

आर्य-भाषा के निर्माण तथा प्रचार में ऋषि दयानन्द का कितना बड़ा हाथ है? इस प्रश्न का उत्तर भी ये पत्र अपनी मूक वाणी से दे रहे हैं। ऋषि के साथ पत्र-व्यवहार करनेवाले पण्डित हैं, राजा हैं। उन के पास योग्य लेखक रहे होंगे। परन्तु उन की भाषा को तुलना ऋषि की भाषा से कर जाइये। आकाश-पाताल का भेद प्रतीत होगा। ऋषि के पत्र ऋषि के हाथ के नहीं, लेखकों के हाथ के लिखे हुए हैं। ऋषि ने उन में यत्र-तत्र संशोधन अवश्य किया है परन्तु वह संशोधन स्वभावतः अपूर्ण रहा है। शब्दों के शुद्ध संस्कृतरूप के पक्षपाती रहते हुए भी ऋषि कहीं-कहीं सामान्य लोगों में प्रचलित उच्चारण के अनुसार भी शब्दों के लिखे जाने को सहन कर गये हैं। "असक्य" "सतकार" और "युक्ती" तो शायद लेखक के प्रमाद का परिणाम ही हैं, क्योंकि अन्यत्र "अशक्य" "सत्कार" और "युक्ति" मिलते ही हैं। परन्तु कहीं "कृष्णसिंह" और कहीं "किसनसिंह"—यह विकल्प जरूर ऋषि की प्रचलित भाषा-प्रियता का परिचायक है।

इन पत्रों के छपवाने में हमने **"मक्खी पर मक्खी मारना"** ही उचित समझा है। मूल-लेख के अनुसार शुद्ध-अशुद्ध ज्यों का त्यों धर दिया गया है। मूल-पत्रों के अनुरूप ही उनकी नकल कराने का कठिन कार्य गुरुकुल के वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार ने कराया है। मुद्रित होते समय पुस्तक के प्रूफ इसी विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के उपाध्याय श्री पं० केशवदेव जी वेदालङ्कार ने देखे और संशोधन किये हैं। इन दोनों महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

ऋषि के पत्र-व्यवहार के इस भाग में छोटे-मोटे ११ संग्रह समाविष्ट किये गये हैं। अन्तिम दो संग्रह शेष पुस्तक के मुद्रित हो जाने पर प्राप्त हुए। अतः उन्हें पुस्तक के अन्त में स्थान दे दिया गया है। उन में जो पत्र-व्यवहार समाविष्ट किया गया है, वह उन्हीं दो महानुभावों—श्री कविराजा श्यामलदास जी तथा श्री कृष्णसिंह बारहट जा—के साथ हुआ है जिन के साथ किया गया अन्य पत्र-व्यवहार इस से पूर्व के संग्रहों में संकलित हुआ है। एक ही महानुभावों के साथ हुए पत्र-व्यवहार को दो पृथक्

स्थानों में मुद्रित कराने का कारण उनके विभिन्न भागों की भिन्न-भिन्न समयों में प्राप्ति है।

पूर्व-प्राप्त ९ संग्रहों के साथ-साथ एक दसवां संग्रह भी प्राप्त हुआ था। इन दस संग्रहों के आधार पर मेरा एक लेख लाहौर के मासिक "आर्य" की पौष १९८८ वि० की संख्या में प्रकाशित हुआ था। उस में एक स्थल पर इन संग्रहों और इन में समाविष्ट हुए पत्रों की संख्या इस प्रकार दी गई है:—

"·········दस फाइलें ऋषि के पत्र-व्यवहार की ऐसी मिलीं जिन में १४ पत्र और उपदेशावलियां तो ऋषि के अपने हाथ की लिखी हुई, या लिखवा कर अपने हाथ से संशोधित की हुई, और ५६ पत्र राजस्थानीय रजवाड़ों के राजाओं या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संगृहीत हैं।"

प्रकाशित किये जा रहे इन संग्रहों के देखने से प्रतीत होता है कि प्रथम ९ संग्रहों में ऋषि के पत्र तथा उपदेशावलियों की संख्या तो वास्तव में १४ ही है परन्तु ऋषि के नाम लिखे गये पत्रों की संख्या ५४ है। पृष्ठ ५१ पर दी गई विषय-सूचि[1] में पत्र सं० ५ तथा ६ एक ही पत्र की दो प्रतियां थीं। इन में से एक ही मुद्रित कराई गई। **उपरिनिर्दिष्ट १० फाइलों में से एक फाइल गुम हो गई थी।** उसमें एक ही पत्र था। सो "आर्य" में प्रकाशित मेरे उपर्युक्त लेख द्वारा सुरक्षित रहा। आगे चल कर उसी लेख में लिखा है:—

"फाइल सं० १० जोधपुर नरेश के अन्तःपुर में रहनेवाली एक दासी की राम कहानी है। उसे राजा के किसी मुसलमान मुसाहिब के कुत्सित अत्याचारों की शिकायत है। दासी के हृदय में आत्म-सुधार की पुण्य कामना उदय हुई है। इसी से वह इस पत्र द्वारा ऋषि के पतित-पावन चरणों में आई है। पत्र एक रद्दी से कागज पर टूटे फटे अक्षरों में लिखा हुआ है। दुखिया के पीड़ित हृदय ने मानों जीर्ण-शीर्ण पत्र का रूप ग्रहण किया है—

'आप से एक अरज स्त्रि की तरफ सु मालुम होय कि वो स्त्रि जोधपुर महाराज की स्त्रि के पास दासी ह सो वो मेरे पास पठाती है और धर्म की इच्छा पण पुरी ह सो उसके विघ्न ह कि जोधपुर महाराज के पास मरजी-

१. यह पृष्ठ संख्या और विषय सूची पं० चमूपति द्वारा सम्पा० भाग २ की है।

२. यह पत्र प्रस्तुत संग्रह में भाग ४, पृष्ठ ७२५ पर छपा है।

दान मुसल्मान रता सो वो जबरदस्ती सु अन्याय कर हे; मन उपरान्त जो उसके कर्णो नहीं कर तो राजा से कुछ जुटी साची वात करके कैद करा देवे तथा ओर कोइ तर सु उनकी फजीती कर देव जीण सु कार्णो नहीं करती ओ दुःख ओर उसका सब भुजब करतो नरंग की निसाणी ह सो अब मन कोई करणो चाही जे ओर से इस का फंदा मासु निकरन वाको उद्यम तो कर रहि:हु सो परमेश्वर की किरपा करने बचु तो बचु सुकुहु ओर अब मैं आप सों करूं हूं की पाश्चातापायु के लिये ओर आगे के वण कांही करणो चाहिए जिससे में पाप सु बचु ओर द्रिव्य से तथा सरीर सु मारी सामर्थ होव जिस समुभ्फ बंदउ मुकतु ओर मांस तथा मद्य खान पान तो में सब छोड़ दियो ह ओर अब वास्ते आप फरमाव जिण मुजब करूं श्री समाचार दुसरान फुरमाव नहीं सो इस पत्र को जुवाव लीख नहीं रावसी। फाइल स० १०"

इस से स्पष्ट है कि गुम हो गई दसवीं फाइल में केवल दासी ही का पत्र था जो "आर्य" की उक्त संख्या से उद्धृत कर दिया गया है। राजाओं के पत्रों में एक दीन-हीन दासी की पुकार का कुछ विशेष महत्व है। ऋषि की सर्वप्रियता का यह अति उज्ज्वल प्रमाण है। ऋषि रंकों के उतने ही थे जितने राजाओं के।

जैसे ऊपर कहा जा चुका है इन ६६ पत्रों के मुद्रित हो चुकने के पश्चात् श्रीयुत किशोरीसिंह जी ने दो संग्रहों में ऋषि दयानन्द के आठ और पत्र भेजने की कृपा की। उन्हें मिला कर सम्पूर्ण पत्रों की संख्या ७७ हो गई है। ७६ पत्र पुस्तक में छपे हैं और एक पत्र ऊपर भूमिका में। पृष्ठ १७३ पर दिया गया पत्र सं० ४ एक पूर्व-मुद्रित पत्र की प्रति है, परन्तु उस में पूर्व-प्रति से कुछ पाठ-भेद पाया जाता है सो पाद-टिप्पणि में प्रदर्शित कर दिया है।

पृ० १८१ पर कविराजा श्यामलदास जी के नाम ऋषि का पत्र[1] सं० १ दिया गया है। इस पृष्ठ की पंक्ति ६ में "मांसाहारादि[2]" के पश्चात् कोई शब्द स्पष्ट छूट गया प्रतीत होता है। ऋषि ने घोड़े पर चढ़ने की तरह मांसाहार का भी निषेध किया है। इस सम्बन्ध में मेरे एक प्रश्न के उत्तर में श्रीयुत किशोरीसिंह जी लिखते हैं:—

---

२. यह पत्र ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २ में पृष्ठ ८३२-८३३ पर छपा है।

२. द्र०—वही, भाग २, पृष्ठ ८३२, पं० १७।

In this connection I remember one incident that was narrated to me by late Kaviraja Shamal Das ji himself. It Was as follows:—

One day while Swami ji was sitting in his room in the Naulakha Palace in Gulab Bagh, His Highness Maharaja Sajjan Singh ji, Kaviraja Shamal Das ji and my revered father Thakur Kishan Singh ji went there for his Darshan. During the course of conversation Swami ji found fault with meat diet Kaviraja Shamal Das ji objected and remarked that it gives vigour to human body. Swami ji in reply remarked that milk was more strength-giving than meat. He said that during his whole life he had never touched meat and though older than Kaviraja ji, if he were to catch two of them by wrist they would find it difficult to get loose of him. Kaviraja ji's rejoinder was that this was not due to his milk died but to his Brahmacharya from his very birth. In spite of all this he led a vegetarian life from Maharaja Shombhu Singh ji's death in 1928 V. up till his own death in 1940 V.

इस अंग्रेजी लेख का आर्य-भाषा में अनुवाद इस प्रकार होगा:—

इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना स्मरण है जो मुझे कविराजा शामलदास जी ने स्वयं सुनाई थी। वह यह हैः—

एक दिन जब स्वामी जी नौलखा बाग में अपने कमरे में बैठे थे, (उदयपुर) नरेश महाराजा सज्जनसिंह जी, कविराजा शामलदास जी तथा मेरे पूज्य पिता ठाकुर किशनसिंह जी उन के दर्शनों के लिये गये। बात करते-करते स्वामी जी ने मांसाहार के दोष बताए। कविराजा जी ने इस पर आपत्ति उठाई और कहा कि मांस खाने से मनुष्य के शरीर में शक्ति आती है। स्वामी जी ने उत्तर दिया:—मांस की अपेक्षा दूध अधिक शक्ति देता है। ऋषि ने कहा:—मैंने सारी आयु मांस को कभी हाथ नहीं लगाया। और चाहे अब मेरी आयु कविराजा जी से बड़ी है तो

भी यदि आप दो को मैं अकेला कलाई से पकड़ लूं तो आप को उस का छुड़ाना कठिन हो जाय। इस पर कविराजा जी का प्रत्युत्तर यह था कि इसका कारण दुग्धाहार नहीं किन्तु आजन्म ब्रह्मचर्य है। यह होते हुए भी कविराजा जी महाराज शंभूसिंह जी के परलोक सिधारने के १९२८ वि० से लेकर उनके अपने देहान्त १९४० वि० तक शाकाहारी ही रहे।

इस घटना से ऋषि के पत्र के अभिप्राय के विषय में सन्देह का कुछ भी स्थान नहीं रह जाता। ऋषि ने कविराजा जी के आपत्ति उठाने से उन्हें मांसाहारी समझा है और रुग्ण दशा में पथ्य के रूप में उन्हें मांसाहार से रोका है।

पत्रों में जिन महानुभावों के नाम आये हैं, उन में से कुछेक का परिचय भी श्रीयुत किशोरसिंह जी ने दे दिया है। इस से पत्रों के समझने में सहायता मिलेगी। मैं इन संग्रहों तथा इस परिचय के लिए इन ठाकुर महानुभाव को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

गुरुकुल कांगड़ी,
हरद्वार
तिथि १९ फाल्गुन, १९९१

चमूपति
मुख्याधिष्ठाता



संक्षिप्त परिचय[1]

श्री मोहनलाल विष्णुलाल जी पंड्या

श्री मोहनलाल जी मथुरा के निवासी थे, आरम्भ में कविराजा श्यामलदास जी से मथुरा में मिले और उन से उदयपुर राज्य में कोई नौकरी दिलाने के अर्थ प्रार्थना की। स्वामी जी से मथुरा में मिले। स्वामी जी ने कविराजा जी तथा महाराणा साहब को पत्र लिखे जिस में पंड्या जी को राज्य में कोई स्थान देने की सिफारिश थी। तदनुसार उन्हें राज्य में नौकर रख लिया गया। स्वामी जी के उदयपुर पधारने पर दबार ने स्वामी जी की सेवा में इन्हें नियुक्त कर दिया। वहां आप लिखने पढ़ने का कार्य करते थे। फिर स्वामी जी की सिफारिश से उदयपुर में महद्-राज सभा (Chief Court) में मेम्बर करा दिया। वे आर्यसमाज उदय-पुर के सर्व-प्रथम मंत्री रहे।

१९४८ वि० में पण्ड्या जी Chief Court की मेम्बरी से च्युत करके दीवानी हाकिम Civil Judge नियुक्त हुए, इसे इन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् वह प्रतापगढ़ के दीवान बने। वहां से Retire हो कर मथुरा आ गये। मथुरा आकर आर्यसमाज से पृथक् हो कर पौराणिक हो गये। ठा० किशोरीसिंह जी ने स्वयम् अपनी आंखों मन्दिरों की परि-क्रमा देते देखा। लगभग [सं०] १९७० में इन का देहान्त हो गया।

—:o:—

कविराजा श्री श्यामलदास जी

कविराजा श्यामलदास जी जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम

---

१. यह परिचय पं० चमूपति जी द्वारा सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र-व्यवहार' भाग २ में उनकी भूमिका के अन्त में छपा है। इस के लेखक श्री ठा० किशोरीसिंह जी हैं, जिनसे श्री पं० चमूपति जी को ऋ० द० के पत्र व्यवहार की ११ फाइलें प्राप्त हुई थीं। यद्यपि इस परिचय में लिखे गये व्यक्तियों का परिचय श्री ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत (जोधपुर) द्वारा लिखा गया 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञा-पन' भाग २ के अन्त में सप्तम परिशिष्ट में छप चुका है, फिर भी इस परिचय में कुछ विशेषता है। अतः हम यहां छाप रहे हैं।

कायमसिंह जी का था। कविराजा जी का जन्म १८९३ वि० द्वि० आषाढ़ कृष्ण ७ को हुआ था। इनके पिता उदयपुर में एक प्रतिष्ठित जागीरदार थे।

१९२८ वि० में महाराणा शम्भूसिंह ने मेवाड़ का इतिहास लिखने के लिए आप को नियुक्त किया। इतिहास-विद्या में अनुभव न होने के कारण कतिपय फारसी तवारीखों को देख कर उसी ढंग से लिखने लगे। तथा शिलालेख, सिक्के, ताम्रपत्र, पुराने कागजात, जनश्रुति, भाषा व संस्कृत ग्रन्थ, काव्य तथा अंग्रेजी, फारसी की ऐतिहासिक पुस्तकें एकत्र करते रहे।

मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी की प्रार्थना पर आप को पुनः इतिहास का कार्य सौंपा गया।

१९३६ वि० के माघ फाल्गुन में इतिहास का कार्य आरम्भ किया और ब्रिटिश गवर्नमैण्ट की ओर से गोविन्द गंगाधर देशपांडे शिला-लेख पढ़ने को सहायक मिला।

आप रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के मेम्बर बने तथा वहां आर्कियालोजी और हिस्टरी के आनरेरी मेम्बर चुने गये। तत्पश्चात् रायल एशियाटिक सोसाइटी लण्डन व बम्बई ब्रांच के मेम्बर बने। पुनः हिस्टोरिकल सोसाइटी लण्डन के फैलो बने। मेवाड़ के इतिहास **"वीर-विनोद"** को लिखते रहे।

महाराणा सज्जनसिंह जी ने कविराजा की पदवी, जुहार, ताजीम, छडी, बांहपसाव, चरण-शरण की बड़ी मोहर, पैरों में सब प्रकार का स्वर्ण भूषण, पगड़ी में मांझा की इज्जत दी। अंग्रेजी गवर्नमैन्ट ने महामहोपाध्याय का खिताब दिया। ज्येष्ठ १९५० वि० को आप का स्वर्गवास हो गया।

—:o:—

पं० छगनलाल जी

पं० छगनलाल जी श्रीमाली ब्राह्मण जोधपुर निवासी, संस्कृत के विद्वान् थे। आप मसूदा दर्बार स्कूल में संस्कृत-अध्यापक थे। और पुनः वहां से जोधपुर दर्बार स्कूल के हेड पण्डित हुए।

सन् १९०० के लगभग जसवन्त कालेज के संस्कृत प्रोफेसर बने। आप आर्यसमाजी नहीं थे।

राव राजा तेजसिंह जी

आप जोधपुर नरेश तख्तसिंह जी की पासवान के पुत्र थे, और सर प्रतापसिंह जी के कृपापात्र थे। महाराजा जसवन्त सिंह जी ने आप को जागीर दी थी। जागीर बख्शी के हाकिम रहे। प्रायः समय-समय पर दूसरे कार्य भी मिलते रहे परन्तु मुख्य कार्य जागीर बख्शी का ही रहा। आर्य समाजी विचार अन्त तक रहे किन्तु जोधपुर के राजवंश में इन का आचार महा पतित रहा जो किसी प्रकार भी लिखने योग्य नहीं।

—:o:—

श्री बारहट कृष्णसिंह जी

श्री बारहट कृष्णसिंह जी सौदा जाति के चारण, सीसोदिया वंश के पौलपात, शाहपुरा राजा के जागीरदार थे। इन का जन्म १९०६ वि० फाल्गुन शुक्ला २ को शाहपुरा राज्य के देवपुरा में—उपनाम बारहट जी का खेड़ा में जो वंश परम्परा से इन्हीं की जमीदारी है—हुआ था।

इन की बाल्यावस्था में ही इन के पिता बारहट जी अवनाड़सिंह जी का परलोक वास हो गया था।

शाहपुराधीश नाहरसिंह जी ने मेवाड़ के साथ अपने सीमा प्रान्त के झगड़ों को तय करने के लिए इन को भेजा। इन की बुद्धिमत्ता के कारण दोनों राज्यों में इन की चाहना हुई। शाहपुराधीश ने इन्हें महकमे-माल का सुपरिन्टेन्डेण्ट नियुक्त किया।

४ वर्ष के बाद शाहपुरा व उदयपुर का कस्टम (जकात) का झगड़ा बढ़ गया। जब आप उसे निपटाने के लिए भेजे गये तो राणा सज्जनसिंह जी ने इन को मांग लिया तथा अपना सलाहकार नियुक्त किया। महाराणा सज्जनसिंह जी इन्हें बहुत चाहते थे। उन्होंने जोधपुराधीश यशवन्तसिंह जी तथा कृष्णगढ़ाधीश शार्दूलसिंह जी के सामने कहा, "**यदि मुझे आज तक कोई सुलभ अमूल्य रत्न मिला है तो वह बारहट कृष्णसिंह जी है।**"

महाराणा जी ने कविराजा श्यामलदासजी से कई बार अपना संकल्प प्रकट किया कि वह बारहट जी को कोई बड़ी जागीर व मान देकर अलंकृत करेंगे किन्तु यह संकल्प महाराणा के मन में ही रह गया। वे

युवावस्था में ही परलोक वासी हो गये। तब बारहट जी राज्य कार्य से तटस्थ हो गये।

श्री बारहट कृष्णसिंह जी कविराजा श्यामलदास जी के भानजे थे।

१९५१ वि० में बारहट जी किसी राज्यकार्य वश जोधपुर पधारे। तब जोधपुराधीश यशवन्तसिंह जी ने उन्हें पैरों में स्वर्णालङ्कार देकर जोधपुर में ही रख लिया और महाराणा फतहसिंह जी की अनुमति ले ली।

वे अन्त तक जोधपुर रहे। २४ जनवरी सन् १९०८ सायंकाल ३ बजे जोधपुर में उन का देहान्त हो गया।

आप हिन्दी भाषा के लेखक, ब्रजभाषा के कवि, तथा संस्कृत, प्राकृत, मागधी, डिंगल भाषाओं के पूर्ण पण्डित थे। उन्होंने हिन्दी में कई ग्रन्थ लिखे जिन में से **बारहट कृष्णसिंह जी का जीवनचरित्र अथवा देसी रजवाड़ों का बृहत राजकीय अन्तरंग आधुनिक इतिहास** मुख्य था।

बारहट जी के जीवनकाल में इस ग्रन्थ के छपने की उनकी निजी आज्ञा नहीं थी। इस ग्रन्थ को (जो देशी राज्यों का गोप्य अन्तरंग इतिहास है) देखने के लिए महाराणा सज्जनसिंह जी ने मालिकाना अधिकार से जोर डाला तो यह राजी न हुए और सदा के लिए उदयपुर छोड़कर जाने लगे इस पर सज्जनसिंह जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा, "**इसे निश्चित रूप से लिखो पर खूब जांच कर लिखो।**"

आप आखेट क्रिया में बड़े कुशल थे।

—:o:—

फतहसिंह जी झाला

आप उदयपुर के बड़े जागीरदार १६ उमरावों में से एक थे। कविराजा श्यामलदास जी के मित्र थे। पुरानी शैली के सीधे सच्चे व्यक्ति थे[1]।

—:o:—

१. ये ही महाराणा सज्जनसिंह जी के पश्चात् मेवाड़ की गद्दी पर विराजमान हुए।

नाम-सूची

उन व्यक्तियों की, जिन्होंने अ० द० को
पत्र, तार, पारसल आदि भेजे

नाम–सूची

उन व्यक्तियों के नाम, जिन्होंने ऋ० द० को पत्र तार आदि भेजे

क्रम-संख्या	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
१	पत्र	३	अङ्गद शास्त्री (पीलीभीतवाले)	शाहजहांपुर	१३९,१४०,१४१
	पत्र-सूचना	१	,, ,, ,,	(कर्णवास)	६
२	पत्र	२	अज्ञात नाम	?	११२,५७०
३	,,	१	,, ,,	बम्बई	१३
४	पत्र-सूचना	२	,, ,,	बिलायत	१३७,१३८
५	तार-सूचना	१	,, ,,	मुलतान	५४
६	पत्र-सूचना	१	अनेक व्यक्ति	रुड़की	६३
७	पत्र	१	अमृतराम वेदान्ती साधु	बूंदी	४०७
८	पत्र	१	अगस्टस् गस्टस् सेकेट्री	न्यूयार्क	५८
			अल्काट[1]	न्यूयार्क	
९	पत्र	४	आत्मानन्द स्वामी	फिलौर शिमला	३४०,४६८,४९२,४९५
१०	पत्र-सूचना	१	आत्माराम (जैनी)	गुजरांवाला	२२०

११	पत्र-सूचना	१	आनन्दीलाल	मेरठ	२६६
१२	पत्र	१	आर० एच० हाक्स	केलिफोर्निया(अमेरिका)	१३२
१३	अभिनन्दन-पत्र	१	आर्यसमाज (आगरा)	आगरा	२५३
१४	पत्र-सूचना	१	आर्यसमाज	जयपुर	४१६
१५	पत्र	१	आर्यसमाज	मुरादाबाद	३६७
१६	शास्त्रार्थ-नियम-पत्र	१	आर्यसमाज	मेरठ	६०
१७	,, ,, ,,	१	आ० स० तथा मुसलमान	रुड़की	१३०
			आर्यसमाज[2] (मन्त्री)	फरुखाबाद	
१८	पत्र	१	आलाराम साधु	कराँची	६१५
१९	पत्र	१	इन्द्रनारायण पं० प्रधान आ०स०	लखनऊ	३६१
			इन्द्रमन[3] (इन्द्रमणि) मुंशी		
२०	विज्ञापन	१	इन्द्रमणि मुंशी[3]	मुरादाबाद	३८४
२१	पत्र	१४	ईश्वरानन्द स्वामी	पानीपत	४७६,४९१,४९८,५०२, ५११,५२२,५२५,५३५, ५५४,५७२,५८१,५८८, ५९२,५९६
२२	पत्र	२	उज्ज्वल जयकर्ण	उदयपुर	५१९,५४४
२३	तार-सूचना	१	उमरावसिंह	रुड़की	१११
२४	पत्र	१	ए० ओ० ह्यूम	?	३९१

१. द्र०—'हैनरी ऐस० अलकाट' शब्द। २. द्र०—'मन्त्री आर्यसमाज' शब्द। ३. द्र०—'मुंशी इन्द्रमणि' शब्द।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूण संख्या
			एच० एस० अल्काट[1]	न्यूयार्क	
२५	पत्र	३	एच० पी० ब्लैवेट्स्की	न्यूयार्क, बम्बई आदि	५६,२१२,२४३
	पत्र-सूचना	२	,, ,, ,,	...	१३६,२६४
२६	पत्र	१	कन्हैयालाल एग्जेटिव इञ्जिनियर	?	३६
२७	पत्र	१	कन्हैयालाल चौबे	जलालाबाद	२५५
२८	पत्र	६	कमलनयन शर्मा	अजमेर	४४८,४६१,४८१,५०५, ५१४,५५६,५६१,५७५, ५८५
			कर्नल आल्काट[1]	न्यूयार्क बम्बई आदि	
२९	पत्र	७	कालीचरण रामचरण[2]	फर्रुखाबाद	२५८,२६१,३२७,३४७, ४१२,४२०,४५७
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	२४८,३६६
३०	पत्र	३	कालूराम शर्मा	रामगढ (सीकर)	४२,४५५,४८९[3]
	पत्र-सूचना	४	,, ,,	,,	२२,२३,२४,४५४
३१	पत्र	१	काशीराम	मुलतान	४९९
३२	पत्र	२	किशनलाल साह (कृष्णलाल भट्ट)	अलमोड़ा	३०२,५७१

३३	पत्र	१	कुन्दनलाल गुप्त	नगलिया उदयभान (बुलन्दशहर)	५०४
३४	पत्र	२	कृपाराम (स्वामी, पण्डित)	देहरादून	२५४,५८२
	पत्र-सूचना	४	,, ,,	,,	११६,२०८,२२५,३६४
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	२९९
३५	पत्र	८	कृष्ण(किशन) सिंह बारहट[४]	उदयपुर	३९९,४१४,४२९,४९३,५०७,५१२,५१८,५८६
३६	पत्र	१	केदारबल्लभ[५]	रामगढ़ (सीकर)	४८९
३७	पत्र	१	केवलचन्द खूबचन्द	नासीक	२९२
३८	पत्र	२	केशवलाल निर्भयराम	सूरत	१५८,१५९
३९	पत्र	१	क्षेमकरणदास	मुरादाबाद	५७६
४०	पत्र	२	खण्डेराव पाण्डुरंग	खण्डवा	३२०,३२८
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३२३
४१	पत्र	१	खुन्नीलाल	?	६०६
४२	पत्र	१	खुबचन्द केवलदास	नासिक	२९२
४३	पत्र	१	गङ्गादत्त शर्मा	मथुरा	१०
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	८

१. द्र०—'हैनरी ऐस० अलकाट' शब्द।
२. कहीं-कहीं 'रामशरण' पाठ भी है।
३. यह पत्र पं० कालूराम जी के शिष्य केदारबल्लभ ने लिखा था।
४. द्र०—'श्री कृशन बारट' शब्द।
५. यह पं० कालूराम शर्मा का शिष्य था। उनकी आज्ञा से इसने यह पत्र लिखा था।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
४४	विज्ञापन	१	गट्टूलाल के पक्षधर	(बम्बई)	(परिशिष्ट ६, पृ० ८१७)
४५	पत्र	१	गणेशप्रसाद (पण्डित)	फर्रुखाबाद	२३३
४६	पत्र	१	गण्डासिंह	रोपड़	१०५
४७	पत्र-सूचना	१	गुजरांवाले का पत्र[3]	...	१८८
४८	पत्र	२	गोपालराव हरि	फर्रुखाबाद	३४४,४०७ के आगे[1]
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	२४६
४६	पत्र	६	गोपालराव हरि देशमुख	बम्बई	३४,३७,३८,४१,२२७,३४४
	पत्र-सूचना	४	,, ,, ,,	,,	१६,१८,२२६,२४४
५०	पत्र	१	गोपालसहाय	करनाल	५६७
५१	पत्र	१	गोपीनाथ पण्डित	जयपुर	२२४
५२	पत्र	१	गोविन्दलाल आदि पण्डित वा साधु लोग	हरद्वार	१२६
५३	विज्ञापन	१	गोविन्द बालकृष्ण आदि	(बम्बई)	(परिशिष्ट ६, पृष्ठ ८१८)
५४	पत्र	१	चतुर्भुज	(हरद्वार)	१२३[3]
	पत्र-सूचना	१	,,	(काशी)	१६५
५५	पत्र	१	चन्दनगोपाल ओवरसियर	गोंडा	३२६
५६	पत्र	१	चांदमल कोठारी	मसूदा	३७२

५७	पत्र	१	चुन्नीलाल	दारानगर(बिजनौर)	३१४
५८	पत्र	६	छगनलाल द्विवेदी	मसूदा	३४८,४२१,४२२,४५८, ४८६,५३६,५८६,५९८, ६१६[४]
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	३४५,३६७,४४३
५९	पत्र	२	छत्रदत्त शर्मा	शाहपुरा	४७३,४९४
६०	पत्र	१	छुट्टनलाल	बांदनवाड़ा	४६०
६१	पत्र	१	जगदम्बाप्रसाद	बरेली	१८०
६२	पत्र	१	जगदम्बिकाप्रताप बहादुरसिंह	देवतहा	६०५
६३	पत्र	१	जतकरण[५]	शाहपुरा	५३४
६४	पत्र	१	जवाहर(शिष्य पं० कालूराम)	रामगढ़ (सीकर)	२५
६५	पत्र	११	जवाहरसिंह	लाहौर शाहपुरा	३९६,४११,४३१,४४०, ४५३,४६४,४७४,४७५, ४७८,५६०,६००
	पत्र-सूचना	१	,,	,, ,,	२५७

१. यदि यहाँ गुजरांवाले ठाकरदास जैनी अभिप्रेत है, तो उसके नाम का पूर्ण संख्या १८२ का पत्र देखें।

२. यह पत्र साधु अमृतराम वेदान्ती (बूंदी) के ऋ० द० को लिखे गये पूर्ण संख्या ४०७ (भाग ३, पृष्ठ ४८८-४९०) के उत्तर में साधु अमृतराम को लिखा गया है।

३. पं० श्रद्धाराम के साथ सम्मिलित लिखा गया पत्र।

४. पन्नालाल के साथ सम्मिलित पत्र।

५. मुद्रित पत्र में 'से' विभक्ति का 'मेवाड़ी' भाषा का 'सु' रूप है जो नाम के साथ जुड़ गया है। पत्र के अन्त में 'रामानन्दरशाह' आदि लेख सम्भवतः स्थान का निर्देशक है।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
	तार-सूचना	१	जवाहरसिंह	लाहौर शाहपुरा	४३०
६६	पत्र	१	जसवन्तराय	मुलतान	५०
६७	पत्र-सूचना	१	जस्साराम	कहरोड़	५२
६८	पत्र	४	जालिमसिंह	रूपधनी (एटा)	२६३,३५८,५६६,५६४
	मनीआर्डर-सूचना	१	,,	,, ,,	२६४
६९	पत्र	१	जी० माइल्ड एम० डी०	लन्दन	१३४
७०	पत्र	१४	जी० वाइज	बेशडन वीजबेडन	१६२,१७३,१७४,१७५, १७६,१९५,१९९,२००, २०१,२०२,२१०,२११, २१४,२१७
७१	विज्ञापन	१	(जुगलकिशरोर)	काशी	१६६
७२	पत्र	१	जुगलबिहारी शर्मा	अजमेर	१०१
७३	पत्र	१	जोधपुरनरेश के अन्तःपुर की दासी	जोधपुर	५६३
७४	पत्र	१	जोसीलाल कल्याण जी	बम्बई	४३३
७५	पत्र	७	ज्वालादत्त पण्डित	बनारस प्रयाग	२२३,२३४,२३५,२३६, २४०,२४६,३५१

७६	पत्र	७	ठाकोरदास (भावड़ा)	गुजरांवाला	१८१,१८२,१६६,१६७, १६८,२०३,२०४
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३२
७७	पत्र	१	डी० ए० राजा पाकसा	लंका	५४६
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३८०
७८	पत्र	१	डेविडसन	स्काटलैण्ड	१३३
७६	विज्ञापन-सूचना	१	ताराचरण भट्टाचार्य	काशी	१४६
८०	पत्र	२	तारादत्त शर्मा	फर्रुखाबाद	४७७,५४२
८१	तार	१	तुकोजीराव होल्कर (राजा)	इन्दौर	२८६
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३७७
८२	पत्र	१	तुलसीराम प्रधान आ० स०	बरेली	३३५[1]
८३	पत्र	३	तेजसिंह रावराजा	जोधपुर	३८६,५००,५६१[2]
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	४१८
८४	पत्र	२	दयाराम (मन्त्री आ० स०)	मुलतान	२३६,३०१
८५	पत्र	३	दयाराम शर्मा (वै० यं०)	प्रयाग	२७२,२६०[3],४२३[4]
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	२७७
८६	पत्र	१	दामोदर शास्त्री	नाथद्वारा (मेवाड़)	४२७
८७	पत्र-सूचना	२	दामोदरदास मुंशी	जोधपुर	४१६,४३४

१. भोलानाथ (मन्त्री आ० स०) के साथ सम्मिलित पत्र। २. प्रतापसिंह महाराजा के साथ सम्मिलित पत्र।
३. अन्यों के साथ सम्मिलित पत्र। ४. पूर्ण संख्या ४२३ पत्र में भीमसेन शर्मा के पत्र के अनन्तर छपा हुआ पत्र देखें।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
८८	पत्र	१	दीनानाथ गांगोली	दार्जिलिंग	३५
८९	पत्र	१	दुर्गाचरण आदि	मुरादाबाद	४४१
९०	पत्र	३	दुर्गाप्रसाद	फर्रुखाबाद	३८५,४४९,५८३
	पत्र-सूचना	३	,,	,,	२१८,२९३,३१८
	पारसल-सूचना	१	,,	,,	२९२
९१	पत्र-सूचना	१	द्वारकादास	ऐतमादपुर (आगरा)	२३८
९२	पत्र	१	द्वारकानाथ	पटना	५३८
९३	पत्र	१	द्वारकानाथ बनर्जी (वकील)	इलाहाबाद	३०८[1]
९४	पत्र	१	धन्नालाल पण्डित	भांवता (अजमेर)	४८७
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	४८२-४८४
९५	विज्ञापन	१	धर्मसभा	हरद्वार	१२५
	,,	१	,,	फर्रुखाबाद	१४४
९६	पत्र	१	घुड़ाराम श्रीमाली	जालोर	५५८[2]
९७	पत्र	६	नन्दकिशोरसिंह ठाकुर	जयपुर	३०३,४०६[3],४४६,४४७, ४८८,५०८,५३६,५५२[3]
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	२४४
९८	पत्र-सूचना	१	नारायणकिशन मुंशी	गुजरांवाला	२४२

९९	पत्र	१२	नाहरसिंह महाराजा	शाहपुरा	३३०,३३१,३५९,३८८, ४०४,४०५,४३६,४३७, ४४४,४६९,५०३,५५७
१००	पत्र	१	पन्नालाल (श्रीमाली)	मसूदा	६१६[५]
१०१	पत्र-सूचना	१	पण्डित लोग	फर्रुखाबाद	१४३
१०२	पत्र	१	पी० स्टीमन (जूनियर सेक्रेटरी)	इलाहाबाद	१५७
१०३	पत्र	१	पुष्कर दुबे पीटर डेविडसन[६]	जालोर स्काटलैण्ड	५५८[५]
१०४	पत्र	१	पुरुषोत्तमदास गोस्वामी	मथुरा	११
१०५	पत्र-सूचना	१	प्यारेलाल	लाहौर	११४
१०६	पत्र	२	प्रतापसिंह (महाराजा)	जोधपुर	४७०,५९१[७]
१०७	पत्र	१	प्रबन्धक मेला चांदापुर	चांदापुर	२९
१०८	पत्र	१	प्रभुदयाल पण्डित	तेरही (बांदा)	४१३

१. यह पत्र लक्ष्मणस्वरूप वकील के नाम है। उनके पूर्ण संख्या ३०८ के नीचे ही इसे छापा है।

२. पुष्कर दुबे के साथ सम्मिलित पत्र।

३. मन्त्री वैदिक धर्मसभा जयपुर के मन्त्री बिहारीलाल के पूर्ण संख्या ४०९, ५५२ के पत्र के नीचे नन्दकिशोरसिंह के भी अंग्रेजी में हस्ताक्षर होने से यहां निर्देश किया है।

४. छगनलाल द्विवेदी के साथ सम्मिलित पत्र।

५. घुडाराम श्रीमाली के साथ सम्मिलित पत्र।

६. द्र०—डेविडसन' शब्द।

७. तेजसिंह रावराजा के साथ सम्मिलित पत्र।

क्रम-संख्या	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
१०९	पत्र	२	फतहसिंह झाला राजराणा	देलवाड़ा (मेवाड़)	३४६,३७३
११०	पत्र	१	फ्रियर(सालिसिटर हाईकोर्ट)	बम्बई	३२५[1]
१११	पत्र	३	बख्तावरसिंह (प्रबन्धकर्त्ता वै० यं०)	काशी, शाहजहांपुर	१८६,१९०,२०९
	पत्र-सूचना	६	,, ,,	,, ,,	१७१,१८७,१९४,२०६, २१५,२२२
	पारसल-सूचना	३	,, ,,	,, ,,	१७२,१७८,१८९
११२	पत्र	४	बलदेव	जोधपुर, बांदनवाड़ा	४७९,५०६,५६५,५७७
	पत्र-सूचना	१	,,	,, ,,	४३५
११३	पत्र-सूचना	१	बल्लभदास	लाहौर	८६
११४	पत्र	५	बहादुरसिंह रावराजा	मसूदा (अजमेर)	३५६,४३८,६०१,६०२, ६०४
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	२६५,२६८
११५	पत्र	४	बालकराम बाजपेयी	अजमेर	५१७,५४१,५५५,५५६[2]
११६	पत्र	१	बालमकन्द	बम्बई	२५०
११७	पत्र	१	बिट्ठल भाणा	,,	४६२

११८	पत्र	३	बिहारीलाल (मन्त्री वैदिक धर्मसभा)	जयपुर	४०६,५५२,६०७
	विज्ञापन	१	,, ,,	,,	४०८
११९	पत्र	१	बिहारीलाल	शाहपुरा	४६६[3]
१२०	पत्र	१	बिहारीलाल	अमझरा	५१६
			बी० एच० चिन्तामणि[4]	बम्बई	
१२१	पत्र	१	बुलाकीराम गुप्त	कासगंज (एटा)	३०५
१२२	पत्र	१	ब्रजमोहनलाल शर्मा	इटावा	३१९
१२३	पत्र	१	ब्रुक (कर्नल)एजेण्ट गवर्नर जनरल	अजमेर	३
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	२,५
१२४	पत्र	२	भगवती माई	हरियाणा(होशियारपुर)	३६२,३७५
१२५	पत्र	१	भवानीदत्त	नागोद	२८६
१२६	पत्र	१०	भीमसेन शर्मा (पण्डित)	प्रयाग	२७१,२८३,२९०[5],२९५, ३०४,३१५,४२३,५४३, ५५१,५७३

१. स्मिथ के साथ सम्मिलित पत्र (नोटिस)।

२. पूर्ण संख्या ५५६ के कमलनयन शर्मा के पत्र के आरम्भ में छपा मन्त्र पाठ बालकराम वाजपेयी का नमूने के रूप में लिखा हुआ है।

३. हम्मीर शर्मा और वृद्धिचन्द्र के साथ सम्मिलित पत्र।

४. द्र०—'हरिश्चन्द्र चिन्तामणि' शब्द।

५. अन्यों के साथ सम्मिलित पत्र।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पृष्ठ संख्या
	पत्र-सूचना	२	भीमसेन पण्डित	प्रयाग	२१३,५३६
	पारसल-सूचना	३	,, ,,	,,	२७६,२८१,२६६
१२७	पत्र	२	भोलानाथ मन्त्री आ० स०	बरेली	३३५[1],५०१
१२८	पत्र	१	मंगलदान चारण[2]	नेठव गांव	४०६
			मणिकलाल[3]	उदयपुर	
१२६	पत्र	१	मणिभाई नभुभाई द्विवेदो	बम्बई	१५
			मथुरादास[4]	मियामीर	
१३०	पत्र	१	मनोहरदास खत्री(सम्पादक भारतमित्र	कलकत्ता	३००
१३१	पत्र	२	मन्त्री आर्यसमाज	फर्रुखाबाद	१६८,३३८
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	१६७,२२६,३३६
१३२	तार-सूचना	१	मन्त्री आर्यसमाज	बम्बई	१७
१३३	पत्र	१	महकमा कोतवाली	जोधपुर	५७४
१३४	पत्र	१	महादेव पण्डित	भगवन्तपुर (कानपुर)	६११
१३५	पत्र	१	महार-मांग आदि अतिशूद्र	पूना	२०
१३६	पत्र	१	महाराजा जम्मू कश्मीर	जम्मू	१२१
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	३६

१३७	पत्र-सूचना	१	महाराजा जोधपुर	जोधपुर	२३७
			माई भगवती[5]	हरियाणा (होशियारपुर)	
१३८	पत्र	१	मांगीलाल	बिल्हौर	६०६
१३९	पत्र	१	माणकलाल अथर्वणी	उदयपुर	५९०[1]
१४०	पत्र	७	माधोलाल	दानापुर	४६,५५,६२,६६,१२०, १२८,१४२
	पत्र-सूचना	५	"	"	६४,७३,८४,१०३,१४५
१४१	पत्र	१	मिर्जापुर के पण्डित	मिर्जापुर	७
	पत्र-सूचना	१	मुंशी इन्द्रमणि		२०७
१४२	पत्र	२	मुकुन्दसिंह ठाकुर	छलेसर (अलीगढ़)	६६,१६०
१४३	पत्र	१	मुथरादास	मियामीर (पंजाब)	६१३
१४४	पत्र	५	मुन्नालाल (मन्त्री आ०स०)	अजमेर	२७३,३४६,४०१,५६३, ६०३
१४५	पत्र	२	मुहम्मद अब्दुल्ला	मेरठ	८१,८२
१४६	पत्र	८	मुहम्मद कासिम	रुड़की	६८,६९,७०,७२,७६, ७७,७८,७९
	विज्ञापन	१	" "	"	६७

१. तुलसीराम (प्रधान आ० स०) के साथ सम्मिलित पत्र।

२. मुंशी समर्थदान, प्रबन्धकर्ता वै० यं० के पिता।

३. द्र०—'माणकलाल अथर्वणी' शब्द।

४. द्र०—'मथुरादास' शब्द।

५. द्र०—'भगवती माई' शब्द।

६. हीरालाल अथर्वणी के साथ सम्मिलित पत्र।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
१४७	पत्र	२	मूलराज एम० ए०	लाहौर	८०,२७६
	पत्र-सूचना	६	,, ,,	,,	७४,१५२,२३०,२५१, २७८,३०७
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	७५
१४८	पत्र	१	मैक्समूलर	लन्दन	१६
१४९	पत्र	२	मैजिस्ट्रेट काशी मैडम ब्लीवैस्ट्की¹	काशी	१४६,१४८
१५०	पत्र	६	मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या	उदयपुर	१५०,२३२,३९८,४००, ४०२,५८७
	पारसल-सूचना	१	,, ,,	,,	४०३
१५१	अभिनन्दन-पत्र	१	यमुनादास विश्वास आदि आ० स० आगरा	आगरा	२५३
१५२	पत्र-सूचना	१	युधिष्ठिरसिंह	रिवाड़ी	११३
१५३	पत्र-सूचना	२	रणजीतसिंह ठाकुर	अचरौल (जयपुर)	६५,९५
१५४	पत्र	३	रमादत्त त्रिपाठी	नैनीताल	५२०,५४०,५५६
१५५	पत्र	३	रमाबाई	कलकत्ता	१७७,१९२,१९३
१५६	पत्र	१	राजेन्द्रबहादुरसिंह	भिनगा (बहराइच)	३७४

१५७	पत्र	१	राबिन्स पादरी	अजमेर	४
१५८	पत्र	१	रामनारायणलाल	दानापुर	३०६
१५९	पत्र	३	रामशरणदास	मेरठ	२९८,३८१,५८४
	पत्र-सूचना	१	,,	,,	२२१
१६०	पत्र	१	रामसहाय पण्डित	रिवाड़ी	११५[2]
१६१	पत्र	१	रामसेवक पण्डित	रिवाड़ी	११५[3]
१६२	पत्र	१	रामसेवक पण्डित	लखनऊ	३४२
१६३	पत्र	८	रामाधार वाजपेयी	लखनऊ	३३,४४,४५ ९७,९८, १७०,२९७,३२४
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	४३
	मनिआर्डर	१	,, ,,	,,	१०९
१६४	पत्र	२	रूपसिंह	कोहाट गुजरांवाला	२८०,३३३
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,, ,,	१८४,२७४,३६३
	मनिआर्डर	१	,, ,,	,, ,,	१८५
१६५	पत्र	४	लक्ष्मण गोपाल देशमुख	पुर्णे (पूना)	४५९,४९६,५११,५५३
१६६	पत्र	१	लक्ष्मणस्वरूप वकील	मेरठ	३०८
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	२८७
१६७	पत्र	१	लक्ष्मीदत्त	फर्रुखाबाद	३९८

१. द्र० —'एच० पी ब्लैवेटस्की' शब्द। २. पं० रामसेवक के साथ सम्मिलित लिखा गया पत्र।

३. पं० रामसहाय के साथ सम्मिलित लिखा गया पत्र।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
१६८	पत्र	१	लक्ष्मीनारायण (स्टूडेण्ट)	लाहौर	३०९[1]
१६९	पत्र	१	ललिताप्रसाद	मेरठ	२८८
१७०	पत्र	१	लल्लुभाई बापू शास्त्री आदि	बम्बई	१४
१७१	पत्र	५	लालजी बैजनाथ व्यास	बम्बई	४३६,४५६,४६३,५६४, ५७६
	पत्र-सूचना	५	,, ,,	,,	४३२,४४५,४५०-४५२
१७२	पत्र	१	लीलाधर हरिदास	बम्बई	१०८,४१५
१७३	पत्र	१	लेखराम (पण्डित) मन्त्री आ० स०	पेशावर	३२४
१७४	पत्र-सूचना	१	विरजानन्द स्वामी	मथुरा	१
१७५	पत्र	१	विशनदास	रावलपिण्डी ?	४०
१७६	पत्र	१	विशुद्धानन्द स्वामी(काशीवाले)	हरद्वार	१२७
१७७	पत्र	१	विश्वनाथ	जयपुर	३६०
१७८	पत्र	१	विश्वेश्वरसिंह	?	५०३
१७९	विज्ञापन	१	वृजमोहन वैश्य	?	२३८
१८०	पत्र	१	वृद्धिचन्द्र (जैन)	शाहपुरा	४६६[2]
			व्रजमोहनलाल[3] शर्मा	इटावा	
१८१	पत्र	१	शंकर शास्त्री केरलीय	?	५३

१८२	पत्र	१	शहजादानन्द	वजीराबाद	४८
१८३	पत्र-सूचना	२	शादीराम मास्टर	काशी	२३१
१८४	पत्र	१	शाम(श्याम)दास पण्डित	अमृतसर	६१४
१८५	पत्र	१	शिवकुमार शर्मा[3] (पण्डित)	काशी	५२७ के आगे।
१८६	पत्र	१	शिवनाथ (स्टुडेण्ड)	लाहौर	३०६[5]
१८७	पत्र	२	शिवप्रसाद (राजा)	काशी	१६३,१६४
१८८	पत्र		शिवलाल मुकुन्द	बम्बई	
१८६	पत्र-सूचना	१	शिवसहाय गौड़	कानपुर	१२
१६०	पत्र-सूचना	१	शुकदेवप्रसाद	नसीराबाद	१५१
१६१	पत्र	८	शुकदेवप्रसाद पण्डित	अजमेर	४१०,४२८,४६०,४७१, ४८०,५१०,५२७,५७८
१६२	पत्र-सूचना	१	शेरसिंह ठाकुर	कर्णवास	२०५
१६३	पत्र	३	श्यामजी कृष्ण वर्मा	बम्बई	४७,११८,११६
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	६४,१०७

१. शिवनाथ के साथ सम्मिलित पत्र।

२. बिहारीलाल और हम्मीर शर्मा के साथ सम्मिलित पत्र।

३. द्र०—'ब्रजमोहनलाल शर्मा' शब्द।

४. पण्डित शालिग्राम (अजमेर) ने काशीप्रवास के समय पं० शिवकुमार से ऋ० द० की सहायतार्थ पण्डित की आवश्यकता का निर्देश किया था। उसी प्रसङ्ग में पं० शिवकुमार ने यह पत्र पं० शालिग्राम को लिखा। इसे ऋ० द० के अवलोकनार्थ पं० शुकदेव ने ऋ० द० के पास भेजा था। ये पं० शिवकुमार काशी के प्रसिद्ध विद्वान् बाल शास्त्री के शिष्य थे और ऋ० द० की काशी की पाठशाला में पढ़ाते थे। द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१३।

५. लक्ष्मीनारायण के साथ सम्मिलित पत्र।

क्रम-सं.	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
१९४	पत्र	५	श्यामलदास[1] कविराज	उदयपुर	२६१,३३६,३४३,५२३, ५६२
१९५	पत्र-सूचना	२	श्यामसुन्दरदास	मुरादाबाद	३७१,५४७
१९६	पत्र	१	श्यामसुन्दरलाल	जयपुर	५६६
१९७	पत्र	१	श्रद्धाराम	(हरद्वार)	१२३[2]
१९८	पत्र-सूचना	१	श्रीकिशन[3] बारहट	उदयपुर	३६३
१९९	पत्र	२	श्रीकृष्ण क्षत्री (सम्पा० ज्ञानवर्धिनी सभा)	कलकत्ता	५१३,५३७
२००	पत्र	१	श्रीप्रसाद	जयपुर	१५५
	पत्र-सूचना	१	,,	,,	१५४,१६१
२०१	पत्र	३	सज्जनसिंह महाराणा	उदयपुर	३६५,३८३,३८७
	पत्र-सूचना	२	,, ,,	,,	३८२,३९२
२०२	पत्र	६	सत्यधर्म-रक्षिणी सभा	मेरठ	८३,८५,८८,९०,९१,९३
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	८६
	विज्ञापन	१	,, ,,	,,	८७
२०३	पत्र	१	सबलसिंह	शाहपुरा	५८०
२०४	पत्र	११	समर्थदान (मुंशी)	अजमेर बम्बई प्रयाग	१००,१०४,३३२,३६४, ४१७,४२४,४६७,५३१,

					५३८,५४५,५५०
	पत्र-सूचना	९	,, ,,	,,	९९,३३४,३५०,३५२,३५५, ३६८,३६९,४६७,५३०
	पारसल-सूचना	३	,, ,,	,,	३७०,४२५,५३२
२०५	लेख	१	सम्पादक पायानियर	इलाहाबाद	
२०६	पत्र	१	सरपञ्च (चूरू मेठों का)	चूरू	२५९
२०७	पत्र	१०	सहजानन्द स्वामी	अजमेर फिरोजपुर मुलतान आदि	३९५,४२६,४४२,४६४, ४८७,५१५,५२८,५६७, ५९५,५९९
२०८	पत्र-सूचना	१	साधु ?	...	५०९
२०९	पत्र	१	सिनेट सं० पायोनियर	इलाहाबाद	१५३
२१०	पत्र	१	सुखदेवप्रसाद	नसीराबाद	११०
२११	पत्र	१	सुखराम त्र्यम्बकराम	चीखली (सूरत)	२८५
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	२६०
२१२	पत्र	७	सुन्दरलाल पण्डित (रायबहादुर)[4]	प्रयाग	१७९,२४७,२७५,२८४, २९०[5],३१६,३२२

१. अनेक पत्रों में इनका नाम 'सांमलदास, सावलदास' छपा है। द्र०—पृष्ठ ६०७, पं० ५; पृष्ठ ६०९, पं० ४; पृष्ठ ६१०, पं० ५; पृष्ठ ४५६, पं० २१ 'सांवलदास' यह राजस्थानी उच्चारण है।

२. पं० चतुर्भुज के साथ सम्मिलित लिखा गया पत्र।

३. द्र०—'कृष्णसिह बारहट' शब्द पर पत्र।

४. द्र०—पृष्ठ ४०५, पं० ४।

५. अन्यों के साथ सम्मिलित पत्र।

क्रम-संख्या	पत्रादि	उपलब्ध पत्रादि	नाम	जहां से भेजा गया	पूर्ण संख्या
२१३	पत्र	११	सेवकलाल कृष्णदास	बम्बई	२१६,२२८,२४१,२४५, २५२,२७०,२८२,३७६, ३७८,३७९,४७२
२१४	पत्र	१	सेवाराम	फर्रुखाबाद	४२०[1]
२१५	पत्र	१	स्मिथ(सालिलिटर हाईकोर्ट)	बम्बई	३२५[2]
२१६	पत्र	१	हम्मीर शर्मा	शाहपुरा	४६६[3]
२१७	पत्र	२	हरनामप्रसाद मन्त्री आ०स०	लखनऊ	३४१,३५३
२१८	पत्र	१	हरप्रसाद बाबू (ईसाई)	फर्रुखाबाद	१८३
	पत्र-सूचना	१	,, ,,	,,	१९९
२१९	पत्र-सूचना	१	हरवानजी चारण	रायपुर (राज०)	२६७
२२०	पत्र	४	हरिश्चन्द्र चिन्तामणि	बम्बई	४६,१०६,१०९,११७
२२१	पत्र-सूचना	१	हरिसिंह ठाकुर	रायपुर (राज०)	२६६
२२२	विज्ञापन	१	हलधर ओझा	(कानपुर)	९
२२३	पत्र-सूचना	१	हिन्दू पण्डित	हरद्वार	११२
२२४	पत्र	१	हीरालाल अथर्वणी	उदयपुर	५९०[4]
२२५	पत्र	१	हेतुराम पण्डित(ताजपुर वाले)[5]	मुरादाबाद	६१०

२२६	पत्र	६	हैनरी एस अल्काट	न्यूयार्क, बम्बई	५१,५७,५६,६०,६१,६२
	पत्र-सूचना	३	,, ,,	,,	६०,१३१,१३५
	तार	३	,, ,,	,,	१२४,१२६,१५६



---

१. कालीचरण के पूर्ण संख्या ४२० के पत्र के अन्त में। द्र०—भाग ३, पृष्ठ ५११।

२. फ्रियर के साथ सम्मिलित नोटिस।

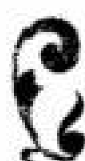
३. बिहारीलाल और वृद्धिचन्द्र के साथ सम्मिलित पत्र।

४. कनिष्ठ भ्राता माणकलाल के साथ सम्मिलित पत्र

५. ये ताजपुर जिला बिजनौर के रहने वाले थे। पत्र मुरादाबाद से लिखा था।

पत्र-विज्ञापन भाग ३-४ में छपे पत्र विज्ञापन आदि का ब्योरा

पत्रों तथा पत्र-सारांशों की संख्या	४५३
पत्र-सूचनाओं की संख्या	१२८
पारसल-सूचनाओं की संख्या	१५
तार, तार-सूचनाओं की संख्या	८
मनिआर्डर सूचना	३
शास्त्रार्थ-नियम	२
अभिनन्दन-पत्र	२
विज्ञापन, विज्ञापन-सूचनाओं की संख्या	१२
पूर्ण योग	६२३[१]
नाम सूची के अनुसार पत्र आदि भेजने वालों की संख्या	**२२६[२]**



१. परिशिष्ट ६ में नये उपलब्ध पत्र-विज्ञापन मिलाकर पूर्ण संख्या ६१८ छपी है। परन्तु उपर्युक्त विवरणानुसार कहीं ५ संख्या की भूल है।

२. इस संख्या में उन व्यक्तियों के नाम भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने मिलकर पत्र लिखे हैं।

—: ओ३म् :—

ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन

(चतुर्थ भाग)

[पूर्ण संख्या ५३४] पत्र

॥ श्री राम जी[1]

श्री श्री श्री १००८ श्री श्री सुवामी जी माहाराजधराज श्री दीआनद जी सुरसुती जी माहाराज जोग

सीधे श्री जोदपुर सुभसुथाने माहाराज जोग श्री साहेपुरा सुजतकरण कोटाहाला की डडोत मालम होसी अठ आपकी कप्रा स सब बात का आनन्द ह आपका हमेसा कुसी का समीचार लषवसी ओर आप कुसी स जोदपुर दाषल हुवा होसी जस का बेरा लषावसी

ओर समीचार १ मालम करावसी जुवावी पीछा तुरत लषसी ओर हमारा चीत बोहत नराज ह तीसु आप श्री हजुर साहेबा सु श्री माहाराज प्ररतापसींघ जी सु मालम करन हमकु बुलणे जोदपुर की वीचार करसी आग समत १९३७ का सालम हम जोदपुर गेइा थे ओर श्री हजुर की नजर डुपटो १ कोट १ जरी की कीमत रु७०० त: ८००, त्ती कलदारा की को नजर करो थो जसप्रर श्री हजुर होकम प्ररतापसींघ जी व करो होकम दीओ थो कईन का बाबा मणकचन्द जी क वागवा जगिरी थो ओ गव ईन कु जागेर म षाठ दो जसप्रर दीवाणबी जसीघ जी महतान प्ररतापसीघ जी कु बह का दीआ हर मामल कु देर म टाल दीआ ओर हमारा बाबाजी माणकचंदजी न

---

१. यह पत्र म॰ मुंशीराम सम्पादित 'ऋ॰ द॰ का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २२८-२३० तक छपा है। पत्र के अन्त की टिप्पणी भी देखें।

माहाराज श्रीमानसीघजी वा: माहाराज श्री तपतमीघजी की बषत स अची अची पर पुवाई करी थी जस म गव मला था ओर हमारी दुकान बी जोदपुर म थी ओर श्री हजुर साहाव की बी वढी महर-वानगे हमार ऊप्रर थी प्रत माहाराज प्रतावसीघजी दीवाण बीजसीघ जी का बहकावा सु दुप्रटो १ कीट १ पीछो देदीनु अब हम श्री जदपुर माहाराज क नीजर जो चीज कर दीनी श्री हजुर क धारण हो गई तो ऊा:हुकम-दुसरकत ही दे नही सकते हे ऊहुकम हमार प्राम मोजुत हसो अप ऊन क पीची नजर करा दीनी छाहे जो अस काम का आप जरुर बदोबसत करा छाइजो कुक हमार चतवी आपका दरसण म लग रहे हसो हमारा आण हो जाईग जस स जरुर वदोबसत कर क जलंदी जुवाव भेजसी

ओर श्री आवुराज क प्रा० हमारा ज्णे का बावत गेव हमार जगिर ह जसका बदोबसत क वासत दन: १० त: १५ म जावांगे सो आप चीठी लषा देणे क बसता होकम दीआ था सो ऊो च्ठी बी जरुर लषा भेजसी—

ओर हमार बी वीलाअेत स प्रखाना मुलका महाराणी का गवा क बाबत आ गई ह सो आपकी ऋपा स जरुर काम वण ज्वगा ओर आलाईक काम काज होव सो लषसी शं० १९४० मता जाग वुद १५ [1]बया प्रर:

रामानंदरजी शाह
मरजाशुक्ला शानोवानीशी

—:०:—

१. यह पत्र ठेठ शाहपुरा की (मेवाडी का एक भेद) भाषा में लिखा होने से श्री महात्मा मुंशीरामजी से ठीक ठीक पढ़ा नहीं गया इसलिये कई स्थानों पर अटकलपच्चू शब्द रख दिये गये। इससे पत्र बहुत अशुद्ध हो गया। हमारे विचार में इस तिथि निर्देशक अन्तिम पंक्ति का शुद्ध पाठ ऐसा है— "ओर ह्या लाईक काम काज होव सो लष(ख)सी। शं० १९४० मता आग बुद १५ सहापुर"। तदनुसार १५ अगस्त बुधवार १८८३ (श्रावण शु० १२ स० १९४०)। १५ अगस्त को बुधवार है।

—: ओ३म् :—

ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन (चतुर्थ भाग)

[पूर्ण संख्या ५३४] पत्र

॥ श्री राम जी[1]

श्री श्री श्री १००८ श्री श्री सुवामी जी माहाराजधराज श्री दीआनद जी सुरसुती जी माहाराज जोग

सीधं श्री जोदपुर सुभसूथाने माहाराज जोग श्री साहेपुरा सुजतकरण कोटाहाला की डडोत मालम होसी अठ आपकी कप्रा स सब बात का आनन्द ह आपका हमेसा कुसी का समीचार लषवसी ओर आप कुसी स जीदपुर दाषल हुवा होसी जस का बेरा लषावसी

ओर समीचार १ मालम करावसी जुवावी पीछा तुरत लषसी ओर हमारा चीत बोहत नराज ह तीसु आप श्री हजुर साहेबा सु श्री माहाराज प्ररताबसींघ जी सु मालम करन हमकु बुलणे जोदपुर की बीचार करसी आग समत १९३७ का सालम हम जोदपुर गेइा थे ओर श्री हजुर की नजर डुपटो १ कोट १ जरी की कीमत रु ७०० त: ८००, त्ती कलदारा की को नजर करो थो जसप्रर श्री हजुर होकम प्ररताबसींघ जी वु करो होकम दीओ थो कईन का बाबा मणकचन्द जी क वागवा जगिरी थो ओ गब ईन कु जागेर म षाठ दो जसप्रर दीवाणवी जसीघ जी महतान प्ररतावसीघ जी कु बह का दीआ हर मामल कु देर म टाल दीआ ओर हमारा बाबाजी माणकचंदजी न

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २२८-२३० तक छपा है। पत्र के अन्त की टिप्पणी भी देखें।

—: ओ३म् :—

ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन

(चतुर्थ भाग)

[पूर्ण संख्या ५३४] पत्र

॥ श्री राम जी[1]

श्री श्री श्री १००८ श्री श्री सुवामी जी माहाराजधराज श्री दीआनद जी सुरसुती जी माहाराज जोग

सीधे श्री जोदपुर सुभसूथाने माहाराज जोग श्री साहेपुरा सुजतकरण कोटाहाला की डडोत मालम होसी अठ आपकी कप्रा स सब बात का आनन्द ह आपका हमेसा कुसी का समीचार लषवसी और आप कुसी स जीदपुर दाषल हुवा होसी जस का बेरा लपावसी

और समीचार १ मालम करावसी जुबावी पीछा तुरत लषसी और हमारा चीत बोहत नराज ह तीसु आप श्री हगुर साहेबा सु श्री माहाराज प्रतावसींघ जी सु मालम करन हमकु बुलणे जोदपुर की वीचार करसी आग समत १९३७ का सालम हम जोदपुर गेडा थे और श्री हजुर की नजर डुपटो १ कोट १ जरी की कीमत रु७०० त: ८००, त्ती कलदारा की को नजर करो थो जसप्रर श्री हजुर होकम प्रतावसींघ जी वु करो होकम दीओ थो कईन का बाबा मणकचन्द जी क बागवा जगिरी थो ओ गब ईन कु जागेर म षाठ दो जसप्रर दीवाणवी जसीघ जी महतान प्रतावसीघ जी कु बह का दीआ हर मामल कु देर म टाल दीआ और हमारा बाबाजी माणकचंदजी न

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २२८-२३० तक छपा है। पत्र के अन्त की टिप्पणी भी देखें।

माहाराज श्रीमानसीघजी वा: माहाराज श्री तपतसीघजी की बषत स अची अची पर पुवाई करी थी जस म गत्र मला था ओर हमारो दुकान बी जोदपुर म थी ओर श्री हजुर साहाव की बी वडी महर-वानगे हमार ऊप्रर थी प्रत माहाराज प्रतावसीघजी दीवाण बीजसीघ जी का बहकावा सु दुप्रटो १ कीट १ पीछो देदीनु अव हम श्री जदपुर माहाराज क नीजर जो चीज कर दीनी श्री हजुर क धारण हो गई तो ऊा:हुकम-दुसरकत ही दे नही सकते हे ऊहुकम हमार प्राम मोजुत हसो अप ऊन क पीची नजर करा दीनी छाहे जो अस काम का आप जरुर बदोबसत करा द्याइजो कुक हमार चतवी आपका दरसण म लग रहे हसो हमारा आण हो जाईग जस स जरुर वदोबसत कर क जलदी जुवाब भेजसी

ओर श्री आवुराज क प्रा० हमारा ज्णे का बाबत गेव हमार जगिर ह जसका बदोबसत क वासत दन: १० त: १५ म जावांगे सो आप चीठी लषा देणे क बसता होकम दीआ था सो ऊो चठी बी जरुर लषा भेजसी—

ओर हमार बी वीलाअेत स प्रखाना मुलका महाराणी का गवा क बाबत आ गई ह सो आपकी कृपा स जरुर काम वण ज्वगा ओर आलाईक काम काज होव सो लषसी शं० १९४० मता जाग वुद १५ [1]वया प्रर:

रामानंदरजी शाह
मरजाशुक्ला शानोवानीशी

—:०:—

१. यह पत्र ठेठ शाहपुरा की (मेवाडी का एक भेद) भाषा में लिखा होने से श्री महात्मा मुंशीरामजी से ठीक ठीक पढ़ा नहीं गया इसलिये कई स्थानों पर अटकलपच्चू शब्द रख दिये गये। इससे पत्र बहुत अशुद्ध हो गया। हमारे विचार में इस तिथि निर्देशक अन्तिम पंक्ति का शुद्ध पाठ ऐसा है—"ओर ह्या लाईक काम काज होव सो लष(ख)सी। शं० १९४० मता आग बुद १५ सहापुर"। तदनुसार १५ अगस्त बुधवार १८८३ (श्रावण शु० १२ सं० १९४०)। १५ अगस्त को बुधवार है।

[पूर्ण संख्या ५३५] पत्र

ओ३म्[1]

सिद्धि श्री परमपूज्यनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्य्य श्री स्वामी जी १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चरण कमलेषु निवेदनमिदम् निवेदन आप से यह कि एक साधु आप के समीप दर्शनार्थ के निमित्त आवता है सो उक्त महात्मा के मन में यह विदित होता कि पुन: संस्कार करवाके श्रीमानों के चरण कमल में सदैव बना रहूं या अभिप्राय सें यह पत्र चरित्तार्थ हो ओर बहुत सा वेदाऽध्ययन पर आस्तिकपना रखता है

उक्त महात्माओं का ना विशुद्धानंद सरस्वती

श्रीयुत रामानन्द ब्रह्मचारी जी योग्य ईश्वरानन्द सरस्वती का बहुश: नमस्ते

संवत् १९४० आ० शु १४[2] (ईश्वरानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५३६] पत्र

।। ओ३म् ।।[3]

सकल गुणालंकृत विद्वज्जन वरिष्ठ परिव्राज का चार्य्य श्री मत्स्वामि दयानन्द सरस्वती चरण पीठेषु परम सेवक ब्राह्मण छगनलाल शर्म्मण आनतित तयो विलसंतुतरार्म्किच अग्नि होतृ गृहे पारस्कर गृह सूत्रस्य मूल पुस्तकमेकं समग्र मन्त्रञ्च सभाष्यमर्द्ध वर्त्तते ते मया गृहीत्वा प्रेषिते[4] यद्येभि: पुस्तकै: कार्य सिद्धिर्नभवेत् तदोत्तरं

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ १८ पर छपा है। २. १७ अगस्त सन् १८८३।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २२२ तक छपा है।

४. इन पुस्तकों की संस्कारविधि के पुन: संशोधन कार्य के लिये ऋषि दयानन्द को आवश्यकता पड़ी होगी। इन पुस्तकों को मंगाने के लिये ऋ० द० ने जो पत्र छगनलाल (मसूदा) को लिखा वह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ। संस्कारविधि का पुन: संशोधन सं० १९४० आषाढ़ बदी १३ से भाद्र कृष्ण अमावस्या तक हुआ था। देखो हमारा "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ ८५।

प्रेषणीयं अहमन्यत्र समग्रभाष्यार्थं यतिष्यामि अलमति विस्तरेण संवत् १९४० मिति श्रावण शुक्ल पूर्णिमा १५[1]

हस्ताक्षर **ब्राह्मण छगनलाल**

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५३७] पत्र

भारतमित्र कार्यालय।[2]

नं० ६० कौसष्ट्रीट कलकत्ता, १८ आगष्ट १८८३[3]

महानुभव !

आपके कृपा पत्र से कृतार्थ हुआ।[4] आप "भारतमित्र" के यथार्थ हितैषी–हैं–इस लिये भारतमित्र आपके पास ऋणी है। हम आपको अनेक धन्यवाद देते हैं। परंतु इस अवसर पर इसका कुछ विवरण आपसे कहना उचित समझता हुं।

देश हित के लिये कई मित्रों ने मिलकर 'भारतमित्र पत्र' प्रकाशित कीया है। इस में किसी का कुछ-स्वार्थ-नहीं है। मित्रगण अपना अपना अवसर समय इस पत्र की सेवा मे लगाते हैं। इन ही मित्र वर्ग ने एक कमेटी स्थापित की है उसी—भारतमित्र कमेटी से सब कार्य्य निर्वाह होता है। बाबु मनोहरदास खत्री भारतमित्र के सम्पादक नहीं है जैसा की आप जानते हैं परंतु मैनेजर (कार्य सम्पादक)हैं। पं छोटूलाल मिश्र—इस पत्र के सम्पादक है। कई माससे विषय कर्म्म मे व्याप्तत रहने के कारण यह भारतमित्र का सम्पादन नहीं कर सकते। इनके एक मित्र श्रीकृष्ण क्षत्री ने सम्पादन का भार लिया है। भारत मित्र मे अब सब लेख उन्हीं का है। वास्तव मे अब वही—भारतमित्र सम्पादक हैं। अवशय इन सब लेखों मे छोटुजी की सम्मति रहती है। यहां श्रीकृष्ण क्षत्री "ज्ञानवर्धिणी" सभा के सम्पादक भी

---

१. १८ अगस्त सन् १८८३।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ८०-८१ पर छपा है।

३. श्रावण पूर्णिमा सं० १९४० वि०।

४. यह संकेत ऋ० द० का जो पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ८७३, भाग २, पृष्ठ ८९१-८९२ पर छपा है, उसकी ओर है।

हैं जिन के विशेष परिश्रम से गोरक्षा विषय के शाक्षर यहां से आप की सेवा मे गये थे। यह—महाशय अंग्रेजी मे भी व्युतपन्न हैं। इस पत्र के लेखक भी वही श्रीकृष्ण क्षत्री हैं।

अब में (श्रीकृष्ण क्षत्री) आपसे परिचित हो गया॥ आप भारत-मित्र—पत्र को देखकर जंसी कुछ मेरी योग्यता समझें। "आर्य्य पंचाङ्ग"[1] बनाने से मेरी यह इच्छा है कि इस से सर्व साधारण को आर्य्य समाज के बेभव का ज्ञान हो जायगा। इन समाजों से भारतवर्ष की— कांहा तक उन्नति हुई और होने की सम्भावना है—यथार्थ मे स्वामी दयानन्द जी—से आर्य्य भुमि का कसा हित हुआ, सबको "आर्य्य पंचाङ्ग" से घर बैठे इस विषय का ज्ञान हो जायगा। इसी अभिप्राय से मैंने आप की सहायता मांगी है। अब आप जैसा उचित समझें। लाहोर "आर्य्या" के सम्पादक अजमेर, प्रयाग, फरूखाबाद, साजिहानपुर इत्यादि नगरों के आर्य्य समाजों के मंत्रि हम लोगों पर विशेष कृपा रखते हैं।

गोरक्ष विषय के आवेदन पत्र के लिये आपने लिखा[2] सो उस का यत्न हो रहा है। यथा समय मे आपको लिखुंगा।

कार्नल आलकट साहब के विषय मे आपके उपदेश के लिये मं कृतज्ञ हुं।[3] ऐसा कोई विषय भारतमित्र मे नहीं रहता जिसका विशेष प्रमाण हमें न मिला हो। परंतु जब बात बात मे हमे दूसरे संबाद पत्र और मान्य मनुष्यों पर निर्भर करना होता है तो किसी समय मे भ्रम होना असम्भव नहीं है। अंत में "आर्य्य पंचाङ्ग" के विषय मे आप की इच्छा जानने की आशा लगी रही। आपकी अभिरुचि जानने पर

---

१. इसके विषय में इन्हीं श्रीकृष्ण खत्री ने २८ जुलाई १८८३ को एक पत्र ऋ० द० को लिखा था। द्र०-पूर्व पूर्ण संख्या ५१३, पृष्ठ ६०३ का पत्र।

२. द्र०—ऋ० द० का पूर्ण संख्या ८७३ का पत्र, भाग २, पृष्ठ ८९२, पं० ७-८। इस लेख के अनुसार कोई पत्र ऋ० द० ने इससे पूर्व भी लिखा था, ऐसा विदित होता है।

३. इसका निर्देश भी ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८७३ के पत्र में है (भाग २ पृष्ठ ८९१)। इस विषय में ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ४६३ (भाग २, पृष्ठ ८८०-८८३) के पत्र में भी सम्पादक भारतमित्र को लिखा था।

इस विषय का एक विज्ञापन भारतमित्र में दूंगा। कृपाकर इस पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा।

आपका कृपाकाङ्क्षी
श्रीकृष्ण क्षत्री
सम्पादक "भारतमित्र"।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५३८] **पत्र**

वैदिक यन्त्रालय[1]
नं० ६१६ २०। ८। ८३ प्रयाग[2]
श्री स्वामीजी महाराज की सेवा में
जोधपुर

श्री महाराज

नमस्ते कृपा पत्र आप का श्रावण सुदी १२ का लिखा आया।[3]

(१) भाषा बनाने के लिये ऋग्वेद के पत्रे पृ० १७६८ से १८०९ तक पहुंचे मैंने पं० शिवदयाल को १० मंत्र भाषा [बना]ने को दे दिये हैं जब बन चुकेगी तब आप की सेवा में भेज दूंगा।

(ग) गणपाठ छप चुका सो मैं आप के पास भेज चुका हूं।[4] आज निघंटु की भी सूचि भी छप चुकी। इस का शुद्धि पत्रादि छपने पर यह भी तय्यार हो जायगा। पीछे और ग्रन्थों की भी सूचि छपेगी। सत्यार्थप्रकाश भी बीच बीच में छपता है। **कुल ३८ फार्म छपे हैं[5]।**

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४६३-४६६ पर छपा है।

२. भाद्रपद कृ० २, सं० १९४० वि०।

३. द्र०-'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ८८५, भाग २, पृष्ठ ९०४।

४. द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५३१ पर छपा समर्थदान का पत्र (पृष्ठ ६३० पं० ५-८)।

५ पं० लेखराम रचित ऋ० द० के जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१० से विदित होता है कि जोधपुर में ठाकुर गिरधारी सिंह ने स्वामी जी से सत्यार्थप्रकाश के ३६४ पृष्ठ पांच रुपये में मोल लिये थे। जीवन चरित्र में

११ समुल्लास छप रहा है प्रयाग समाचार तो दो सप्ताह छप कर इस यत्रालय में से बंद होगया। प्रयाग प्रेस नामक यंत्रालय में छपता है। एक नंबर देशहितैषी का भी इसी में छपा है अब पोछे कहां छपेगा सो मालूम नहीं। प्रेस एक कंपनी ने बनाया है।

(३) मुंबई के टाईप की अवधि तो हो गई। मैंने पत्र दिया है उत्तर आने से मालूम होगा आशा है ढलगया होगा।

(४) कलकत्ते के टाईप के विषय में आपने लिखा सो पीछे से विचार के निवेदन करेंगे। परन्तु रुपया और लगेगा।

(५) ठाकुर भूपालसिहजी रोख वाले यहां आए थे तो उन्हों ने कहा कि हमारे पास अंक नहीं पहुंचे तो मैंने उन को ६ अंक दिये जिन की कीमत २)होती है। कीमत के बिषय उन्होंने कहा कि हमारे पास अगले अंक नही पहुचे इस कारण दुबारा कीमत न देंगे। इस लिये इस विषय में आप से निवेदन है कि जैसा आप लिखें वैसा करें क्योंकि हम तो दूसरों से तो एक मास तक कोई खबर न दे तो हम दुबारा देने के दाम लेलेते हैं परन्तु इन का मामला और है इस लिये आप से पूछा है।

(६) इस विषय में मैंने पहिले भी निवेदन किया था[1] और अब भी करता हूं कि निघंटु को आप व्याकरण ग्रन्थों के साथ मिलाते हैं यह बहुत लोगों को ठीक नहीं मालूम होता प्रथम तो निघंटु का नाम बेद के अंगो में ही नहीं हैं। जैसे शिक्षा। कल्प। व्याकरण। ज्योतिष। छन्द। इन में निघंटु का नाम नहीं है। यदि आप निरुक्त के साथ मानें तो चाहै मानें। यदि वेदांग में मान भी लिया जाय तो व्याकरण के साथ नंबर न पड़ना चाहिये आप छःओं अंगो की तो व्याख्या करते ही नहीं है कि जिस से बेदाङ्ग में होने से इस का भी नंबर पड़ता। यह तो केवल व्याकरण को व्याख्या है। इस का नाम व्याकरण के नंबर मे डालने से कुच्छ लाभ नहीं मालूम होता।

देखिये! व्यवहारभानु और संस्कृत वाक्यप्रबोध भी वेदांग में

छपे ३६४ पृष्ठ के स्थान पर ३६० या ३६८ पृष्ठ संख्या होनी चाहिये। स० प्र० द्वि० सं० में पृष्ठ ३६० पर ४५वां फार्म और ३६८ पर ४६वां फार्म पूरा होता है। इससे ३६४ पृष्ठ का निर्देश अशुद्ध है। यह स्पष्ट है।

१. यह पत्र हमें नहीं मिला।

छाप दिये गये यह बड़ी भूल की बात हुई[1] यदि निघंटु पृथक नाम से छापा जाय तो क्या हानि है ? इस को विचार कर लिखिये कि क्या किया जाय। और लोगों की तो इस में बिलकुल सम्मति नहीं है कि निघंटु व्याकरण में मिलाया जाय। पुस्तक छापने से प्रयोजन है व्याकरण के साथ लगाने से क्या लाभ है। जो छओं अंगो की व्याख्या होती तो जो अंग प्रथम चाहिये सो पीछे इस प्रकार सब ठीक ठीक व्यवस्था होती। जब यह बात नहीं है तो एक निघंटु ही को व्याकरण के साथ क्यों लगाते हैं। इस में जैसी आप की आज्ञा हो लिखिये। परन्तु मैं तो जानता हूं पृथक् ही ठीक है पीछे आप की इच्छा है।

मैंने इस से पहिले भी पत्र दिये हैं कृपा कर के उन के उत्तर ठीक ठीक लिखवावें।

आप का आज्ञाकारी
समर्थदान
मेनेजर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५३९] पत्र-सूचना

[पं० भीमसेन का पत्र।][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४०] पत्र

ओ३म् खम्ब्रह्म[3]

श्री स्वामी दयानन्द चरणारविन्देषु

नमस्ते

महाराज जी किसी ईसाई ने प्रश्न नहीं किया (विश्वारूपाणि

---

१. वेदाङ्ग प्रकाश के अन्तर्गत वर्णोच्चारण शिक्षा के छपने के पश्चात् व्यवहारभानु और संस्कृतवाक्यप्रबोध ग्रन्थ छपे। उन पर प्रेस के कार्यकर्त्ताओं की असावधानी से वर्णोच्चारण शिक्षा पर छपा टाइटल पेज ही स्वल्प परि-वर्तन के साथ छप गया। इससे इन पर **'पाणिनि मुनिप्रणीता'**, **'श्रीमत्स्वामि-दयानन्द सरस्वती कृत व्याख्या सहिता'** पाठ भी छप गये। द्र०—इन ग्रन्थों के **प्रथम संस्करण।**

२. इस पत्र की सूचना अग्रिम पूर्णसंख्या ५४३ पर छपे पत्र में मिलती है।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३७९-३८० पर छपा है।

यजुर्वेद १२ अ० ३ मन्त्र अब आप के लिखने से ज्ञात हुआ यह देश के बनियों की गायत्री है बहुत लोगों ने मुझ से कहा हम तथा हमारे पुरोहित अर्थ नहीं जानते तुम स्वामी जी को लिख कर अर्थ मगादो तब आप को कस्ट दिया था मैं मिशन स्कूल में शिक्षक तो आजीविकार्थ हूं परन्तु धर्म्मसभा का लघुतर सम्पादक भी हूं मुझे अपना अनुगामी समझिये इतनी भूल मेरी अवस्य है आद्यन्त ऋग्वेद तथा यजुर्वेद जहां तक मुद्रित हुआ है देख लिया होता। अब यहां के निवासियों को पुरोहित की ओर से सन्देह हो गया यदि आप आज्ञा दें तो गुरु मन्त्र अर्थ सहित बतला दूं। में ईश्वर का खोजी हूं वेदभास्य भूमिका आर्य्याभिविनय आदि कई पुस्तक मेरे पास हैं मुझको पुस्तकों के सञ्चयावलोकन का व्यसन है परन्तु पातञ्जल योगसूत्र के पूरी भाषा टीका का अभिलाषी हूं आपने सम्पूर्ण सूत्रों की टीका बनाकर छपवादी हो तो पता दीजिये मगा लूंगा अथवा आप के पास हों तो ? पुस्तक अभ्यासार्थ प्रसाद कीजिये मूल्य शीघ्रमेव भेजदूंगा अथवा और कोई पुस्तक इस बीच वेद वेदाङ्ग की छोटी सी उल्था करके मुद्रित कराई हो तो उत्तर दीजिये जिस से सेवक को आत्म ज्ञान शीघ्र प्राप्त हो मैं जन्म जन्मान्तर का पापी असत्ती अधर्मी दुराचारी हूं मुझ जन्मान्ध को ज्ञान चक्षु दीजिये। सर्वज्ञेषु किमधिकम् वि०

२०।८।८३[2] **रमादत्त** त्रिपाटी

पण्डित मिशनस्कूल, नयनीताल।

—:०:—

---

१. ऋ० द० का यह पत्र हमें नहीं मिला। इसी के आधार पर ऋ० द० का पत्रव्यवहार और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८९७, पूर्ण संख्या ८८० पर पत्राशय छापा है। रमादत्त त्रिपाठी का इस विषय का एक पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ५२० (पृष्ठ ६१०, भाग ३) पर छपा है. उसे भी देखें।

२. भाद्रपद कृ० २ सं० १९४० वि०।

[पूर्ण संख्या ५४१] पत्र

२० अगस्त सन् ८३[1]

श्रीयुत स्वामी जी महाराज जोधपुर नमस्ते

प्रार्थना यह है कि कई दिवस हुये मजमून की तौर पर देवनागरी अक्षरों में एक पोष्टकार्ड आप की सेवा में भेजा था[2] और पश्चात् अक्षर पसन्द होने के आप के निकट रहने की भी विनय की थी पर शोक है कि अद्य पर्य्यन्त उसका कुछ उत्तर न मिला आशा है कि अब आप इस पत्र के अवलोकन करते ही कृपा दृष्टि कर अति शीघ्र इस दीन को उचित उत्तर से कृतार्थ करेंगे। किमधिकम् ॥[3]

आपका आज्ञाकारी
बालकराम बाषपेई
मन्त्री आर्य्य स. अजमेर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५४२] पत्र

॥ ओ३म् ॥[4]

॥ फर्रुखाबाद ॥
॥ तारीष ॥ २१
॥ अगस्त ॥ सं० ८३।83[5]

स्वस्तिश्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमत् शकल गुण गरीष्ठ ब्रह्मकर्मसमर्थ स्वस्थ षिल गुण गुणागार कृत विविध वेद वेदाङ्गादि सच्छास्त्राध्ययन विनोद विचार करुणा वार विहित दीनं जन निस्तार परम कारुणिक श्री १०८ ॥ जगद्गुरु स्वामी जी महाराज

---

१. भाद्रपद कृ० २, सं० १९४० वि०। यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २१९-२२० पर छपा है।

२. यह पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ५१७, पृष्ठ ६०७ पर छपा है।

३. इस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने भाद्र कृष्ण ५, सं० १९४० (=२३ अगस्त १८८३) को दिया था। इसका निर्देश बालकराम वाजपेयी के अगले ३१ अगस्त १८८३के पत्र में है। मूल पत्र उपलब्ध नहीं हुआ।

४. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १. पृष्ठ ३३०-३३१ पर छपा है। ५. भाद्रपद कृ० ३ सं० १९४० वि०।

जी जोग्य सेवक तारादत्त शर्मा: का सहस्त्रधा प्रणतितय: समुल्लशन्तु शमत्र तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे श्री जगद्गुरु जी महाराज आप की कृपा सुदृष्टी से आर्यसमाज तथा आर्यविद्यालय के समस्त सेवक जन कुशल पूर्वक अप्ना अभीष्ट सिद्ध किया करते हैं और आप के कथानानुशार मै प्रवृत्त हैं और १ आनन्द की वार्ता यह है की १ समाज भोलेपूर मै स्थापन होगया शनिवार के दिन से वहां पर १ क्षत्रि आप का सेवक उद्यत हुवा है और कई एक भद्रजन उसके उपस्ती हैं और नवीन समाचार कोई नही हैं। शुभम्

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४३] पत्र

श्रीयुत प्रतिष्ठित स्वार्य स्वामी जी महाराजा भगवन् अभिवादये[1]

विदित हो कि एक पत्र आप के निकट भेज चुका हूं।[2] अनुमान है कि पहुंचा होगा। अब प्रार्थना यह है कि यद्यपि मेरी जीविका लग गई और सब संसार के लोग जीविका तो करते ही हैं। परन्तु मेरा चित्त अब कहीं नहीं लगता क्योंकि आप जैसे शुद्ध पुरुष मुझको कोई नहीं दीखते। पहले यह विचार नहीं किया, यह मेरी भूल है और आपका यह कहना बहुत सत्य है कि जब तक मनुस्य को धक्का नहीं लगता तब तक बुद्धि नहीं आती। अब मेरा यही विचार है कि आप का संग मैंने बहुत किया और आपको भी मेरे समान ठहरने वाला कम ही मिला होगा। अब मेरे ऊपर कृपा करके मेरे दोष आप नि:-शेष जानते हैं और कुछ मं भी जानता हूं सो आप चित्त से हटा दीजिये। क्योंकि मैं सब दोषों को समूल छोड़ दूंगा। जिन जिन बातों से मेरी आप की बुद्धि में विरोध पड़ता था। सो वे बातें अब कदाचित् किञ्चित भी न करूंगा। आप मेरे पूर्वानुभूत अपराधों को क्षमा कर के अपने चरण कमलों के दर्शन कराइये।[3] भवदनुग्रह कांक्षी

भीमसेन शर्मा

रामानन्द को नमस्ते

---

१. यह पत्र रामबिलास शारदा कृत 'महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र' (आर्यधर्मेन्द्र चरित) के तृतीय संस्करण के पृष्ठ ३६१-३६२ पर छपा है। यहां भीमसेन के अन्य कुछ पत्र भी छपे हैं, जिन्हें यथास्थान दे रहे हैं। ये पत्र अगले संस्करणों में नहीं छपे। २. यह पत्र हमें नहीं मिला।

३. इस पत्र पर तिथि अङ्कित नहीं है। इस पत्र का तथा अग्रिम (पूर्ण

[पूर्ण संख्या ५४४] पत्र

॥ श्रीरामायनमः ॥[1]

॥ सिध श्री गढ जोधपुर शुभस्थानस्थ सर्वोपमा विराजमान स्वामी जी महाराज श्री १०८ श्री दयानन्द जी सरस्वती चरणकमलेषु उदयपुरस्थ लिषित उज्वल जयकरणस्य नमस्ते

अपर॥ कविराजा सांवलदासजी इंदोर सें याहां आये ओर किंचित वायू के कारण सें तथा घर्म स नेत्र में पीड़ा हो गइ दूजा नेत्र मैं सो पुन: इंदोर जाण का विचार है सो कल जावेंगे ओर कविराज जी नें कहा है कि स्वामी जी माराज कु लिख दो कि हुलकर साव कु हमनें गोकरुणानिधी के विषय मैं कया तो उनाँनें कहा के स्वामीजी महाराज यहां पधारेंगे तब मैं जरूर लिख दूंगा ओर तुम कुं नहीं ओर। रतलांम विकानेर जेसलमेर के वास्ते मुरारिदान जी कुं लिख दिया है सो वे उद्योग करेंगा पुन: आप बी आज्ञा करते रहियै अमा सावलदासजी नें कया है आर मेरी प्रार्थना ये है कि आप वहां कितने दिवस विराजेंगे कारण यहो लोक पूछते है ओर श्रीदरबार के हृदय मैं आपकी भक्ती जेसी थी वेसी हैं ओर अब भादवा के शुक्ल पक्ष मैं मेरा ही विचार आणं का है सो याद रहै संमत १९४० का भाद्रपद कृष्णा ७ सप्तमी[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४५] पत्र

वैदिक यंत्रालय
२४। ८। ८३ प्रयाग[3]

नं० ६३७

संख्या ५५१) पत्र का संकेत ऋषि दयानन्द के भाद्र सुदी ४, स० १९४० (५ सितम्बर १९४०) को चौ० जालमसिंह को लिखे पूर्ण संख्या ६०८ (भाग २, पृष्ठ ६२२) के पत्र में है। भीमसेन का अगला पत्र भाद्र कृष्णा १२ सं० १९४० (२८ अगस्त १८८३) का है। अत: यह पत्र उससे कुछ दिन पूर्व होगा।

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १. पृष्ठ १०८-१०९ पर छपा है। २. २४ अगस्त सन् १८८३।

३. भाद्रपद कृ० ७ सं० १९४० वि०। यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४६६-४६७ पर छपा है।

श्री स्वामीजी महाराज की सेवा में
जोधपुर

श्री महाराज

नमस्ते कृपा पत्र आप का भाद्रपद वदी १ का लिखा आया[1] इस का उत्तर लिखता हूं:—

(१) धातुपाठ की सूचि आपने भेजी वैसी ही छाप देंगे।

(२) गोवध का उपाय शीघ्र ही होना चाहिये। अर्थात् इन के समय ही में इस का फल निकल आवे। जो इन पास अर्जी भेजी गई और फल पीछे निकला तो अच्छा न होगा।

(३) रजिस्टर मिलान हो रहा है। दूसरे काम के कारण से देर हो गई। आज शुक्रवार है ईश्वर ने चाहा तो सोमवारा तक रवाना करूंगा।

(३) ज्वालादत्तजी को भाषा ठीक बनाने के लिए कह दिया है।

(४) उदयपुर का सब वृतान्त छाप के पुस्तकाकार प्रगट करने के लिये मैंने आप से पूछा था परन्तु आपने कुछ उत्तर नहीं दिया। उस में वहां का सब हाल और धन्यवादपत्र[2] और स्वीकारपत्र[3] सब छाप दिये जांयगे। समस्त वृतान्त उस में होगा।

वह पुस्तक छाप के सब समाचार पत्रों और एत्तद्देशीय राजा महाराजाओं के पास भेज देंगे। इसके छापने की आज्ञा तो आप दे ही चुके हैं परन्तु फिर भी लिख दीजिये। आजकल यंत्रालय का बड़ा टाईप संस्कृत का खाली ही पड़ा है यह पुस्तक होगा तो शीघ्र ही निकल जायगा।

---

१. यह 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ८६०, भाग २, पृष्ठ ६०७-६०६ पर छपा है।

२. महाराणा उदयपुर को सब आर्यसमाजों की ओर से एक 'धन्यवाद' पत्र भेजा गया था। इसे हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ १०३५-१०३६ पर छपा है। इस धन्यवाद पत्र के उत्तर में महाराणा उदयपुर ने जो पत्र जारी किया, उसे भी वहीं आगे पृष्ठ १०४१-१०४२ पर छापा है।

३. स्वीकार-पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' मे पूर्ण संख्या ७६०, भाग २, पृष्ठ ७८७-७६३ तक छपा है।

(५) संस्कृत में पत्र भेजा[1] उस साधु को मैं भी नहीं जानता परन्तु यंत्रालय से पुस्तक सब लिया करता है।

(६) गणपाठ आपके पास भेजा था[2] सो रसीद भिजवाईये। उस के साथ गत सप्ताह की मन्त्रों की भाषा भी भेजी थी।

(७) प्रयाग समाचार जिन दो सप्ताह के लिये आप को लिखा था उन तक छप कर बंध होगया।

(८) यहां से प्रति मास रोकड़ का हिसाब और डाक बही की नकल और जितने फार्म जिस मास में छपते हैं उतने ही मितिवार अर्थात् अमुक तारीख को अमुक फार्म छपाये तीनों कागज पंडितजी के पास बराबर भेज दिये जाते हैं। या तो आप के पास भेजते होंगे या अपने पास रखते होंगे। कृपा पत्र दीजिये।

(९) उणादि की सूचि छपने का लगा लग गया है।

बा० विश्वेश्वरसिंहजी	आप का आज्ञाकारी
की नमस्ते पहुचे।	**समर्थदान**
	मेनेजर

पुनः निवेदनमिदम्।

सत्यार्थ प्रकाश के शब्द बदलने की आपने आज्ञा दी सो मालूम हुआ परन्तु अब पीछे आप कापी भेजें उन में शब्द कड़े न लाये जाय तो अच्छी बात है। जहां कहीं मैं शब्द बदलूंगा। आप के आशय ही के अनु[कू]ल बदलूंगा परन्तु कापी में गड़ बड़ बड़ी आती है। असंबध भाषा बहुत आती है। यह ध्यान रख के दोष निकालना चाहिये। हम यहां बनाते हैं तो बड़ी शंका रहती है। मैंने बहुत बार निवेदन किया परन्तु कापी का दोष आप के यहां से नहीं निकला। जो आप की कापी के अनुकूल छाप दिया जाता तो ग्रंथ बहुत अशुद्ध होता।

---

१. किसी साधु ने सम्भवतः वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग के पते पर ऋ० द० के नाम कोई पत्र भेजा था। उसे मुंशी समर्थदान ने ऋ० द० के पास भेज दिया। उसके सम्बन्ध में ऋ०द० ने भाद्र बदी २ सं. १९४० के पूर्णसंख्या ८९० के पत्र में मुंशी समर्थदान को लिखा था(द्र०-भाग २. पृष्ठ ९०६, प० ६-७)।

२. द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५३१ पर छपा समर्थदान का पत्र (पृष्ठ ६३० प० ५-८)।

कापी भेजीये यहां निमटने पर आ गई है। संस्कार विधि वा अन्य ग्रंथ बी बनाईये। क्योंकि सूची छपे पीछे सत्यार्थप्रकाश के साथ कोई अन्य ग्रंथ भी चाहिये। कापी भेजिये।

आप का आज्ञाकारी
समर्थदान
मेनेजर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५४६] पत्र

२७९-२८०

[1]कापन्या वालनवा
मालापति मदुरा, लङ्का
२६ अगस्त १८८३

मुअज्जम बन्दा जनाब आली,

आपकी २७ फर्ववरी की चिट्ठी[2] जो आप ने मेरी चिट्ठी[3] के जवाब में तहरीर फर्माई है १५ मार्च को वसूल करके मुझे बड़ी खुशी हुई। आप ने जवाब में लिखा है कि मुझे यह मालूम करके बड़ी खुशी हुई है कि आप लङ्का के एक शरीफ खानदान से हैं मुझे यकीन है कि जब आप मेरी कौम के मुताल्लिक मजीद हालात सुनेंगे तो आपको और ज्यादह खुशी होगी। हमें किताबों से मालूम होता है कि लङ्का (हमारा मुल्क) पहले पहल यक्षों और राक्षसों से आबाद था और कि इस में राम और रावण का युद्ध हुआ था। सीता लङ्का में वाका मौजा सीता वाका में छिपाई गई थी। मैं यह कह सकता हूं कि आप को यह मालूम है कि किस तरह मुख्तलिफ वक्तों में हिन्दुस्तान के कई हिस्सों से मुख्तलिफ अकवाम और फिर्केजात के लोग इस मुल्क में आकर आबाद हुए और किस तरह जमाना गुजर जाने पर यह जगह

---

१. यह पत्र मास्टर लक्ष्मण जी ने वैदिक मैगजीन भाग २ से लेकर ऋ० द० के जीवन चरित (उर्दू) के नवम परिशिष्ट में पृष्ठ २६३-२९३ तक छापा है। उर्दू सं० में पृष्ठ २५६ से आगे भूल से पृष्ठ २७३ छपा है। तदनुसार वहां पृष्ठ २७९-२८० है।

२. यह चिट्ठी हमें उपलब्ध नहीं हुई। 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ७५८ (भाग २, पृष्ठ ७८७) पर इस पत्र का कुछ अंश छापा है।

३. ए० डी० राजा पाकसा का यह पत्र हमें नहीं मिला।

इन्सानी रिहायश के काबिल हो गई। हिन्दुस्तान की मुख्तलिफ अकवाम और फिर्केजात के लोग मुख्तलिफ मुल्कों से शाहे सीलोन के हुक्म या दरख्वास्त के मुताबिक आये थे, उसी तरह हम भी आये। यानी हमारी कौम के लोग भी खास वक्त पर शाहे सीलोन की दरख्वास्त के मुताबिक इसी तरह आये थे। हमारे आबा-व-अजदाद दर असल शाला ग्राम वाका कोसाला (मुल्क हिन्दी) के रहने वाले थे और हम साली गोत्र के ब्राह्मण है। आप को शायद मालूम होगा कि प्राचीन जमाने साली गोत्र के ब्राह्मण सामवेद के उस्ताद और उसे कायम करने वाले थे। हम हमेशा इस अमर का ध्यान रखते हैं कि हम उन लोगों की औलाद हैं जिन का वेदों में यकीन था और हम उसे फरामोश नहीं करेंगे और नहीं फरामोश करते हैं। यह नाम राजा पाकसा जो हमारे कुनबे में मुस्तकिल है, दर हकीकत एक खिताब था जो हमारे मशहूर जमाना काबिले इज्जत बुजुर्ग को लङ्का के बादशाहों ने दिया था। अगर चे हम एक दूसरे से अलेहदा दूर दराज मुल्क में रहते हैं, कई दफा मेरे दिल में ख्वाहिश पैदा हुई है कि हम खतूत के जरिये बाहम नामा-ओ-पयाम जारी करें और इस तरह अपने आदमियों को अपनी इसलाह करने के लिए कुछ हिदायात दी जायें। मुझे विश्वास है कि आप हमेशा मकसद के हिसूल के लिए दया और आनन्द इनायत फर्मावेंगे। मुझे यह मालूम करके बड़ी खुशी हुई है कि जो शख्स ध्यानयोग हासिल करने का ख्वाहिशमन्द हो वह किस तरह मुख्तलिफ तरीकों से अपने आप को शुद्ध पवित्र रख सकता है। मुझे यकीन है कि आप को यह सुन कर खुशी होगी कि मेरी स्त्री की हालत अब पहले से अच्छी है। दर हकीकत उस ने सेहत में बहुत कम तरक्की की है। आर्य मेगजीन की तीन कापियां जो मुझे लाहौर से भेजी गई हैं, मैं निहायत खुशी से कबूल करता हूं। मैं यह कहने से नहीं रुक सकता कि इन के मजामीन दुनिया की तरक्की के लिए निहायत मुफीद हैं। क्या मुतजकरा बाला गांव शाला ग्राम इस नाम से अभी तक मौजूद है? क्या उसका सही पता मिल गया है? क्या इस वक्त तक भी उस में साली गोत्र के आदमी रहते है? इन लोगों का अब पेशा क्या है? क्या आप ने किसी किताब में उन के तर्क वतन करके लङ्का जाने का हाल पढ़ा है? क्या आप को या आप के वाकिफ शख्स को हमारे लङ्का आने के मुताल्लिक कोई रिवायत मालूम है?

उम्मीद है कि आप दया और आनन्द से इन सवालों का ऐसे शख्स को जो आप का शागिर्द होने का बड़ा ख्वाहिशमन्द है, जवाब दे कर मशकूर फर्मावें। आइन्दा जब आप मुझे खत लिखें तो कृपा कर के अगर आप को तकलीफ नहीं तो बजाय अंग्रेजी के संस्कृत में लिखें।

मैं हूं आप का निहायत सादिक,
डी० ए० राजा पाकसा

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५४७] **पत्र-सूचना**

[लड़के के यज्ञोपवीत संस्कार के समय][1]

साहू श्यामसुन्दरदास

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५४८] **पत्र**

Dinapore[2]
25th August, 1883.

Dear Sir,

It gave me great pleasure to receive your letter of the 19th instant in which you acknowledge the reciept of the book which I sent you, written by Mr. Rai Bahadur Daboda Pandurung of Bombay.

In my letter I earnestly invited you to read Swedenborg's works, both philosophical and theological, for in them you will, I am convinced, find a

---

१. यह पत्र-सूचना पं० लेखराम जी के जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ४७२ पर उद्धृत है। समय का निर्देश न होने से हम इसे यहां छाप रहे हैं।

२. यह पत्र वैदिक मैगजीन (गुरुकुल कांगड़ी) माघ १९६५ वि० में छपा था।

vast and deep mine of intellectual treasure and much that will interest a man of your deep learning in the philosophy of the sacred books of the East—the Sanskrit Vedas. You will, I am sure, find much in Swedenborg's writings that agrees with the ancient Vedic writings.

I am sorry that you do not know the English language and still more so that I do not know Sanskrit. My avocations do not give me time or opportunity to study so difficult and noble a language. You will no doubpt through your many friends, who are educated highly in the English language, be able to get Swedenborg's works translated for you or read to you.

In the concluding chapter of the book which I sent to you Mr. Daboda Pandurung remarks that Swedenborg's "science of correspondences may be considered a **new discovery** or something **approaching to revelation.**"

It is this science to which I would earnestly solicit your attention for not only does it throw a new and clear light on the writings of the sacred scriptures, which we Christians call the Holy Bible, but I am convinced that it will throw as clear a light on the sacred writings of the Fast, contained in the Vedas. Any how you will be in a position to judge how for this is the case. The principle of this science or doctrine of correspondences is, that all things natural correspond with all things spiritual, —that is,—there is in every material object we see, a spiritual essence, as a soul in its body, the external form which is menifest to our senses is the cor-

respondence or representation of that invisible or pneumatical substance.

If then, as is authoritatively stated all things were made by the wisdom or word of God all created things are the expression of the Divine mind; and if, as is also authoritatively stated the Revealed or written word is the word of God, it also is the expression of the Divine mind. The Divine works and word must therefore correspond, and unerringly fit into each other and explain each other. This is the principle of the science of correspondences as clearly as I can explain it in a few words and I hope I have made it clear enough for you to judge of its scope. The dark allegories and figurative language of the ancient sages may possiply to a great extent, be comprehended by the aplication of this science.

As regards myself I am only a novice or beginer in the study of Swedenborg's writings and my work does not give me much time to read, but by what little I have read of them. I cannot help recommending them to others since they contain a mine of truth.

I will now conclude with my best respects.

Yours faithfully,
J. H. WILSON.

To Pandit Swami Dayanand Saraswati, **Jodhpore.**

भाषार्थ

दानापुर
२५ अगस्त १८८३

प्रिय महोदय,

आपके १९ अगस्त के पत्र को प्राप्त कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता

हुई। बम्बई के रायबहादुर दाबोदा पाण्डुरङ्ग द्वारा लिखी पुस्तक की प्राप्ति की सूचना आपने इस पत्र में दी है, जो मैंने आपको भेजी थी।

मैंने अपने पत्र में आपको स्वेडनबर्ग के ग्रन्थों को पढ़ने की जोरदार संस्तुति की थी, ये ग्रन्थ दार्शनिक तथा धर्म विषयक मन्तव्यों को लेकर लिखे गये हैं। इन्हें पढ़ने से, मेरा विश्वास है कि आप को बौद्धिक ज्ञान का निगूढ भण्डार प्राप्त होगा तथा आप जैसे उस व्यक्ति के लिए तो ये ग्रन्थ और भी अधिक रोचक होंगे जिसने प्राच्य की धार्मिक पुस्तकों, विशेषत: संस्कृत मे रचित वेदों में निहित दर्शन का गम्भोर अध्ययन किया है।

मुझे इस बात का भारी खेद है कि आप अंग्रेजी नही जानते और इस बात का और भी दु:ख है कि मुझे संस्कृत नहीं आती। मेरी व्यवसायजन्य व्यस्तता संस्कृत जैसी कठिन किन्तु उच्च भाषा को पढ़ने के लिये पर्याप्त समय नहीं देती। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप अपने उच्च अंग्रेजी शिक्षित मित्रों के द्वारा स्वेडनबर्ग के ग्रन्थों को स्वयं पढ़ने अथवा अन्यों द्वारा पढ़े जाकर सुनने के लिये अनुवाद करा सकते हैं। अपनी पुस्तक के अन्तिम अध्याय में श्री दाबोदा पाण्डुरङ्ग ने लिखा है कि स्वेडनबर्ग का नवाविष्कृत सादृश्यता विज्ञान एक नई शोध अथवा दैवी रहस्योद्घाटन के तुल्य है।

इसी विज्ञान की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं क्योंकि इससे न केवल उन पवित्र शास्त्रों पर ही एक नवीन तथा स्पष्ट प्रकाश पड़ता है जिसे हम ईसाई लोग पवित्र बाइबिल कह कर पुकारते हैं, किन्तु मेरा तो यह विश्वास है कि इससे वेदों में संगृहीत पूर्व के धार्मिक ग्रन्थों पर भी नया प्रकाश पड़ेगा। कुछ भी क्यों न हो, आप इस विवेचना की सत्यता को भी जान पायेंगे। पारस्परिक तादात्म्य से इस विज्ञान या सिद्धान्त का मूल इस तथ्य में निहित है कि सारी भौतिक वस्तुएं सारे अध्यात्म तत्त्वों के समकक्ष हैं अर्थात् हमारे द्वारा देखे जाने वाले प्रत्येक भौतिक पदार्थ में आत्म तत्त्व भी है, उसी प्रकार जैसे शरीर में जीवात्मा रहती है। हमारी इन्द्रियों से जो बाह्य आकार दिखाई पड़ता है वह उस अदृश्य तथा वायवीय का ही प्रत्यक्षीकृत रूप है।

अब यदि, जैसा कि अधिकृत रूप में कहा गया है, सारी वस्तुयें परमात्मा की बुद्धि या वचन के द्वारा ही बनी हैं तब तो यह मानना होगा कि सभी रचे गये पदार्थ उस दैवी (ईश्वरीय) मन की ही अभिव्यक्ति हैं और यदि यह भी आधिकारिक रूप में कहा गया है कि श्रुति रूप में उपलब्ध या लिखित शब्द (ज्ञान) भी ईश्वरीय वचन है तब भी यह मानना होगा कि यह भी परमेश्वर के मानस की ही अभिव्यक्ति है। अतः परमात्मा की कृति तथा उसके वचनों में एकतानता होनी ही चाहिये। ये एक दूसरे के साथ बिना किसी त्रुटि के समायोजित हों तथा एक दूसरे की व्याख्या भी करें। यही तादात्म्य या समायोजन के विज्ञान का मूल सिद्धान्त है, जिसे मैं स्वल्प शब्दों में समझा सका हूं तथा मुझे आशा है कि मैं इसे इतना स्पष्ट कर सका हूं ताकि आप इसकी व्याप्ति पर अपना निर्णय दे सकें। यदि इस विज्ञान का उपयोग किया जाता है तो प्राचीन ऋषियों की गूढ़ अन्योक्तियों तथा आलङ्कारिक भाषा को बहुत कुछ समझा जा सकता है।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो स्वेडनबर्ग के ग्रन्थों का एक नौसिखिया या प्रारम्भिक अध्येता ही हूं तथा मेरा कार्य भी मुझे अधिक पढ़ने के लिए समय प्रदान नहीं करता। तथापि जितना कुछ मैंने पढ़ा है, मैं अन्यों को इसे पढ़ाने के लिये प्रेरित किये बिना नहीं रहता क्योंकि इनमें सत्य का अगाध भण्डार छिपा है।

अब मैं अपना सम्पूर्ण आदर व्यक्त करते हुए इस पत्र को समाप्त करता हूं।

आपका विश्वास पात्र,
जे० एच० विलसन

सेवा में, पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती। जोधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५४९] **पत्र**

Kappina Walanwa Balapiti[1]
Madora, Ceylon, 26th August, 1883.

Revered Sir,

---

१. यह पत्र वैदिक मैगजीन (गुरुकुल कांगड़ी) माघ १९६५ वि० में छपा था।

I received Very gladly your kind letter of reply dated 27th February on the 15th of March. You say in your reply:—"I am very glad to see that you are from a respectable family of Lanka."

And by hearing more at length about our tribe, I believe you will be much more glad. And we learn from books that Lanka (our country) was originally peopled by Yakshas and Rakshasas that Rama-Rawan war was waged in it and that Sita was kept hidden in the village Sita vaka situate in Lanka. I dare say you know how, at different times, men from various parts of India of different nations and tribes came and settled here and how this became, in the course of time, a human abode. Men of India of various nations and tribes came from various districts at the request or order of the kings of Ceylon—and we, too, i. e., the men of our tribe also came at a particular time in the same way at the request of Ceylon Kings.

Our original ancestors were men from Sala-grama in Kosala in India and we are Brahmins belonging to the Sali-gotra. You might know that Brahmans of the Sali-gotra were in days of your the teachers and refounders of the Sama Veda. We ever do keep in mind that we were formerly persons who believed in the Vedas and we will not and do not forget it. The name Rayapaksa, we now use in one family, is a denomination conferred on our illustrious, renowned and famous ancestors by the native kings of Ceylon. Although we live in far off countries, separate from each other, I am very anxious, at least from time to time, to communicate among ourselves even by letters and thereby imparting to our men soma good instructions to reform them I trust you will grant us your pleasing mercy (daya-ananda) to accomplish the object. I am very glad to

know in how many different particular ways a person willing to attain to Dhyan Yoga can remain clean and unsullied. I believe you will be glad to hear that my wife is a little better now. Indeed she has very much improved in her health, I gladly accepted three Arya Magazines sent to me [in which some instructions to improve the health were published. I must accept that the matter dealt in them is helpful altogether for the progress of the world.]

Does the Sala-grama aforementioned yet exist by the same name ? Has it been correctly identified ? Do the Sali-gotra men live in it at present also ? What is their profession now ? Have you seen anything written in any book about their immigration to Ceylon. Do you, or any one known to you, know any tradition about our coming to Ceylon ? Hoping you will reply to these queries by your good mercy (ananda-daya) and being very anxious to be a pupil of yours,

I remain,
Yours very sincerely,
D. A. Raja-paksa,

P S.—When you write to me again write please in Sanskrit rather than in English, if convenient

भाषार्थ

कप्पिना वालनवा बालापिती
मडोरा, सीलोन २६ अगस्त १८८३

आदरणीय महोदय,

आपका २७ फरवरी का लिखा पत्र मुझे १५ मार्च को मिला जिसे पढ़ कर मुझे परम प्रसन्नता हुई। आपने अपने उत्तर में लिखा है—"मुझे यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि आप लङ्का के एक सम्मानास्पद परिवार के वंशज हैं।"

अब जब आप मेरे वंश के बारे में और विस्तार से जानेंगे तो

आपको और अधिक प्रसन्नता होगी। हमने ग्रन्थों में पढ़ा है कि हमारा देश लङ्का मूलतः यक्ष और राक्षसों का निवास था। राम और रावण युद्ध यहीं हुआ था तथा सीता को लङ्का के ही एक ग्राम "सीता वाका" में छिपा कर रखा गया था। मैं यह कहने का साहस करता हूं और आप भी जानते हैं कि भिन्न-भिन्न युगों में भारत के विभिन्न स्थानों से अलग अलग देशों तथा वंशों के लोग यहां आकर बसते गए और अन्ततः यह द्वीप मनुष्यों की एक बस्ती के रूप में विकसित हो गया। लङ्का के राजा के आदेश या प्रार्थना से भारत के विभिन्न जिलों, राज्यों तथा समुदायों के लोग यहां आते गये। लङ्का के राजाओं के अनुरोध पर हमारे वंश के लोग भी एक निश्चित समय में यहां आये थे।

हमारे मूल पूर्वज भारत में कोसल राज्य के शालाग्राम नामक स्थान के निवासी थे। हम लोग शालि गोत्र के ब्राह्मण हैं। आपको सम्भवतः यह पता ही है कि प्राचीन काल में शालि गोत्र के ब्राह्मणों ने ही सामवेद का पठन-पाठन किया था और उसका पुनः प्रचार भी किया था। हम सदा इस बात को अपने मन में रखते आए हैं कि पुराकाल से ही हम वेदों के विश्वासी रहे हैं तथा इस तथ्य को हम कदापि विस्मृत नहीं करते और न करेंगे। हमारे वंश को जिस "राय पक्ष" के नाम से पुकारा जाता है, यह अभिधान हमारे प्रसिद्ध, यशस्वी तथा प्रशंसायोग्य पूर्वजों को लङ्का के स्थानीय राजाओं द्वारा प्रदान किया गया था। यद्यपि अब आप और हम एक दूसरे से बहुत दूर देशों में निवास करते हैं तथा हमारे वंशज एक दूसरे से पृथक् हो गये हैं, तथापि समय समय पर मेरी यह इच्छा रहती है कि हम पत्रों के माध्यम से एक दूसरे से विचारों का आदान प्रदान करें एवं अपने लोगों को कुछ उत्तम शिक्षा प्रदान करें, जिससे कि वे सुधर सकें। मुझे विश्वास है कि आप इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपना आनन्ददायक कृपादान हमें अवश्य करेंगे। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि ध्यान योग की साधना करने वाला व्यक्ति कितने प्रकार की साधनाओं के द्वारा स्वयं को पवित्र तथा निष्कलुष रख सकता है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरी पत्नी अब पूर्वापेक्षा स्वस्थ है। निश्चय ही उस के स्वास्थ्य में बहुत सुधार हुआ है और इसका कारण लाहौर से भेजे गये आर्य मैगजीन के वे तीन अङ्क हैं

जिनमें कुछ स्वास्थ्यवर्धक निर्देश छपे थे। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि इनमें वर्णित विषय संसार के सुधार में नितान्त सहायक हैं।

क्या मेरे पत्र में उल्लिखित शालाग्राम अब भी इसी नाम से अस्तित्व धारण किए हुए है? क्या इसका ठीक प्रकार से निर्धारण हो चुका है कि यही शालाग्राम है? क्या वर्तमान में भी इस ग्राम में शालिगोत्र के लोग निवास करते हैं? अब उनका व्यवसाय क्या है? क्या आपने किसी पुस्तक में इस वंश के लोगों का लङ्का की ओर प्रस्थान करने का उल्लेख देखा है? क्या आप या अन्य कोई आपका परिचित व्यक्ति हमारे वंश के लङ्का आने की पुरा-गाथा से परिचित है? मुझे आशा है कि आप अपनी दयालुता से मेरी उपर्युक्त जिज्ञासाओं के विषय में उत्तर देंगे तथा मैं आपका शिष्य बनने की प्रबल उत्सुकता रखता हूं।

मैं हूं आपका अत्यन्त
विश्वास भाजन,
डी० ए० राजपक्ष।

पुनश्च—आगे आप मुझे पत्र लिखें और आपको सुविधाजनक लगे तो आप अंग्रेजी के बजाय संस्कृत में ही लिखें।

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५५०] पत्र

वैदिक यंत्रालय
नं० ६४६ २७। ८। ८३ प्रयाग[1]
श्री स्वामीजी महाराज की सेवा में जोधपुर

श्री महाराज!

कृपा पत्र आप का भाद्रपद बदी ५ का लिखा आया[2]।

---

१. भाद्रपद कृ० १०, सं० १६४० वि०। यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४६६-४७२ तक छपा है।

२. द्र०-'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ८६३, भाग २, पृष्ठ ६१०-६१२।

(१) ज्वालादत्तजी के विषय में आप ने लिखा सो जाना। पत्रा आपने भेजा सो दिखला दूंगा। भाषा मुझे देख लेने के लिए आपने लिखा सो ठीक है परन्तु शोधने में मेरी भी तो दृष्टि कच्ची है क्योंकि दीर्घ काल तक काम किये बिना दृष्टि कदापि नहीं जमती है और मैं करूं भी तो मुझे समय नहीं मिलता। मुझे निज का ही काम बहुत है। प्रूफ शोधना स्थिर चित्तका है मुझे एक न एक झगड़ा लगा ही रहता है। यह काम ज्वालादत्त ही का है उन्ही को साव-धानी से देखना चाहिये। सत्यार्थप्रकाश का फार्म अन्तमें मैं एक बार देखता हूं सो भी कामा (,) आदि चिन्होंने के लिये देखता हूं। इसमें कोई भूल और भी दीख पड़ती तो निकाल देता हूं। परन्तु प्रूफ शोधना काम ज्वालादत्त ही का है। एक से कई काम ठीक नहीं हो सकते। इस विषय में पीछे से दूसरे पत्र में निवेदन करूंगा।

(२) गणपाठ में कागज सो व्याकरण के पिछले सब पुस्तकों में लग चुका है। यह मुम्बई की ११) रु० रीमकी खरीद है। आख्या-तिक में कागज निकम्मा लगा था इस कारण से अच्छा लगाया गया। इस की बात चीत पं० सुन्दरलाल जी से यहां ही हो गई थी। हम लोगों की तुच्छ सम्मति में तो हलका कागज लगाना अच्छा नहीं है। क्योंकि दाम भी तो पूरे लिये जाते हैं। और यह कागज बहुत उत्तम भी नहीं है।

(३) जितने फार्म छपते हैं उन का ब्योरा तारीख वार लिख कर पं० सुन्दरलाल जी के पास मासिक हिसाब के साथ भेज देता हूं। आप के पास पहुंचते न होंगे वे शायद इकट्ठे ही भेज देंगे।

(४) संस्कारविधि की साफ नकल करवा कर तय्यार हो गई तो भेज दीजिये। सत्यार्थप्रकाश की कापी भेजीये।

(५) आप लिखते हैं कि तुम छापते छापते थक जाओगे। सो महाराज ! इस बात की भी परीक्षा थोड़े दिनों में हो जायगी कि देखें कौन शीघ्रता करता है। व्याकरण की सूचि काल विशेष लेती है इस के छपे पीछे देर न होगी। जोलाई मास की १ तारीख से बाहर का कोई काम नहीं लिया जाता। जिस बात की आज्ञा हो आप की नहीं है वह क्यों की जायगी। अब सत्यार्थप्रकाश और उणादि की सूचि छपती है।

(६) एक पत्र की नकल आप ने भेजी है इस में किसी ने अपने अपने अपराध क्षमा कराए हैं। आपने केवल नकल ही भेजी है इस विषय में कुच्छ लिखा नहीं। और न नकल में किसी के हस्ताक्षर हैं **परन्तु मालूम होता है यह पत्र पं० भीमसेन का है।[1] जो मेरा अनुमान ठीक है तो यह बात अच्छी हुई। भीमसेन ने अच्छी विचारी। और आशा है आप भी उन के अपराध क्षमा करेंगे। मुझ को तो इस पत्री के देखने मे बड़ा आनन्द हुआ। मनुष्य की प्रकृति बदलना दुस्साध्य है परन्तु असंभव नहीं।** सदैव नहीं तो आशा है कुछ काल तक काम अच्छा करेंगे। कृपापत्र दीजिये। और समाचार दूसरे पत्र में लिखूंगा।

सत्यार्थ प्रकाश ३२०
पृष्ठ तक छप चुका है।
स० दा०

आप का आज्ञाकारी
समर्थदान
मेनेजर

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५५१]   पत्र

श्रीयुत प्रतिष्ठिताचार्य श्रीस्वामिन्भगवन्नभिवादये[2]

पत्र आपका आया[3] देखके चित्त को अति प्रसन्नता हुई। इस मेरी जीविका लग जाने का निर्णय चौधरी जालिमसिंह भी जानते हैं। और ठाकुर कुंवर जवाहर सिंहजी को अब अग्निहोत्र सन्ध्या आदि बताया है सो करने लगे और मनुस्मृति का उपदेश सब को यहां सुनाता हूं। यही मेरा मुख्य अभिप्राय है कि मैंने अब तक यहां आकर

---

१. हमारा भी विचार यही है। ऋ० द० ने भीमसेन शर्मा का पूर्व पूर्ण संख्या ५४२, पृष्ठ ६४२ पर छपे पत्र की नकल मुंशी समर्थदान को भेजी होगी।

२. यह पत्र रामविलास शारदा कृत महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र, सं० ३, पृष्ठ ३६२ पर छपा है। विशेष द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५४२, पृष्ठ ६४३ की टि० १।

३. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। सम्भव है यह पत्र ऋ० द० ने ब्र० रामानन्द से लिखवाया होगा। द्र०—भीमसेन का अगला भाद्र सुदी १४ सं० १९४० का पत्र।

विरुद्ध काम कोई भी नहीं किया और आपसे भी संबंध क्यों न रहना चाहिये। दूसरी जगह जैसी जीविका हो सकती है उससे जीविका भी कुछ कम आपके संबध में नहीं है। ठीक ठीक मैं कहता हूं कि आपका चित्त मुझसे भले ही बिगड़ गया हो परन्तु मेरा चित्त आपकी ओर से बिलकुल नहीं हटा था जो ऐसा होता तो मैं आपको पत्र नहीं लिखता मैं तो चले आने पर भी यही समझता था कि आप से मैं सर्वथा विरुद्ध नहीं हूं जो कदाचित् जीविका दूसरी जगह कर लेता और कर लूं तो भी मैं आपसे संबन्ध बनाए रहना ही चाहता हूं। इसी कारण आपके निकट से आकर कोई विरुद्धाचरण नहीं किया और इस विषय में जालिमसिंह आदि कई पुरुषों की सम्मति भी ऐसी हो रही कि स्वामीजी से सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिये मैं केवल जीविका ही नहीं चाहता आपके सम्बन्ध में और भी बहुत बात अच्छी देखता हूं। अब मेरा खास मनोर्थ यह है कि आपके सम्बन्ध में रहकर आगे वा पीछे कुछ भी प्रतिकूल नही वर्त्तूंगा आपसे कोई बात का हठ भी न किया करूंगा और मैं जैसा लिख चुका हूं वा लिखता हूं यह बात विश्वास के योग है इस में इस समय लिखने के सिवाय और दूसरा दृढ़ प्रमाण क्या दे सकता हूं किसी मनुष्य की एक आध प्रतिज्ञा मिथ्या किसी कारण से हो जाय और बहुतसी प्रतिज्ञा ठीक हों तो प्रतिज्ञा पर ही विश्वास करना होता है जब आप अपने सम्बन्ध में रखकर फिर चार छः महीना बर्ताव देखेंगे तो प्रत्यक्ष से निश्चय हो जावेगा। एक मनुष्य का स्वभाव सदा एकसा नहीं बना रहता देशकाल वस्तु भेद से बदल भी जाता है। और जैसी बुद्धि मनुष्य की प्रथम हो और बीच में किसी कारण से बदल कर फिर पूर्वावस्था को स्वीकार करे तो फिर उस में दृढ़ता हो जाती है फिर चलायमान नहीं होता जिस समय पर बीच में मेरी बुद्धि में भ्रम पैदा हो गये थे तब जरुर ही आपके बहुतेरे कथनों को विरुद्ध जानने लगा था सो आप से भी कह दिया करता था कि मेरी बुद्धि इन इन विषयों में विरुद्ध है सो मैं जब आपके समीप से यहां आया तब अपनी इच्छा से और मेरे अभिप्राय को सुन जान के चौधरी जालिमसिंहजी तथा भाई धर्मदत्तजी आदि सज्जनों के इस कथन से कि एकान्त में बैठ के नवीन पुराणादि ग्रन्थों की बातों को तथा शास्त्रों को स्वामी जी के कथन से मिलाकर निश्चय करो पीछे जैसी मन्शा हो वैसा आचरण करना। इस में

छः महीने से विचार ही करता रहा अब मेरे चित में यही निश्चय हुआ कि आपका उपदेश बहुत सत्य है आप मेरे स्वभाव को जानते हैं कि जसा मेरे भीतर कुछ होता था वसा आप से कह दिया करता था। सोई अब भी जानिये जो मेरा चित्त आप की ओर ठीक न होता तो मैं अब भी नहीं लिखता। इस बात को आप भी जानते हैं कि चतुर्भुज[1] आपके विरुद्ध सम्बन्ध से कितनी जीविका कर लेता है जो विरुद्ध किया चाहता तो चतुर्भुज से विद्या में कम नहीं था और आपके विरुद्ध पक्ष में मेरे सहायकारी भी बहुत थे यहां भी मनुस्मृति से भिन्न कोई कथा पुराण मैंने नहीं बांची। एकान्त में सत्यासत्य निश्चय के लिये भागवत आदि का विचार तो अवश्य किया फिर आप क्यों कहते हैं कि जीविका ही करना तेरा प्रयोजन है जीविका अब भी मेरे लिये बहुत है इसी कारण चित्त अब मेरा स्थिर है मेरा चित्त नहीं लगता इसका अभिप्राय यह है कि आप की ओर मेरी प्रीति अधिक बढ़ी और आप मुझसे अप्रसन्न रहें तो चित्त अच्छा नहीं रहता था अब जो आप प्रसन्न रहें तो मेरा चित्त यहां वा अन्यत्र सर्वत्र स्थिर है। मैं अभी हाल यह नहीं कहता कि अभी मेरी जीविका लगादें किन्तु जो आप के पास पण्डित मौजूद हैं और अधिक पण्डित रखने की कुछ आवश्यक्ता न हो तो दो चार महीने में वा जब मेरे लिये कुछ काम समझें तब आज्ञा देवें आज्ञा देते ही शीघ्र उपस्थित होऊंगा। इस पत्र में मैंने अपने हृदय का सब आशय खोलदिया है अब मुझ को आशा है कि इस पत्र का उत्तर शीघ्र और अवश्य देंगे।

(इत्यलबुद्धि मतमेषु) शमस्तूभयत्र
रामानन्द ब्रह्मचारी को
नमस्ते
तुह्मारा लेख अच्छा है
मि० भाद्रकृष्ण १२ बुधवार[2]

आप से कृपा कांक्षी
भीमसेन शर्म्मा

---

१. यह चतुर्भुज वही है, जिस का पूर्व पत्रों में भी अनेक बार उल्लेख आ चुका है।

२. यहां संवत् का उल्लेख नहीं है, परन्तु यह सं० १९४० का पत्र है। यह बात ऋ० द० के भाद्र सुदी ४, सं० १९४० को चौ० जालमसिंह को लिखे पूर्ण संख्या ६०७, भाग २, पृष्ठ ६२१ के पत्र को तथा भीमसेन के इस पत्र को मिलाकर पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है। तदनुसार २९ अगस्त १८८३।

[पूर्ण संख्या ५५२] पत्र

॥ ओम् तत्सत् ॥[1]

श्रीयुतपरमहंस परिव्राजकाचार्य अनेक गुण संपद्विराजमान श्रीमद्वेदविहिताचारधर्म्म निरूपक श्रीमत्स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज नमस्ते।

प्रार्थना यह है कि डेढ वर्ष से पंडित गौरीशंकर यहां पर विराजमान हैं इनको सहायता तथा पुरुषार्थ से हमारी सभा को अत्यत उन्नति हुई है और आगे को आशा है कि हम अपने मनोरथ को पहोंच जावेंगे क्योंकि इनका शुद्धांत:करण आर्य धर्म्मानुकूल और उपदेशकी युक्ति इस प्रकार की है कि इस नगर में विख्यात है और आशा है कि यह उपदेश द्वारा हमारे देश के मनुष्यों को बहुत लाभ पहुंचावेंगे परंतु इस डेढ वर्ष के अंतर में इनको यहां पर कुच्छ सुख नहीं हुवा क्योंकि प्रथम महकम इमारत में ये नोकर हुवे थे इस सभा में आने के कारण ही वहां के हाकिम ने इनको पृथक किया था और पश्चात् सभा के पुरुषार्थ से अंग्रेज के पास नोकर हुवे परंतु पोप लोगों ने वहां पर भी अत्यंत विरोध किया और साहब से यहां तक कहा कि यह पुरुष हमारे धर्म्म की निंदा करता है और महाराज के धर्म्म तथा ईसाई धर्म्म का भी निंदक है और स्वामी दयानन्द सरस्वती की तरफ से नोकर होकर यहां उपदेश करने आया है और आप के यहां भी नोकरी करता है इत्यादिक कथनों से साहब का चित् प्रथम ही बिगाड दिया था परन्तु अब एक कारण यह हुवा कि गौरीशंकर एक दिन के लिये कह कर गत आदित्यवार को अजमेर की सभा में उपदेश करने को गये थे अगले दिन रेल न मिलने के कारण समय पर उपस्थिन न हो सके इस कारण अनुपस्थिति दोष में इनका नाम पृथक कर दिया गया है अब इनका आजीवन् बिनाश होने के सबब से हम को अत्यंत शोक है और सभा की बहुत हानी है क्योंकि यह सभा इन ही के रहने से नगर में विख्यात तथा स्थिर है ॥

इस कारण आप कि सेवा में प्रार्थना है कि कुछ सहायता आप करें और अवशेष हमारी सभा देवें तो यह भी एक उपदेशक हो जावें

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ८९-९१ पर छपा है।

कुच्छ काल जयपुर में भी रहा करें और अवशेष रजवाडे में तथा अन्यत्र उपदेश करते रहैं क्योंकि हमारी सभा अभी सारा खरच नहीं उठा सक्ति है यद्वा जो एक उपदेशक के लिये महाराजा शाहपुर ने सायता दइ है उस स्थान पर इनको रखा जावे इनको अंग्रेजी फारसी के होने से नोकरी और अन्यत्र भी अवश्य मिल जावेगी परंतु इन का आजीवन् सभा की तरफ से होना अत्यंत गुण दायक है क्योंकि असे पुरुषार्थी शुद्धांतःकरण का मिलना इस समय किंचित् कठिन है और पोप लोगों से हमारा काम नहीं चल सकता और इनकी व्याख्यान शक्ति तथा योग्यता की अजमेर समाज तथा अन्य आर्य पुरुष जिनोंनें इन को देखा और सुना होगा अच्छी प्रकार शाक्षी दे सक्ता है आशा है कि आप इस बिशय को कृपा दृष्टि से अवलोकन करके इसका अच्छा प्रबन्ध कर देंगे और उत्तर से शीघ्र अनुमोदित करेंगे ।।

पुननमस्ते

आपका सेवक **बिहारीलाल मंत्री**

वैदिक धर्म्म सभा जयपुर

भा० कृ० द्वादशी सं० १९४०[1]

Nand Kishor sing
Pradhan

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५३]   पत्र

श्रावण वद्य १३—१८०५[2]

पत्रं प्राप्तम्[3] । समाचारा ज्ञाताः । आनन्दोऽभूत् । अत्र वर्षाऽतीव

---

१. २९ अगस्त सन् १८८३ । इस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने भाद्र शुक्ला १ सं० १९४० को पूर्ण संख्या ६०३(भाग २, पृष्ठ ६१७)पत्र द्वारा दिया था।

२. यह शकाब्द है । निथि भी दाक्षिणात्य पञ्चाङ्गानुसार है । तदनुसार भाद्र बदी १३ सं० १९४०(३० अगस्त १८८३)बृहस्पतिवार समझना चाहिये। यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २४३ पर छपा है।

३. ऋ० द० का यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

वर्तते। इत उत्तरं संस्कृत पत्र प्रेषणकृपयाऽनुगृण्हातु[1] स्वामिन्निति भवद्भ्यो विज्ञापनमस्तीत्यलम्

भवदीयो **लक्ष्मण गोपाल** देशमुखाख्यः
अ. क: खानदेश

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५४] पत्र

॥ ओ३म् ॥[2]

श्रीमत्परहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्य्य स्वाश्रम धर्म मर्यादा परिपालनतत्परेषु श्री १०८ श्री स्वामी जी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चरण कमलेषु प्रार्थना तथा निवेदनम् । १ । हे गुरो आप को विदित हो कि मेरा रोग श्रीमानों की पूरण कृपा सुदृष्टि से गुप्त हो गया है । २ । आजकाल विद्याभ्यास सुविचार श्री मच्चरण कमलों मे परम प्रीति का होना सो कुछ श्रेष्ट प्रारब्ध फल की सहाय पहुंची है । ३ । सहर पानीपत के पोपों का समाचार । ४ । पोप लोग इन्द्र वरुणाग्नि सूर्य्यादिकों का परस्पर वाद विवाद वेद की सम्मति से मूर्तिमानों का कर्ते हैं । ५ । कि इन्द्र स्वर्ग मे रहता है और सूर्य्य लोक तो सर्व मनुष्यों को प्रत्यक्ष हि विदित है । ६ । सभ देव देहधारी हैं ॥ इन्द्र वरुणाग्नि सूर्य वृहस्पति विष्णु वायु शिव ब्रह्मा लक्ष्मी सावित्री सरस्वती गणेशादि देवों की मूर्ति वेदादि सत्य शास्त्रों मे अनादि चली आती हैं । ७ । उक्त पोप लोग कहते हैं कि तुह्मारे स्वामी जी मूर्तिपूजा को क्यूं निषेध कर्ते हैं सो कहो ॥ इन सब वार्ताओं के विषय में मैं नें और श्रीयुत बाबू ज्वालाप्रसाद जी ने पोपों का मत खण्डन किया । ८ । मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्तावीश्वर बुद्धयः क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परांशान्तिन यान्तिते ॥ दोहा ॥ जो नर पूजहि काष्ट

---

१. संस्कृत भाषा में पत्र लिखने की प्रार्थना लक्ष्मण गोपाल देशमुख ने अपने ७ अगस्त १८८३ के पूर्व पूर्णसंख्या ५२१ पर मुद्रित पत्र में भी की थी। सम्भव है इस पत्र में स्मृत ऋ० द० का अनुपलब्ध पत्र संस्कृत भाषा में ही लिखा हुआ हो।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १९-२० तक छपा है।

पषाना ॥ सो उन से हैं अति अज्ञाना । ९ । पोपों ने बहुत सा गडवड मचाया परंतु श्रीयुत चौधरी चिरंजीवलाल तथा श्रीयुत बाबू ज्वाला-प्रसाद जीने कयिएक पोपों को शिक्षा सहित बावयु से चुपचाप करि दिये हैं और यह भी विदित कर दिया है कि कोई पुरुप श्रीयुत परम-पूज्य श्री जगद्गुरू श्री स्वामी जी की वार्ता कहैगा या काई ईश्वरा-नन्द सरस्वती को स्वपीडा से क्लेशित करैगा तो सरकार कंपनी की कच:री में हम लोग तुह्म को दंडाधिकारी कारवा देवेंगे यातें तुह्म सब लोकों को उचित ह कि वेद के अनुकूल हो के वार्तालाप करो सो हे परमपूजनीय परम सत्य गुरू आपके चरण कमलो की दया ईहां भी छाय गई है

मेरे पर भवच्चर कमलो की धूरि स्पप्न में वर्षि है सो मैनें खूब स्नान किया ईतनें मैं मेरे नेत्र खुल गये भाद्र पद वारस के रोज स्वप्न हुआ और त्रयोदशी के रोज पत्र आप के चर कमलों में भेजा गया भादवा वदी १३

ईश्वरानन्द सरस्वती सहर पानीपत जिला करनाल तसील थाना सर पानीपत उक्त पत्ते से जब कहीं यात्रा की तयारी होय तब एक पत्र मुज को भी श्रीमानों की यात्र विषय का मिलै

श्रीयुत रामानन्द ब्रह्मचारी जी से ईश्वरानन्द का बहुधा नमस्ते

संवत् १९४० भा० ब० १३[1]

ईश्वरानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५५] पत्र

३१ अगस्त सन् १८८३ ई०[2]

श्रीयुत स्वामी जी महाराज. जोधपुर. नमस्ते ॥

आप का पोष्टकार्ड भाद्रपद कृष्ण ५ का लिखा मिला.[3] कृत कृत्य

---

१. ३० अगस्त सन् १८८३ ।

२. भाद्रपद कृ० १४ सं० १९४० वि० । यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २२०, २२१ पर छपा है ।

३. ऋ० द० का यह पत्र उपलब्ध नहीं हुआ ।

हुआ. मैंने प्रथम **सारस्वत** पढ़ी थी. पश्चात् लखनऊ में दिन को **सत्य प्रकाश पाठशाला** में पढ़ाता था. और रात को "अष्टाध्याई" एक आर्य्य पुरुष स्वामी गंगेशजी[1] जो निकट ही रहते थे. पढ़ा करता था. परन्तु अब सत्संग छूटने के कारण उक्त पुस्तकें विस्मरण हो गईं. पर लिखने में मुझे इतना अभ्यास है कि "शब्द" चाहे संस्कृत के हों या भाषा के. किसी पुस्तक में देख के लिखूं. चाहे कोई कंठाग्र लिखवावे. जैसा उच्चारण करे ठीक वैसा ही शुद्ध और स्पष्ट लिख सक्ता हूं. "और देवनागरी" में और जो काम हो सो भी उत्तम प्रकार से कर सक्ता हूं, क्योंकि मैं आगरे वा इलाहाबाद में लेथोग्राफ की कापियां छापेखाने में लिखता रहा हूं. और "नार्मल स्कूल जबलपुर" में भी शिक्षा पा चुका हूं इति ॥ आशा है कि उचित आज्ञा शीघ्र मिलेगी ॥

आपका आज्ञाकारी **बालकराम वाजपेई**, आ० म० अजमेर ॥

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५५६] पत्र

समय ½ घंटा[2]

ऐन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ॥ वर्षिष्ठमूतयेभर ॥१॥
नियेन मुष्टिहत्यया नि वृत्रारुणधामहै ॥ ॥ त्वोतासो न्यर्वता ॥२॥
इन्द्रत्वोताम आवयं वज्रं घनादंदीमहि ॥ जयेम संयुधिस्पृधः ॥३॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजावयम् ॥ सासह्याम पृतन्यतः ॥४॥
महाँ इन्द्रः परश्चनु महित्वमस्तु वज्रिणे ॥ द्यौर्नप्रथिना शवः ॥५॥

---

१. स्वामी गङ्गेश जी का स्मरण ऋ० द० ने १८ नवम्बर १८७६ के पूर्ण संख्या ७३ (भाग १. पृष्ठ ९२-९३) तथा २ सितम्बर १८७८ के पूर्णसंख्या २०६ के (भाग १, पृष्ठ २७२) पं० रामाधार वाजपेयी (लखनऊ) को लिखे पत्र में किया है। इन का साधारण परिचय 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ९३. टि० ४ में दिया है। इस टिप्पणी के अन्त (पृष्ठ ९४ पं० १७) में सन् १८७७ के स्थान में सन् १८७८ शोधें।

२. बालकराम वाजपेयी द्वारा लिखित मन्त्र पाठ और अगला कमलनयन शर्मा का पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १७५-१७७ तक छपा है।

समोहेवाय आशंत नरस्तोकस्यसनितौ ॥ विप्रासोवाधियायवः ॥६॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते ॥ उर्वीरापो न काकुदः ॥७॥
एवाह्यस्यसूनृता विरप्शीगोमतीमही ॥ पक्वाशाखानदाशुषे ॥८॥

हस्ताक्षर बालकराम वाजपेई

श्री स्वामी जी म्हराज नमस्ते

उपर यह बालकराम ने वेदभाम देख कर आध घण्टे में लीखा है लेख ईस्का अच्छा है परन्तु संस्क्रीत का बोध नहीं है समाज ने इस्को आठ रुपे मासिक पे नोकर रखाया है ईस कारण बिना समाज की आज्ञा के बालकराम के विश्य में कुछ नहीं लिख सकता था इसी कारण उत्तर मे बिलम्भ हुवा अब समाज में ईस्का निरणे हो गया है

समाज की आज्ञा

यद्यपि बालकराम स्वामी जी के पास बोहत थोड़े दिन ठैरेगा क्यों कि ईसमें पोप लीला और बाजारु चालचलन और सुस्ती अधिक है ईसी कारण समाज भी अप्रसन्न है परन्तु आजकल प० मुन्नालाल के काम छोडने से और प० कमलनयन के नागरी अक्षरों में शीघ्र न लिखने से और दुसरा आदमी न मिलने से ईस को रख रक्षा था इस के जाने से समाज के कार्य्य में हानी तो होगी

परन्तु स्वामी जी के पास बालकराम के जाने से यदी वेदभाष्य में अधिक सहायता मीले तो हम ईस हानी को कुछ नहीं गिनते

अब ईस पे आप बिचार करके बालकराम को बुलालें मुन्नालाल ने कार्य्य क्यों छोड़ दिया इस्के लिखने की मुझ को समाज की आज्ञा नहीं है परन्तु ईतना तो अवश्य लिखता हुं की ऐसा करने से समाज में हानी होती है दुसरा समाचार यह है कि वह ईसाई ओरत जिस्का मेने आप से अजमेर में जीकर कीया था २६ तारीख आगस्त को आर्य्यसमाज में प० भागराम और सरदार भगतसींघ इत्यादि सरेष्ट पुर्षों के सामने जो की उक्त तारीख समाज में रक्षाबन्धन के उत्सव में सुसोभित हुये थे अपने दो बच्चों सहित ईसाई मत्त छोड वेदमत्त स्वीकार कीया ईस पे उक्त सज्जन महाशय बोहत आनन्द हुये अब ईस्का पालन पोषन करना समाज को करतब्य है पढी लिखी कसीदे के काम में अती निपुण है जोधपुर के मंगल समाचार लिखये सब

सभासदों की नमस्त पोहचे ईस ईसत्री का पुरा व्रीतांत दे० हि० न० ५ में लीखा जावेगा

आपका दास
कमलनयन शर्म्मा
मन्त्री आर्य्यसमाज अजमेर
ता: ३१ । ८ । ८३[1]

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५५७] पत्र

॥ श्री ॥[2]

"स्वस्ति श्रीसर्वोपकारणार्थ कारूणिक परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी माहराज के चरणारविन्दों में माहराजाधिराज शाहपुरेश की बारम्बार नमस्तेस्तु अपरञ्च" इन दिनों में आप की षुसी[3] मिजाज का समाचार आया नहीं सो महरवानी करके लिषावसी—यहां क्षत्रिय पाठशाला का उद्योग था वो निसफल हुआ—और यहाँ सब षैरयत है—और जवारजी के विशय में एक पत्र आप के पाश पेशतर भेजा था[4] उस पीछे जवारजी के नोकर होने के विशय में उन से और हम से बात चीत हुई तो उनकी बात चीत से यह साफ पाया गया के ७५) रुपये माहवार की तनषा उनकी बहोत जल्द होने वाली है वो सिरफ मेरी षातिर कम तनषा पर रहते हैं और आपको बषुबी याद होगा कि मेंने सिरफ ५०) रुपये के वादे पर बुलवाया था और ६०) रूपये माहवारकर दिये ताहम ७५) रूपये से कम है इस में उन का १५) रूपये माहवार का सरासर नुक-

---

१. भाद्रपद कृ० १४, सं० १९४० वि० ।

२. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ २५-२६ पर छपा है ।

३. पत्र में सर्वत्र 'ष' को 'ख' पढ़ें ।

४. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ । इस से पूर्व आषाढ़ सुदी १५ सं० १९४० (= २० जुलाई १८८३) का पूर्व पूर्ण संख्या ५०३ (भाग ३, पृष्ठ ५९४) पर जो पत्र छपा है, उसमें इस पत्र-विषयक कोई बात नहीं है । उसमें जवाहरसिंह की प्रशंसा की है ।

सान है इस्से में उनका नुकसान नहीं चाहता इस्से में यह मुनासिब समझता हूं के ५०) रुपया माहवार के हिसाब से यहां रहे उत्ते दिन की तनषा और १००) रूपये आने जाने के षर्च के कुल २५०) रुपय देकर रूषस्त कर दिये जावै ये हाल बतोर वाकफियत के आपको लिखा है मेरे यहां का यह कायदा है कै [जैसे] कहना वैसा ही करना है और दूसरे यह है के जिस के वास्ते मेंने उन को बुलवाया था उस काम के वास्ते वोह कहते है कि इस में लयाकत दीषलाने का मौका कम मिलेगा और यहा का जो एजन्ट साहब है वोह लायक आदमी पसंद न्ही करता और यहां अकसर सरदार भी साहब के पाश पुकारु गये हैं और जवाहरजी के निस्बत मेरी राय यह है के जब माकुल असामी षाली होगी जब मैं बुला लुगां ये भी मुझ से वाकिफ हो गय है और में भी इन से वाकिफ हो गया हूं और यहा लायक काम होय सो लिषावसी मिती भादवा वदि १४ सम्वत् १६३६[1] का तारीष १ सीतम्बर सन् १८८३ ईस्वी[2]

ह० नाहरसिंहस्य

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५५८] पत्र

॥ श्री ॥ परमेश्वर जी सत्यछ ॥[3]

॥ श्री विश्वंतराय नमः ॥

॥ स्वस्ति श्री जोधपुर नग्रे सर्व गुण निधान सर्वोपमालंक्तृत् श्री श्री श्री १०८ श्री श्री श्री दयानंद सरस्वति जी योग्य जालोर से लिषितं[4] ब्राह्मण श्रीमालि आवमति पुष्कर दवे धुडा रांम का प्रणाम

---

१. यह सं० १६४० होना चाहिये। १ सितम्बर को भाद्रपद की अमावास्या थी। सम्भव है उस दिन १४शी का भी योग रहा हो।

२. इस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने भाद्र सुदी ५ गुरुवार (=६ सितम्बर १८८३) को दिया था (द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ६०६, भाग २, पृष्ठ ६२४)। ऋ० द० के लेखानुसार शाहपुराधीश नाहरसिंह ने यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा था।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ ११२-११६ तक छपा है। ४. इस पत्र में भी 'ष' को 'ख' पढ़ें।

नमो नारायण बंचणा अत्रकुशलं तत्रास्तीकुशलं अप्रंच समाचार बाचणा कि आप मरुस्थल देश मे मधैहतपुर श पधारे सो देश पावन किया ओर आप कि कीर्त्ति ईदर बोहोत सुंणे मे आई हे कि सनातन वेद धर्म्म मे वर्त्तते हे ओर पासंड मतां कु बेदन करते हे सो अबी इस बषत मे कलु के बिच मे शंकर स्वामि कैलाश पधारियां पिछे असा कोई महतपुरुश प्रगट्या नहि था ने पाशंड मत बहोत चला हे सो अब हमने तो असे बीचारा के आप सनातन वेद धर्म प्रवृतमान करणे के अर्थे ओर अंधे मनुष्यां कै नेत्र प्रकाश करणे के वास्ते परमेश्वर जी ने आपकु स्रीष्टि मे भेजे हे सो आप जरुर जगत का सुधारा करोगे एशि बशवो ईदर की तरफ आई है परंत्रु अबी बषत ऐसा हे के गउ ब्राह्मणकु बेदन करते हे फेर सनातन धर्म केसे चलेगा फेर गउ ब्राह्मण केसे हे प्रत्यक्ष कामधेन कल्पवृक्ष हे जिण से सर्व स्रिष्टि का भरण पोशण होता हे इसका घृत शे श्रौतस्मार्त्त कर्म होता हे ओर गौउ का पुत्र शे सर्व नाज निपजता हे बृशभ जेशे फेर कोई बलवान् न जानवर हे नही ईस का नाम बलहद। जगत केते हे फेर जीस वृषभ की माता गउ इसो सर्व जगत कुं दुद ग्रीन सर्व तरे का आनंद देवे वो आप तो घाश षावे ओर जगत कुं दुद पिलावे इसी पर उपगारी गउ जीश कु जीश कु बध करणे लगे जीश मे कोई मना करनेवाला समर्थ नहि ओर गउ ब्राह्मण का जोड़ा हे परंत्रु कोई एसे हकेगा की ब्राह्मण ने ब्रह्मत्व पणा छोड दिया जीस से ब्राह्मण का मान्य कप हाये गया परंत्रु गउ ने तो गउ पणा छोडा नहि घाश खाति हे ने दुद देती हे फेर गउ वध किऊं होति हे हम ने गउ ब्राह्मण का अधीकार लीखा सो एशा नहि के एहिज धर्म्म सबाहे परंत्रु एशे जानते हे के वेद शबहि वेद के सूत्र। स्मृतियां मे पंडित कहते हे के श्रौत्रस्मार्त अग्निहोत्रादिक कर्म्म कहा हे तिण शे गउ ब्राह्म कि कथा आप कु लिषी है सो गेलि गुगि लिखि होय तो गुना माफ करणा सत्य असत्य कि आप जानो सो षरि हे सतगुरु मिले तो संशे मिटे

१ प्रश्न: १ ओर आपकु प्रश्न पुछते हे सो आप संदे मिटाणा हमारा। कोई एसा कहते हे के वद मे पशु वध करणा कहा है परंतु हमारे मांनणे मे आई नहि तब उसने कहा के वेद प्रमाण हे

वेद प्रमाण देते हे ईश मंत्र शे होता यक्षदग्नि ॐ स्विष्टकृतम याडग्निरश्विनोश्छागस्य हविष प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य

हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाऽग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड्वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड्वनस्पतेः प्रिया पाथाँस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषताँ हविर्होतर्यज ॥ इश मंत्र से प्रमाण देते हे.

२ प्रश्न २ ओर वेद मे अहंब्रह्मास्मि। लिषते हे ओर कोई ना बोलते हे अहं ब्रह्मास्मि ये वात किलाप हे ओर वेद मे लीषते हे हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापि हितम्मुखम्। योसावादित्ये पुरुषः सोमावहम सोसावहम २ ऊँम् खंब्रह्म प्रथम तो कहा के सो सावहम् परब कहारक खंब्रह्म सो ये वात केसे हे। ओर ईश मंत्र मे हिरण्ययेन पात्रेण हे के हिरण्मये न पात्रेण हे तिश का प्रत्युतरः

३ प्रश्न ३ ओर वेद मे श्रौतस्मार्त्त कर्म्म करणा कहते हे फेर कोई कर्म्मं कि नास्तिक कहते हे सो अब आप महत् पुरुषो के पास विणती भेजी हे सो निरधार कर पिछा प्रत्युत्तर भेजणा ओ आप कबीर से विचारो के उदर देखई प्रश्न का उत्तर लिया चाहाते हे आप तो ज्ञानी हो सो एसा कबि विचारो नह। परंतु हम तुछ बुद्धी वाले हे सो डीरते हे ओर हमारा प्रणाम तो एसे रहता हे के माराज के पाश उरुबरु जाय के माराज के श्री मुष के बचन सुणे ओर असे पुरुषां के चरणारवंद मे रहे मन तो एसे रहता हे परंतु माया के पास मे बंधे हे सो आणेकु फुरसत नही कारण के गरीब आदमि हे भिक्षा मांग के गुजर चलाते हे परंतु आपकु जोधपूर मे पधारे सुणे जीस दिन से आप के दरसण की अभिलाषा लग रहि हे

फर कबि आप एसे बिचारो के ये मूर्ष ने क्या गडबड रासा भेज दिया हे सो हम कुछु पंडित हे नही ओर बुद्धीमान बि हे नहि जेसी जगत मे विष्यात वार्ता सुणणे मे आई तेसी अरजी आपकु भेजा है सो अक्षर आगा पाछा के ज्यादा कमति लिषण मे आया होय तो गुना माफ करणा ओर आप वडे हो जेसी बडि विचार के प्रश्ना का प्रत्युत्तर भेजणा

ओर हमारा मन ईहा तों एसे रता हे के आप के पाश वेद पडे ओर गुरु की बंदकी करे परंतु भरण पोशण का कोई तरफ से उपाय

लगावो तो आप के पास चले आवे वेद पढाणाये उपगार का कांम हे इति

। आप कीरपा करकै पत्र भेजो[1] तव गांम जालोर मध्ये शीरो माली ब्राह्मण धुडाराम पोकरदास के पास पोछे ठीकीणा ब्रह्मपुरी मे

। धुडारांम की उमर बरश २५ की

। पुसकर की उमर बरश २५ की

॥ संवत् १९४० रा मिति भाद्रपद सुद १ ये[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५५९] पत्र

श्री ५ स्वामी जी नमस्ते[3]

(हिरण्यवर्णां हरिणी) यह श्रीसूक्त वेदानुकूल है वा प्रतिकूल, इस के कितने वार पढ़ने कितनी आहुति देने से लक्ष्मी प्राप्त होती है कृपा कर के इस का उत्तर प्रसाद कीजिये सार्थ शुद्ध पाठ की १५ ऋचा कहां प्राप्त होंगी ।[4]

३ । ९ । ८३[5]

पण्डित **रमादत्त** तृपाठी
मिशन स्कूल, नेनीताल ।

—:o:—

१. इस पत्र का ऋ० द० ने उत्तर दिया अथवा नहीं, यह ज्ञात नहीं है। हमें उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। यदि इस पत्र का उत्तर प्राप्त हो जाता तो अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो जाते। २. २ सितम्बर सन् १८८३ ।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३८१ पर छपा है।

४. इस पत्र का ऋ० द० लिखित उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। 'हिरण्यवर्णां हरिणीं' प्रतीक का श्रीसूक्त अथवा लक्ष्मीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट के अन्तर्गत है। यह सूक्त १५ ऋचाओं का है। पं०.सातवलेकर मुद्रित स्थूलाक्षर संस्क० २ के अन्त में छपे परिशिष्टों में इस सूक्त मे १५ ऋचाओं के आगे कुछ श्लोक और छपे मिलते हैं। वे अप्रामाणिक हैं। ऋ० द० ने स० १९३१ (२) में प्रकाशित 'सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधि' के अन्त में इस लक्ष्मी सूक्त की संस्कृत में व्याख्या छपवाई थी। द्र०— दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट सं०) पृष्ठ ३५८—३६४।

५. भाद्रपद शु० २, सं० १९४० वि०।

[पूर्ण संख्या ५६०]	पत्र

[1]ओं श्रीसर्वोपकारक कारुणिक श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामीनां दास ज्वाहरसिंहस्य वारम्वार नमस्तेस्तु ।। अपरञ्च ।। यहां आप की कृपा से आनन्द मङ्गल है और सर्व शक्तिमान जगदीश्वर से नितान्त प्रार्थना है कि वह आप के शरीर को सर्वोपकारार्थ सदा नीरोग रखें ।।१।। बड़ा समाचार यहां का येह है कि अब दास यहां से चलने को उपस्थित हूआ है !!! यह समाचार कारण जाने बिना यदि मेरे पूर्व पत्र गत समाचारों के संग मिलाया जावे तो इस में केवल अविचार ही समझा जायगा। और आप को निश्चय होने की सम्भावना भी रहेगी कि मैंने यहां न रहने में जलदी की है और समाज तथा आप की इच्छा के प्रतिकूल आचरण कीया है वा उनके कहने को कम सुना है और असा जानणा कुछ असङ्गत भी प्रतीत नहीं होगा किउं कि इस से पूर्व यहां रहने में मासिक न्यूनतादि की शङ्का [जो पीछे निरमूल सिद्धि की गई थी] आप से में कर चुका हूं ।। और अब भी श्री शाहपुरेश ने अपने अंतयम पत्र में मुझे सीख देने का यही मुख हेतू बताया है तथा यह ज्ञान से कि मेरी सरकारी छुट्टी में भी थोड़ा सम्य बाकी रहा था उर्द लिखित निश्चय को दृढ़ता होती है कि मैंने अविचार पूर्वक यहां से रुखसत मांगी है परन्तु मैं निमृता पूवक वेनती करता हूं कि आप असा विचार न करें ।।२।। मैं आप को निश्चय दिलाता हूं कि जोधपुर से शिक्षक पत्र[2] आने के पश्चात् मैंने मासिक वानिक का समूल ही विचार छोड़ दिया था और दृढ़ता से रहने का विचार कर लिया था !!! इस लेख से मुझे निश्चय है कि अब आप को यह जानणे की आकांक्षा हो गई होंगी कि फिर चले जान का ठीक कारण क्या है ? इस का उत्तर संक्षेप से तो यह है कि मेरे चले जाने का मुख्य कारण वह है जिसको श्री शाह-

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १५२-१५७ तक छपा है।

२. ऋ० द० का यह पत्र हमें नहीं मिला। ऋ० द० ने भादवा सुदि ५ सं० १६४० (६ सितम्बर १८८३) को पूर्ण संख्या ६०६ (भाग २, पृष्ठ ६२३) का जो पत्र लिखा था, उसमें जवाहरसिंह को कई पत्र लिखने का निर्देश है।

पुरेश स्वपत्र में दूसरा कह कर लिखते हैं ।। असल यह हुई है कि ऐजिण्ट साहिब के यहां आने से १५ दिन पहले नाथोसिंह आदिक जागीरदारों ने देवली में साहिब को रियासत के विरुद्ध कई बातें लिखी उनमें एक था कि मोहनक्रिष्ण का भेजा हूआ ज्वाहरसिंह आया है और कामदारी करेगा ! जब साहिब यहां आये तो ८ दिन रहे मुझको श्री शाहपुरेश ने उनसे नहीं मिलने दिया ।। उनसे मेरा मिलना इस हेतू से बंद किया गया कि यदि विशेष सरदारों की रीति से मुलाकात हो गई तो साहिब ऐजिण्ट को नाथोसिंह की शिकायत सारी सच्ची परतीत हो जायगी, याते मिलना बंद रहा इस विवहार से मेरी कमर टूट गई कि कब तक छिपा रहूंगा ।।३।। ऐक दिन साहिब ने आप शाहपुरेश से पूछा कि जवाहरसिंह कौन है और किस काम के वासते बुलाया है ? अब यह समय था कि कि जो कुछ कहा जाता मैं उसको पूर्ण रूप से अपने ऊपर बरतने योग्य निश्चय करता. सो श्री शाहपुरेश ने उस समय येह जान कर कि प्राईवेट सैक्रट्री कहने से नाथोसिंह का कहना सत्य वा सत्य के निकट निकट हो जायगा, तथा यह भी कि अैसा कहने से कोई बात न निकल आवे साहिब को उत्तर दिया कि हमने जुवाहर सिंह को क्षात्र पाठशाला के वासते बुलाया है, रियासत के काम से उसका कोई वासता नहीं है !!! जब यह समाचार राजाधिराज की जुबानी मुझ पर खुला तो मेरी रही सही कमर टूट गई ! और निश्चय हूआ कि किसी प्रकार का शुभ काम अब नहीं हो सकेगा ।।४।। यद्यपि इस विवहार से मुझ को बहुत खेद हूआ तथापि कहने की हिमत न की, परन्तु इस पर और भी दुख होने लगा कि साहिब चले जाने के पीछे मेम ने जो २ मास की रियासत से छुट्टी ली उसका पड़ाने का काम मेरे हवाले हुआ ।।

सो यहां तक तो कुछ तकलीफ न थी परन्तू ढीकोला जब राजकुमार जाने लगे तो मुझे भी ऐक (अध्यापक) मुअलम की हैसीयत समझ साथ भेजा और बाकी के पड़ने वाले लड़के भी साथ कर दिये कि सफर में भी उनको मैं पड़ाऊं ।। सोचने की बात है, कि अध्यापक व प्राईवेट सैक्रटी के क्या क्या काम हैं ।। जब आदमी का दिल किसी कारण से उटकता है तो फिर जरा जरा सी बातों में भी नुकस दिखाई देते हैं; मदरस्से के काम में लगने से दरबार की समीपता में फरक आया, और छोरों की संङ्गत प्रापत हूई ।।५।।

।। साहिब आने से पहले तो हजूर इस प्रकार की मुझ से बात करते थे कि साहिब आजाने के पीछे हम तुम्हारा राय भी लिया करेंगे और कोई काम भी देंगे; इससे मैंने ९ रोज साहिब के चले जाने के पीछे श्री शाहपुरेश से अरज की (यह अरज दिल की असल तस्वीर उतारने वाली न थी क्युंकि मैं आपको निश्चय दिलाता हूं, कि में तकलीफ अपनी को कम कहा करता हूं) दिल में तो यह था कि नाम मात्र के प्राईवेट सेक्रटी रहना अच्छा नहीं लहोर में रहकर तो सामाजिक उनन्ती भी करते थे यहां समय व्यर्थ जाता है ।। द्वितीय वह मान जिसका पूर्व पत्रों में व्याख्यान हो चुका था, देखने में न आया अर साहिब वाली कारवाई से भी दिल टूटा था यांते रुखसत मांगने को दिल ने चाहा परन्तु आपका उपदेश भूला न था इससे रुखसत भी मांग न सकता था और दिल शिकसतगी भी प्रगट नहीं करनी चाहता था, यांते मैंने गोल मोल अक्षरों में अरज की कि मुझे कोई काम करने को मिल जावे क्युंकि बिना काम मासिक लेना मैं आतमा से शरमिंदा होता हूं ।। और साथ यह भी अरज की कि आप ऐजिंट साहिब को असे कह चुके हैं [इस से मुझ को कोइी काम भी आप नहीं दे सकेंगे] तो फरमाने लगे कि सोचकर जबाब देंगे सो १० दिन पीछे वह पत्र मेरे पास भेज दिया जो परसों[1] आप के पास भेजा गया है और जिस में मुख हेतू मेरा मासिक रखा है, और जागीरदारों का पंच गवन ।। और जिसमें लिखा है कि जवाहरसिंह की लियाकत के मुकाबले का मासिक अबी नहीं दिया जा सकता ।।६।।

।। मैं निश्चय करता हू कि मैंने संक्षेप से अपना असली हाल कह दिया है इससे सिद्ध होता है कि मैंने आप सीख[2] नहीं मांगी बरन मेरी अरज के उत्तर में मुझ को रुखसत मिल गई !!७।। इस सफर में मेरा ३००)खरच आया और जाती दफे २५०)मिलेंगे. १००)सफर खरच और तीन महीने की तनखाह ५०) के हिसाब से १५०) ।।८।।

।। बैसाख सुदी ९ मंगलवार मुताबिक १५ मई सं १८८३ को रियासत की चिठी अनुसार नौकर हुआ था. १५ दिन तय्यारी में लग गये थे ५ दिन सफर में, ६ जून को यहाँ पहुचा था जिस तारीख से जो कुछ मिलना होगा असतू कह कर ले लूंगा ।।९।।

---

१. यह वही पत्र है, जिसे हमने इसी भाग में पूर्व पूर्ण संख्या ५५७, पृष्ठ ६६८ पर छापा है। २. अर्थात् बिदाई=वापस जाने की अनुमति।

।। इस सफर में बड़ा लाभ यह हूया कि श्री शाहपुरेश को बहुत प्रसन्न रखा, और हमेशा के वासते मुलाकात रही ।। द्वीतीय बंदूक चलानी अच्छी सीखली तीसरे अमनचैन से सुरुखरोई हासल हुई, और आप के पास राजाधिराज के भी मेरी प्रशंसा में लेख पहुंच ।।१०।। मेरे निश्चय में दो बातें है ।। ऐक तो येह कि यदि मेरे आने तक आप यही आजमान रहते तो सब काम ठीक हो जाते द्वितीय यदि हजूर से उस वकत साहिब को ठीक उत्तर दिया जाता तो भी ठीक था पर अब खैर ?? किया है ।।

यदिपी मैं यहां से कुछ तो हरष से और कुछ शोक से जाता हूं तथापि ऐक बहुत बड़ा शोक जो मुझे है और कुछ काल तक रहेगा भी, वह यह है कि मैं इतनी दूर आकर भी आप के दर्शन न कर सका ।। इस से मैं अपने को बहुत अभाग्य समझता हूं ।।१२।। आज से मैं १२ रोज तक रहूंगा असा मैं ख्याल करता हूं] और आप का उत्तर इस विष्य में यदि मुझ को प्राप्त होगा तो मेरे अहो भाग्य होंगे आज कल यहां अछी बारश हो रही है आश्य है कि जोधपुर मे भी होगी

भाद सुदी २ सोमवार[1] | ह० आपका दास

शाहपुरा | ज्वाहर सिंह

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६१] पत्र

आर्य्यसमाज अजमेर[2]

नं० ५२६ ता: ६–६–८३[3]

श्रीयुत स्वामी जी महाराज.

नमस्ते.

आपका आनन्द पत्र आया[4] समाचार विदित हो अत्यानन्द हुआ. १–पंडित मुन्नालाल को आपका पत्र दिखाया गया लिखना व न

१. सं० १९४० = ३ सितम्बर १८८३।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १७७-१८० तक छपा है। ३. भाद्रपद शु० ५ सं० १९४० वि०।

४. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

लिखना उत्तर का उनकी मर्जी पर निर्भर है.

२—बालकराम बाजपेई को भी पत्र दिखा दिया.

३—इस स्त्री के विषय में जो आपने पूछा है उनका उत्तर यह है.

१—यह ईसाई की लड़की नहीं थी. आठ मास से ईसाई हुई थी.

२—इसका जन्म बम्बई का है प्रभू अर्थात् कायस्थ जाति की है-

३—इसकी अवस्था २२ वर्ष की है इसके बड़े लड़के की अवस्था ८ वर्ष की छोटे की ६ वर्ष की.

४—दोनों लड़के हैं.

५—इसका चालचलन जहां तक हमने देखा है कोई दोष दृष्टि नहीं पड़ता. दूसरे विवाह की भी इसकी इच्छा नहीं है क्योंकि वो कहती है कि यदि मुझ को दूसरा विवाह करना होता तो मैं ईसाई मत में बिना रोक टोक के कर सक्ती थी, इस स्त्री पर यह आपत्काल का समय है दो वर्ष हुये कि इसके पति की मृत्यु होगई है इसका पति अजमेर में १००) मासिक पर नौकर था. अपनी गुजरान अच्छी तरह से करते थे. परन्तु यही मेम लोग जो घर घर पढ़ाती फिरती हैं इनके घर भी जाया करती थी इनके सत्सङ्ग से पति के मृत्यु के पश्चात्. ईसाइयों ने बहका कर इसको इसके लड़कों समेत ईसाई कर लिया था। अब आर्य्यसमाज के उपदेश से वह मत छोड़ दिया ईसाई औरतों में यह उपदेश किया करती थी आशा है कि यदि इसको सत्यार्थ-प्रकाश और अन्य आर्य ग्रन्थों का अवलोकन कराया जावे तो अच्छी उपदेशिका होजा वेगी—

इस स्त्री के वेद मत स्वीकार करने से यहां के ईसाइयों में बड़ी हलचल मच रही है. और परस्पर ईसाई मत में उन्हीं को शङ्का उत्पन्न होने लगी. आशा है कि वर्ष दिन के भीतर और भी कितनेक ईसाई. मनुष्य और स्त्रियें वेद मत को स्वीकार करेंगे. परन्तु यह पहला नमूना है यदि अच्छा बन गया और इसकी सुदशा और मान्य दूसरे ईसाई लोग जब देखेंगे तो शीघ्र ही वेदमत को स्वीकार करेंगे.

पंडित दामोदर शास्त्री अपनी पहली जगह पर नौकर होगये. पन्नालाल का कुछ हाल मालूम नहीं.

पं० भागराम जी तथा सरदार भगतसिंह जी को आपका पत्र दिखाया. उन्होंने बड़ा आनन्द माना और सरदार भगतसिंह जी ने

कहा कि मेरी ओर से स्वामी जी को लिखदें कि जब आप जोधपुर से गमन करें तो अजमेर होकर जावें. जिस्से हम को भी दर्शन हो जांय–

वर्षा यहां भी प्रतिदिन होती है. पं० मुन्नालाल जी आपको लिखें वह हम पर भी प्रघट होना चाहिये.

सब सभासदों की ओर से वहुत बहुत करके नमस्ते पहुचै, स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी ने भी एक आर्य्यसमाज शिकारपुर पंजाब में स्थापित किया. किमधिकम्,

मिती भादवा सुदी ५ संवत् १९४०[1]

आपका दास

कमलनयन शर्म्मा

मंत्री आर्य्यसमाज अजमेर

[पूर्ण संख्या ५६२] पत्र

श्री[2]

स्वामी जी माहाराज्यो श्री दयानंद सरस्वती जी की सेवा मे।

॥ अपंरच ॥ पत्र आपका भाद्रपद वि द ९ का लिखा आयो[3] पढ कै अती आनंद हुवा मेरे नेत्र बाये मै पहली बार अपरेशन नहि हुवा था जीस कारण सं फेर दरद उठ आयो जीसं मैं भाद्रपद कृष्ण ११ के दिवस ईहां पर आण कै फेर अपरेशन करवायो है डाकत्तर साहेब ने ईलाज सै वा आप की अनुगृह से अबै नेत्र मै आराम हैं ओर होता जाता है अब मेरा ईरादा ईहा सं दो च्योर दिवस मैं चित्तोड़ की तरफ जाने का है ओर आपने गोरक्ष का वीसय मे लिखा सो ईहा पर माहाराज्ये हुलकर सै कहा तो ईन्न तो येह कहा है कि हम स्वामी जी माहाराज्ये आवैगे तब कर दैगे ओर ज्यो सब जगह हम उद्यग करते ही है १९४० भाद्रपद सुल्का ६ ता० ७ सीतंब्र [१८८३]

ह० श्यामलदास मु: ईन्दोर कोठी राजा रतलाम छावणी में[4]

---

१. ६ सितम्बर १८८३।

२. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग २, पृष्ठ ८८ पर छपा है।

३. यह पत्र हमें नहीं मिला।

४. इसे इस प्रकार पढ़ें—'इन्दोर, कोठी राजा रतलाम, छावणी में' (इन्दौर छावनी में)

[पूर्ण संख्या ५६३] पत्र

॥ ओं ॥[1]

अजमेर ७ सितम्बर सन् १८८३[2]

श्रीयुत शकल गुणालंकृत श्री स्वामीजी महाराज नमस्ते—

आप के कृपा पत्र[3] को अवलोकन करने से बड़ा आनंद प्राप्त हूआ आपने जो कृपा करकें दास से मंत्रीत्व का पद त्याग करने के विषय में प्रश्न कीया है वास्तव में मेरे लीये अतीव लाभदायक हूआ कि जिस्के कारण मुझको आपकी सेवा में अपने दुःख की व्यवस्था निवेदन करने का समय हस्तगत हूआ इसलिये में ईश्वर सर्व शक्तिमान न्यायकारी को मध्यस्थ मान आपकी सेवा में सत्य सत्य निवेदन करता हूं यदि इस में तनिक भी असत्य लिखू तो ईश्वर मुझ को अवश्य दण्ड दे और आप के सन्मुख भी दोषी ठहरूं—

स्वामीजी महाराज ! यह वृतांत इस प्रकार से है जिस समय आप द्वतीय समय अजमेर में सुशोभित हुये थे पं० सुकदेवप्रशाद को मंत्रीनियत कर मुझ को उपमंत्री स्थापित कीया था परंतु पं० सुकदेवप्रशाद ने जब मंत्री की पदवी छोड़ी तो समाज ने मुझ को मंत्री नियत कीया इसके उपरान्त में बराबर अपने नियमानुसार अथाशक्य समाज का कार्य्य वड़े उत्साह से करता रहा अब इसी उत्साह में मेंने विचार कीया कि इस समाज से एक पत्र [माषिक] निकला करे जिस्से इस समाज की उन्नति और समाचारादि पत्र आया करे और जो कुछ पत्र से धन का लाभ होय वह समाजोन्नति में व्यय होय मेने एसा विचार ठान इस विषय को अंतरंग समाज में निवेदन कीया परंतु समाज कोष में इतना धन नहीं था कि एक माषिक पत्र निकाल सकें परंतु मुन्शी पदमचंद जी वा पं० कमलनयन जी की भी यही अभिलाषा थी की अपने यहां से माषिकपत्र निकले तो बहुत अच्छी बात होय, तब मेंने कहा कि जो होय में पत्र निकालुंगा तिस्पर अंतरंग सभा ने अंत को वादानुवाद होते यह नियम ठहराया कि अच्छा तुम पत्र निकालो इसके लाभ हानि के तुम्ही मालक हो—में ने इस बात

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १८०—१८१ तक छपा है। २. भाद्र शु० ६ सं० १९४० वि०।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

को स्वीकार कर अपने जी में यह कहा कि कुछ चिन्ता नहीं लाभ समाज को और हानि में दुंगा [इस बात को मेंने केवल दो एक सभासदों पर प्रकट भी कर दीया था और वे इसके साक्षी भी हैं] तब मेंने देशहितैषी का आरंभ कर दीया और आप की कृपा से बड़े आनंद से चलता रहा—परन्तु आप जानते है कि यह देश ईर्षा से ही नष्ट हुआ है, जो दस मास तक देशहितैषी में बड़े उत्साह से चलाता रहा परंतु समाज के सभासदों ने एक ने भी आकर मुझ को अणुमात्र भी सहायता इतनी भी नहीं दी कि देशहितैषी के ग्राहकों के नाम तक लिख दें [हां पं० कमलनयन जी ने दो एक विषय मुझको छपने को दिये थे] में ही केवल विषय बनाता ग्राहकों को उत्तर देता देशहितैषी को छपवाने भेजता जब छप कर आ जाता था तब मे ही उनको प्रत्येक ग्राहक के पास भेजने को उन पर कागज चढ़ाता उनके ऊपर नाम लिखता रिजष्टर करता इत्यादि सर्व काम में ही करता अणुमात्र भी किसी से सहायता नहीं ली थी [हां मेरी स्त्री मुझको वास्तव में बहुत दे० हि० के काम में सहायता देती थी जिस्के कारण में किसी की सहायता लेने की परवा नहीं करता था] इसी प्रकार से बड़े आनंद से कार्य्य चलता रहा और समाज का अन्य काम भी करता रहा, इसी अवसर में **पाड़े श्यामसुन्दर** मेरठ समाज के उत्सव में मेरठ गये और वहां पर यह वार्ता हुयी कि [श्यामसुन्दरा के कथनानुसार] जो पत्र समाज की ओर से निकलते हैं परन्तु कोई मनुष्य ही उसका मालिक है सो एसा करना उचित नहीं वह पत्र समाज का होना चाहिये और समाज ही उसके लाभ हानि का मालिक रहै] इत्यादि बातें जब श्यामसुन्दर मेरठ से लोट कर यहाँ आये तब उन्होंने मुझ को छोड़ दो एक और सभासदों से इस बात को कहा जब उन लोगों ने इस बात को स्विकार कीया कि एसा ही होना चाहिये, तब एक दिन प्रथम अंतरंग सभा होने के श्यामसुन्दर ने मुझ से कहा कि समाज दे० हि० को अपना करना चाहती है, मैंने इस बात के सुनते ही उसी समय कहा कि हां ! बडी अच्छी बात है यदि मेरठ समाज ने इस बात को नियत करना चाहा है तो में कभी नकार न करूंगा, अंत को दूसरे दिन अंतरंग सभा हुई और मुझ से पुछा गया कि समाज दे० हि० को अपना करना चाहता है तुम इस पत्र का समाज ही को दे दो मैंने कहा कि बहुत अच्छी बात है और में इस बात से

बड़ा खुश हूं कि अब समाज का पत्र होने से मुझ को सहायता भी मिलेगी, बस स्वामी जी महाराज ! जब से यह पत्र समाज का हुआ —और जितना धन मेरे पास देश हितैषी के मध्ये का था कोषाध्यक्ष को सोंपा, और में उसी उत्साह से अपना कार्य करता रहा —

(२) अब इसी अवसर में पांडे श्यामसुन्दर ने पं० कमलनयन जी और मुंशी पदमचंदादिजी को यह विपरीति बुद्धि सुझायी कि मुन्नालाल के पास जो डांक रोज आती है सो उसके पास न जाया करे दूसरी जगह आया करे और चार सभासदों के बीच खुला करे जब मुन्नालाल के पास डांक भेज दी जाय, क्योंकि एसा न होय कि मुन्नालाल कही कोई किताब वा मनीआर्डर चुराले, अंत को एक दिन यह हूआ कि अकस्मात न तो मुझको सूचना कि कि आज से तुम्हारे पास डांक न आया करेगी बस आपस में बात कर डांक अपने पास मंगवाली और मैं बांट ही देखता रहा कि डांक अब तक नहीं आई, परंतु उस दिन एसा हूआ कि मुन्शी पदमचंद जी ने जो डांक घर उस आदमी को भेजा दैव योग से वह डांक घर में पहुंचा और डांकिया कुछ देर पीछे मेरे पास डांक लाया और डांकिये के पीछे पीछे मुं० पदमचंद जी का नोकर भी आया और मुझ से कहने लगा कि डांक तुम मत लो मुं० पदमचन्द जी ने कहा है तब मेंने यह जाना कि मुं० पदमचन्द जी ने इस चपड़ासी से न जाने क्या कहा है यह समझा नहीं है तब मेंने मुं० पदमचन्दजी के चपड़ासी से कह दीया कि अच्छा जाओ मु० प० चं० जी से फिर पूछ कर आओ—यह चपड़ासी गया ही था कि पं० कमलनयन और पं० श्यामसुन्दर आये और मुझ से [एक प्रकार से] कहने लगे कि अब से तुम्हारे पास डांक न आया करेगी और दो वा चार सभासदों के बीच में खुला करेगी, मेंने कहा क्यों ? यह प्रबंध कब हूआ और क्यों हूआ ? इसका क्या कारण है ? तो कहने लगे कि समाज की मरजी, यह तो अच्छी बात है तब मेंने कहा कि विना कारण के कोई कार्य नहीं होता क्या समाज में मेरी कोई चोरी पकड़ी वा मेंने डांक में से कुछ चुराया यदि एसा है तो आप उसका प्रमाण दें अन्यथा एसा प्रबंध करना मानो मुझ को चोर बनाना है तब पं० कमलनयन जी ने कहा कि तुम एसा आग्रह क्यों करते हो समाज की

यही इच्छा है जब मैंने यह सुना तो बस आप सत्य जानिये कि मेरी आंखों में आश्रुपात भर आये और मुझ से उस समय इन दोनों पुरुषों से कुछ कहते न बना, जब वे अपने घर को चले गये तब मुझको इतना खेद हुआ कि लेखनी द्वारा आपके सन्मुख प्रकट करना असम्भव है—केवल थोड़ी देर के रोने के और कुछ न बना और अपने को धृकारा कि जब इन लोगों को मेरा इतना भरोसा नहीं है तब इस समाज का मंत्री होना मानो प्रतिष्ठा का एक दिन खोना है इत्यादि पाश्चात्ताप कर मेंने अपने जी को ढाढ़स बंधाया—और डांक पं० कमलनयन जी के घर पर जाने लगी, जब वे देखलें तब मेरे पास भेज दें कहां तो में प्रातःकाल उठा कि नित्य नियम कर देशहितैषी के काम में प्रवृत्त हो जाता कि इतने में डांक आती उसको देख जो कुछ होता ठीक ठाक कर देता था फिर इतने में दफतर का समय आ जाता और दफतर चला जाता था अब जब डांक मेरे पास न आने लगी और मेरे ऊपर काम बढ़ने लगा कि जो काम में आज कर लेता था दूसरे दिन होने लगा तब मुझ को वहुत भारी काम होने लगा उधर निर उत्साह ने घेरा अब काम कैसे होय फिर भी लष्टम पष्टम् करता चला गया—

अब तीसरी उपाधि यह उठाई [जब देखा कि मुन्नालाल डांक में से तो कुछ नहीं ले सक्ता] कि तुम आरम्भ से देश हितैषी की आमद और खरचा का हिसाब दो मेंने वह भी स्वीकार कीया [परंतु समाज को आरंभ से हिसाब लेने की कुछ आवश्यक्ता नहीं थी जब से दे० हि० लीया था तभी से हिसाब मांगना उचित था] और आरम्भ से सब स्पष्ट स्पष्ट हिसाब दे दीया ईश्वर की कृपा से एक कोड़ी की भी भूल न रही और न निकली परन्तु स्वामी जी महाराज ! इसऽ-स्थान पर मुझ को बड़ी हंसी आई, कारण यह सब उपाधि श्यामसुन्दर ने उठाई थी जब मेंने ठीक ठीक हिसाब दे दीया [तब श्यामसुन्दर ने जो पं० कमलनयन जी वा मुं० पदमचंद जी आदि को मेरी ओर से वहकाया था] पं० कमलनयन जी ने श्यामसुन्दर से कहा कि तुम तो कहते थे कि मुन्नालाल ने कुछ दे० हि० की आमद में से जरूर खाया है जिस्से इतनी महनत करता है सो उसका हिसाब भी ठीक है अब तुम उसके हिसाब में क्यों नहीं भूल निकालते तब श्यामसुन्दर ने कहा कि हम भूल क्या निकालें उसने हिसाब ही एसा दीया है कि

हम उसको नही पकड़ सक्ते पं० क० नै० जी ने कहा कि वही बात बताओ तब श्या० सु० कहने लगे कि जो टिकट चिठ्ठीओं में उठ हैं उनका ठीक टीक हिसाव नही है कि क्या जाने उसने चिट्ठी नही भेजी होंय और टिकट लिखदीये होंय इसमें उसने खाया होय तो कोन जाने—

जब में पं० कमलनयन जी से दूसरे दिन मिला तब ईश्वर की कृपा से वातों ही वातों में उनके मुख से यह वात निकल आई तव पं० क० न० जी से मेंने कहा कि पाडे श्याम सुन्दर का यह कहना भी जो आपने सत्य माना और मेने टिकटों ही द्वारा दाम खाकर अपना ईमान विगाड़ा है तो रिजष्टर में चिट्ठी गिन कर हिसाव लगा लो द्वतिय यह भी न हो सके तो अब जो हमने तीन माष में टिकट उठाये है उनके हिसाव से वर्ष भर का हिसाव लगा लो अंत को इसका कुछ भी उत्तर न दे सके और चुपके होगये—

अब वर्तमान वृतांत सुनिये कहां तो यह प्रवंध था कि मुन्नालाल सम्पादक है उस्के पास डांक न जाय अन्यऽस्थान में खुला करे, सो जव से पं० कमलनयन जी मंत्री और सम्पादक नियत हुये है तव से सीधी डांक पं० क० न० जी के पास आती है और वे वरावर डांक खोल लेते है अब कोई भी कुछ नही कहता एक दिन मैंने यह कहा कि तुमने विना किसी को आये डांक क्यों खोली तो कहने लगे कि अखवार खोले है और यह कार्ड धरे हैं—तव मेंने कहा कि क्या अखवार डांक में गिनती नही होते ! तव झुंझलाके चुपके हो गये और मेरे पर नाराज हूये—शारांस यह है कि जो मेरे लीये प्रवंध कीये थे वे पं० क० न० जी के लीये नही वर्ते जाते—

विशेष क्या निवेदन करूं जैसा इन लोगों ने मेरे साथ वर्ताव कीया और मुझ को खेद पहुंचाया ईश्वर इस्का साक्षी और देखने वाला है यदि मुझ को देशहितैषी में से अपना निज के लाभ उठाने का लोभ होता तो में दे० हि० को समाज को क्यों देता—और उसी समय ४०) रुपये जो मेरे पास दे० हि० के जमा थे क्यों एकवार के कहने से दे दैता, स्वामीजी महाराज वड़े खेद की वात है कि आज आपके सन्मुख मुझ को अपने आप यह वात कहनी पड़ी “कि में कुछ एसे गरीव पुरुष का पुत्र वा एसे कुल का नही हूं कि रुपये के लोभ में फसूं ईश्वर की कृपा से मेरे घर में सव कुछ है मेरे माता पिता सव

प्रकार से भरे पूरे हैं, यदि मेरी बालावस्था और आज तक की ईमानदारी और मेरे चालचलन के विषय में कोई जानना चाहै तो [मुन्शी जमना दास पत्थर वाले जो कि गोकलपुरा आगरे में रहते और विलायत तक जिनका नाम विख्यात है] उनसे पूछ देखें—

स्वामीजी महाराज ! फिर जिस्पर आपकी सिक्षा का होना यह कोई सामान्य बात नही है—ईश्वर से में वारंवार यही प्रार्थना करता हूं कि जिस प्रकार से मेरी दृढ़ भक्ति आपके चरण कमलों में है इसी प्रकार से सदैव वृद्धि को प्राप्त होती रहै और जो आपकी सिक्षा ज्ञान मेरे हृदय में स्थिति है वे मरण पर्य्यंत मेरे हृदय से नही निकल सक्ते, बस और आपके सन्मुख क्या निवेदन करूं।

पूर्वोक्त विषय को पढ़ कर आप ही न्याय कर लीजिये कि में किस प्रकार से इस समाज के मंत्रीत्व के गृहण करने के योग्य हो सकता हूं इसलिये में आपसे क्षमा मांगता हूं एसे मंत्री से में केवल साधारण सभासद ही अच्छा रहूंगा—

परंतु मुझ को खेद यही है कि पं० कमलनयनजी १० नियमों में से एक का भी पूरा वर्ताव नही करते, हमारे प्रधान मुन्शी पदमचंद जी का यह हाल है कि जैसा जिसने जिस किसके विषय में जा सुनाया झूठ मानलीया उस्पर प्रधान की तरह कुछ भी विचार नहीं करते श्यामसुन्दर पांडे के विषय में आप पं० कमलनयन जी से ही पूछलें कि यह पुरुष स्वप्रयोजन सिद्ध करने और आपस में विरोध डालने में कैसा चतुर है—जब तक इन बातों का प्रबंध न कीया जाय समाज की वृद्धि होना दुर्लभ है।

आपका सेवक
मुन्नालाल पूर्व मंत्री
आर्य्यसमाज अजमेर

न जाने भारतमित्र की क्या प्रकृति हो गयी है कि जो विषय आर्य्य लोग भेजते हैं क्यों नही छापता—मेंने एओ ह्यूम साहब का उत्तर लिखा था वह भी नही छापा दूसरा वालादत्त शर्मा जो गढ़वाल में रहते है उन्हो कुछ तर्क उठाया था और अपनी विद्वत्ता भा० मि० में प्रकाश की थी उस्का उत्तर भी मेंने भा० मि० के सम्पादक को भेजा था सो भी न छापा और मुझ को लिख दीया कि तुम सीधे

बालादत्त जी से पत्र व्यवहार करो भा० मि० में एसे विषय नहीं प्रकाश होंयगे न जाने भा० मि० को क्या हो गया हमारे विरुद्ध विषय तो प्रकाश करे और उनके उत्तर नही छापता कही कोई भा० मि० सभा में पोपजी तो नहीं आ घुसे—

[२] यहां पर पानी ७ दिन से खूब पड़ता है दुर्भिक्ष का भय जाता रहा विशूचिका रोगादि भी शांत हो गये—

[३] में जन्माष्टमी पर आगरे गया था सो बा० भगवानदास जो कि "भारतीविलास आगरे" के सम्पादक है उनके १२) रुपये कल्दार भर पथरी निकली में जब उनसे मिला तब वे पलंग पर लेटे हुये थे और उन्होंने मुझ को उक्त पथरी दिखलाई मानों उनका पुनर्जन्म हूआ—

स्वामीजी महाराज यह वृतांत मैंने अपने समाज से मंत्रीत्व के पद के छोड़ने का सूक्षम रीति से लिखा है अन्यथा सर्व व्योरेवार व्यवस्था कि जैसा जैसा मुझ को इन लोगों ने खेद पहुंचाया है लिखता तो पाच सात प्रष्ट और भर जाते इस कारण सूक्ष्म रीति से ही लिखा गया—

मुन्नालाल

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६४] पत्र

॥ श्री ॥[१]

श्रीमद्जगत्गुरु महाराज परिव्राज काचार्य महाराज श्रीमद् दयानंद सरस्वती जी महाराज के चर्णारबिंद में साष्टांग नमस्ते पौचे: आगल: आप का: पत्र: हमकु: मिल्या था:[२] बिठल: भाणा: कु: भेजणे की: आग्या: थी: परंतु: बिठल: के भाइ की: औरत बेमार थी: सो बिठल: बडगाम: गया था: ओर: आपकु उदर से: पत्र भेजा: आप ने जबाब: उसकु भेजा नइ: सो बिठल मुं बे आया हे: आपकि: आग्या परमाणे सर्व कबूल हे: परंतु: जोधपुर तक: पौचणे का: खर्च: रुपये:

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २८४-२८५ पर छपा है। २ यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

१० दशलकत्तेहे: सो: भेजणा चैहे: सो भेजणा: अगर: आपकी: आग्या: होगी: तो लिखणा: आपके हूकम के अनुकूल होवेगा: और: बिठल: जब तक्: आपके अनुकूल: चलेगा: समाज की स्थिति: जो आगूल लिखी थि सो: वो इहे: कुचकम् जास्ती: न विलिखणे जेसिहेनहि: और ये पत्र का जबाव कृपा कर के: जलदि लिखना: और पत्र पर ठिकाणा: ममादेवी: भगवानदाश: बिहारीलाल जी के: दुकान पर पोचे: एसा लिखना: संवत् १६४० भाद्रपद: शुक्लपक्ष[1] ७ बृष्टी बौत हे: पत्र भेज्या मुबं से लालजी वंजनाथ के साष्टांग: नमस्ते पोच:[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६५] पत्र

ओ३म्[3]

श्रीमत् परमहंस परिब्राजका चार्य वर्य्य जगद्गुरुस्वामी जी महाराज श्री दयानंद सरस्वती जी के चरन कमलों में दास बलदेव की बहुधा नमस्ते पहुंचे (अत्रकुशलंतत्रास्तु) दास ने उड़ती खबर सुनी है कि आप लंधन को पधारेंगे अगर यह बात सही है तो दास की यह अर्ज है मुझ को आप लिखें तो मैं वहा हाजिर हूं क्योंकि मुझ को उस मुल्क के देखने की इच्छा है— और मैं तनखाह कुछ नहीं लूंगा सिर्फ रोटी ही खाऊंगा और जो मेरा काम मामूली था किया करूंगा— बाद इस के आप की प्रतिपाल दास पर होवेगी तो चरण कमलों की सेवा किया करूंगा—सब को मेरी नमस्ते फर्मा देवें— चरन दर्शनाभिलाशी बलदेव वांदनवाड़ा

ता: १०-९-८३[4]

—:०:—

१. ८ सितम्बर सन् १८८३।

२. यह पत्र लाल जी वैजनाथ का है। इसका निर्देश लाल जी वैजनाथ के २० सितम्बर १८८३ के अग्रिम पूर्ण संख्या ५७९ के पत्र में मिलता है। तदनुसार यह रजिस्ट्री से भेजा गया था।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २१७ पर छपा है।

४. भाद्रपद शु० ८, सं० १९४० बि०।

[पूर्ण संख्या ५६६]　　　　पत्र

।। ओं तत्सत् ।।[1]

नं० ६०

श्री मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य्य अनेक गुण संपद्विराजमान वेद-विहिता चारधर्म्म निरूपक श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज नमस्ते ।।

पत्र आप का मिति भाद्रपद शुक्ला १ सं १९४० का आया[2] समाचार विदित हुवा उसके उत्तर में प्रति नियम यथा संख्या निवेदन किया जाता है।

(१) पं० गौरीशङ्कर जब सहारनपुर में नोकर थे तब रु ३२॥) मासिक पाते थे और जब यहां आये तो राज में तथ अंग्रेज के यहां भी रु १५) मासिक पाते रहे प्रंन्तु इस मासिक पर वे यहां इस आशा पर ठरे थे के शीघ्र ही कहीं अच्छी तंक्की हो जावेगी क्योंकि उस समय यहां विदेशी के रखने की आज्ञा नहीं थी इस लिये हाकिम ने यह भरोसा दिया था के कुछ समय के पश्चात् जब तुमारा हक हो जायगा तो तुम को बडी नोकरी पर नियत कर देंगे इस आशा पर उक्त पंडितजी अपने पांच आदमियों का बडी कठिनता से निरबाह करते थे बल्कि संस्कारादि कर्म्म द्वारा सभा में भी सहंयता पहुंचा करती थो।

(२) इन के ग्रहस्त के खरच को देख कर हम निश्चय करते हैं कि न्यून से न्यून रु २५) मासिक में इन का निरवाह सुगमता से हो सकता है।

(३—५) आपने ज्यो दरयाफ्त किया के इस प्रबन्ध में तुम क्या सहंयता करोगे इत्यादिक के उत्तर में प्रार्थना यह है के अभी इस सभा में केवल ३ तथा ४ पुरुष द्रव्य से सहंयता करने वाले हैं केवल

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ १०२-१०६ तक छपा है।

२. ऋ० द० ने यह पत्र बिहारीलाल मन्त्री आ०स० जयपुर के भाद्र कृ० १२, सं० १९४०, पूर्व पूर्ण संख्या ५५२, पृष्ठ ६६२ पर छपे पत्र के उत्तर में लिखा था।

इन ही के पुरुषार्थ से यहां का मासिक करच अर्थात् किराया मकान स्थान रक्षक का वार्षिक उत्सव वा आर्य्य जन का सत्कार तथा फरश पुस्तकादिक चलता है और अन्य सभासद वे नोकर अथवा पराधीन होने के कारण कुच्छ सहयता नहीं कर सक्ते इस कारण इस समय यह सभा कोइ विशेष खरच नहीं उठा सक्ती हां आशा है कि किसी समय पर यहां ऐसी उन्नति होगी के फिर अन्यत्र से दृव्य सहयता की आवश्यक्ता न रहेगी परन्तु जो आप पंडितजी को उपदेशक नियत कर केवल यहां रखना चाहें तो सभा कुच्छ देसक्ती है यदि आप इन को एक उपदेशक नियत कर के अन्यत्र समाजों में घुमाना चाहे तो न्याय से किसी समाज पर इन के मासिक का भार न होना चाहिये और इन के यहां रहने और अन्यत्र घूमने के विषय में प्रार्थना यह है कि जब इन को आपने समाजों का १ उपदेशक रखा तो इनका घूमना, आप के मनोर्थानूकूल होगा हां इतनी प्रार्थना है के यहां ऐसे उपदेशक की अत्यन्त आवश्यक्ता है क्यों के इन के यहां पैर न रहने से उन्नती में हानी हो जावेगी द्वितिय पण्डितजी ग्रहस्ती हैं १२ महीने नहीं घूम सकेंगे इस कारण ६ महीने तो इन को अवश्य १ जगह रहना होगा इस ६ महीने में यह जैपूर रहकर उपदेश तथा पढाया वा देश हि[तै]ष्यादिक आर्य्य पत्रों को सहयता दिया करें और वर्ष के द्वितिय भाग में आप के नियमानूकूल घूमा करें।

(४) आपने ज्यो लिखा के इन के भोजन तथा रेल का खरच समाज से मिला करेगा इस विषय में प्रार्थना है कि ज्यो समाज शब्द से भिन्न भिन्न समाज का अभीप्राय हैं के जहां जावे वहां से मिले तो हमारी सम्मती में सब समाजों में यह भार उचित नहीं है और जो ज्यो समाज शब्द से उपदेश नैमित्तिक कोष का अभीप्राय है तो ठीक है और भोजन खरच के लिये ऐसा प्रबन्ध होना उचित है के इन के घूमने के समय मैं ५) तथा ७) रु० मासिक भत्ते के तौर से अधिक मिला करे अन्यथा नहीं॥

सम्पूर्ण सभा की सम्मती पूर्वक आप की सेवा में प्रार्थना है के उपर के लिखे हवे नियमोत्तरों को दृष्टिगोचर कर के शीघ्र प्रबन्ध कर देंगे पंडित गौरशंकर से इस बात में दरयाफ्त कियागया तो उन को भी यह सभा का विचार माननीय है और ज्यो कुच्छ सम्मती तथा अज्ञा आप की होगी वही सभा तथा पंडितजी को सर्वथा मान-

निय है प्ररन्तु इन की आजीवका का प्रबन्ध शीघ्र हो जावे क्यों के आज कल यह बेकार हैं और खरच विशेष है इस लिये इन को इस समय आर्य्यसमाज से सहायता पहुंचनी आवश्यक है ॥

मुन्शी गङ्गाप्रशाद की अनुपस्थिति में सभा का यह प्रबन्ध हुआ है ।

(१) प्रधान डाक्टर कृष्नलाल वैश्य

(२) उप० ठाकुर नन्दकिशोरसिंह

(३) मंत्री श्यामसुन्दरलाल शर्म्मा

(४) उप० जगन्नाथ शर्म्मा

(५) कोशा० रामशरण शर्म्मा

(६) पुस्त० गोपीनाथ शर्म्मा

वर्षा यहां बहुत हुई है और हो रही है और सब प्रकार कुसलक्षेम है ।

संपूर्ण सेवक जनों का आप को नमस्ते पहुंचे

उत्तर से शीघ्रऽनुमोदित किजियेगा

आप का सेवक

श्यामसुन्दरलाल मंत्री

वैदिक धर्म्म सभा

सवाई जयपुर

मिति भाद्रपद शुक्ला ९ सं १९४०[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५६७] पत्र

ओ३म्[2]

आश्चर्य मद्वितीयं हि पूर्ण विद्या निधिम्विभो । जगदुद्धार कर्तार मखण्ड ज्ञान दायकम् । १ । धर्म्म सेतु नियन्तारं ज्ञानगम्यं सतां वसो । दिव्यमूर्त्तं समाधिस्थं निर्धूतमनोमलम् । २ । नित्यमुक्त स्वभावस्थं

१. ११ सितम्बर सन् १८८३।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३५-३६ पर छपा है ।

सच्चिदानन्द लक्षणम् । सर्वबोधोदयं चित्रं नौम्यभिक्षणं जगज्जितम् । ३ । शिकार पुरतोऽगमंमूलत्राणे च संस्थितिः । जाताकिलाद्यकिज्जाने गमिष्यामीति तद्विद । ४ । अत्रत्योहि समाचारो वर्त्तते शुभवत्तरः । सहजेरित मिदं चेद्गच्छत्वा सुजगत्पदम् ॥५॥

महाराज सखर का भी समाचार अच्छा है अब आप की कृपा से यदि झंग से लोगों ने बुलवाया तो मैं झंग जाऊंगा वहां पर भी समाज स्थापित लोगों ने करने को चाहता है अयसा श्रवण करन में आया तव मुलतान सभासद से एक पत्र लिखवा कर भेजा है परन्तु जवाब नहीं आया है और शिकारपुर में जो समाज होगया सो तो आपके चरणाविन्द में पत्र द्वारा अर्पण हुआ है

सर्वान्तर्यामिनि किम्वदामीत्यलम्

आपका दास— **सहजानन्द सरस्वती**

सं० १९४० सितम्वर ता. ११ मंगल[1]

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५९८] पत्र

ओ३म्[2]

ता० ११।९।८३ ईस्वी[3]

श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामी

समीपेषु

महाशय । दण्डवत् ! आशा है कि कृपा कर के निचे लिखित पर अवश्य ध्यान देंगे । कृपा कटाक्ष से मेरे ओर देख कर शिघ्र मेरे शुधरने का यत्न करेंगे । यदि अज्ञानता अथवा अविद्या के कारण कोई दोष आरोप हुये हो तो उसे दूर कर देंगे ।

सत्य वृत्तान्त ।

मैं श्री वास्तव कायस्थ हूं, जब १३ वर्ष का अवस्था था पिता मेरे तीन बहिन व तीन विधवा जो अब तक हैं अर्थात् मेरी प्रदादी व दादी व माता को छोड़ कर प्रलोक पधारे । हम नार्मल ईस्कूल के लास्ट

---

१. ११ सितम्बर १८८३ तदनुसार भाद्र शु० ९ सं० १९४० वि० ।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४३२—४३७ तक छपा है ।

३. भाद्रपद शु० ९ सं० १९४० वि० ।

किलास में अंगरेजी पढ़ते थे, फारसी पढ चुके थे। महल्ला निवासीयों ने नाम कट्वा देकर देवनागरी फारसी व कयथी में जोर पहुंचा कर मामूली नौकरी वृत्ती करा दिया।

मुनशी हर्नन्दनसहाय वकील जजी पुनियां रहने—वाले खगौल जिला पटना फुफा मेरे सहकारी हुये और उन्हीं के सहायता से मेरे द्वि बहिन की व मेरी विवाह संस्कार हो गई।

आज काल ७) रुपया मासिक पर(क्यों छोड़ दिया आगे विदित होगा) राय कृष्ण साहिब के इहां मुतसद्दी था। इतना केवल पहिचान के लिये लिखा है॥ अब मेरी अवस्था २३ बर्ष की है॥

उत्साह

धर्ममार्गी पुस्तकों के अवलोकन का उत्साह तो मेरे चित्त में पूर्व ही से है। प्रथम रामायण व पुराण आदि का अभ्यास रहा, जब प्रेम-सागर में वेदों का तारीफ पढा तब तो वेद जान्ने का उत्साह बढा इस में कितने जगह हम फिरे पर कुछ न हुआ कितने शुद्र कह कर फेर देते थे। बाबू जिवराज सिंह कायस्थ से आप के कृत भाष्य का हाल विदित होने से मुनशी मनोहर लाल के इहां आपके कृत पुस्तकों का देखना प्रारम्भ किया। पुस्तकों के देखते ही पुराणों से निष्टा जाती रही और विद्या उपार्ज्जन विषय उत्साह बढ़ा।

आर्य्य समाज

विद्योन्नति के निमित्त आर्य्य समाज नियत कर के बिहार बन्धू द्वारा प्रगट कर दिया। बाबू हरिहरचरण प्रधाण सभा जब से इन्स-पेक्टर हो मुतिहारी गये तब से समाज न हुआ। इसके विरुद्ध द्वि धर्म सभा भी नियत हो गया था।

पत्र का आशय

स्वामी जी। दण्डवत ! मुझे विद्या उपार्ज्जन का उत्साह है आप कृपा कर के सहायता कीजिये। आप पञ्चायत्न पूजा में माता पिता को गिनते हैं और गृह का बोझ केवल मुझ ही पर है तदर्थ निंचे लिखित उपाय मनोवाञ्छित फल सिद्ध करने का जाना है।

१—आप अपने समीप अथवा वैदिक यन्त्रालय से कोई प्रबन्ध दे कर शिक्षित करें।

२—एसा न होने पर आप का भाष्य सहित व्याकरण को लेकर इहां पढें।

३—ऐसा भी न होने पर केवल ब्रह्मचर्य्य कर के विद्या उपार्ज्जन करें।

उत्तर—मुन्शी समर्थदान के
ओर से

स्वामी जी इहां नहीं हैं, इस समय ८) रुप्यै मासिक का काम खाली है आप अपने काम का लयाकत ठीक ठीक लिखिये तो आप को यह काम मिल सकेगा।

प्रति उत्तर।

बाद लिखने ल्याकत के हम ने यह भी लिखा कि मासिक कुछ बढ़ा दगे। इस पर कोई उत्तर न आया। तब हमने सप्तमोभाग: समासिक प्रबन्त मंगाया पढने के लिये, पर इहां पोपलीला के कारण न हो सका। तब तो चित्त बड़ा उदास हुआ।

ब्रह्मचर्य्य की
मुस्तैदी।

यह निश्चित किया कि वृथा जन्म खोना अच्छा नहीं अभी समय है, कम से कम तीन वर्ष के लिये भी ब्रह्मचर्य्य कर लें। ऐसा विचार कर इहां से प्रयाग (काशी तथा मिर्जापूर का आर्य्य समाज देखते हुये) गये। जब मुन्शी समर्थदान से मिले तब विदित हुआ कि आज काल कोई जगह यन्त्रालय में नहीं है, और स्वामी जी को अवकाश पढाने की नहीं मिलती इस कारण उन के समीप भी जाना व्यर्थ है। हम फिर आये। जब घर आये तो मालूम हुआ कि माता व दादी व हमारे बहनोई प्रयाग खोजने को गई हैं, जब हम पहुंचे थे। उस के सुबह हो के वे सब भी वापस पहुंचीं। इति द्वि छोटी बहिन व एक भांजी है और इहां कोई ऐसा पाठशाला नहीं कि जिस में पढ़ने के लिये भेजूं। और स्त्रियों की दुर्दशा देख निहायत चित्त को विषाद होता है तदर्थ मैं चाहता हूं कि अपना अमुल्य समयउन के सुधारने में लगाऊं। पर बोझ घर का केवल मुझ पर है और आप के उपदेशों से भी विदित है कि पञ्चायत्न पूजा में माता पिता का सेवा करना अवश्य है। तदर्थ निचे लिखित उद्योग मनोवाञ्छित फल सिद्ध होने का जान कर आवेदन पत्र महाराजे दर्भंगा तथा आर्यसमाज लाहौर, फर्रुखाबाद, मेरठ, तथा अपने फुफा को भी दिया है। अभी तक उत्तर न आया है।

१. संस्कृत पढ़ने चाहता हूं व घर का बोझ भी है और कोई नौकरी कर के पढना हो नहीं सकता इस कारण मैं चाहता हूं कि कोई तिजारत कल का करूं और इस में १०००) से कम व २०००) से अधिक की आवश्यकता नहीं है कोई धर्मात्मा सुदी वा बे सुदी रुपया देवे, उस को अखत्यार है कि बनजर मजीद इतमीनान ताअदाय रुप्ये के कारखाने को अपने कबजे या तहत में रखे।

२–या १५ रुपया मासिक धमार्थ वा कुछ थोड़े काम के साथ दे।

आप से, निवेदन।

१—ऊपर लिखे पर ध्यान दे कर जहां तक हो सके मेरी सहायता करें।

२—तीन वर्ष के लिये अपने समीप ब्रह्मचर्य्य में लेकर रखें, और मेरे केवल खाने का प्रबन्ध कर देवें।

३—अगर हो सके तो आप को राजा महाराजा से बहुत समबन्ध है मेरी आजिविका का प्रबन्ध कर देवें। जिससे अपने मनोवाञ्छित फल के सिद्ध करने में समर्थ होऊं।

४—मेरे तात्पर्य्य को विचार कर उसे अपने वेदभाष्य के टाइटल पेज में स्थान देंगे वा आर्य्य समाचार पत्रों में दिलवा देंगे।

५—सत्यार्थ प्रकाश द्वारा जाना था कि जब गर्भ स्थित होती है तो उस के कुछ काल बाद छठे वा सातवें महीने (मुद्दत ठीक याद नहीं है) जीव स्त्रि के श्वांस द्वारा बालक में पड़ता है[1], ता० ६। ९। ८३–इसवी भारतमित्र द्वारा ज्ञात हुआ कि विर्य्य में कीड़े होते हैं, वही क्रम २ से बढ़ते हैं पीछे से जिव नहीं पड़ता इसमें गरुड़ पुराण तथा वेद का भी प्रमाण दिया है। इहां लिखने में विस्तार होगा भारतमित्र निकाल कर देखियेगा। आप ने भी यह सिद्ध किया है कि जिव का धर्म घटना वढना है[2] और जितने वस्तु घटते बढ़ते हैं उस में जीव है जैसे वृक्ष इत्यादि। पस इस से भी यह सिद्ध होता है

---

१. यह बात सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में हमारे देखने में नहीं आई।

२. जीव का धर्म घटना बढ़ना नहीं है। जिस वस्तु में जीव होता है उस का धर्म घटना बढ़ना होता है।

कि अवश्य विर्य्य ही में पहले से जिव होंगे क्योंकि अंतःकरण अर्थात् गर्भ में शरीर के अवयो के बढ़ने का कर्म होता है। और जिस् दूरबीन से जल के कीड़े देखे जाते हैं उसी से वीर्य्य के कीड़े भी देखे जा सकते हैं। इस शङ्का का समाधान पत्र द्वारा कर देवें यदि भारतमित्र की बात असत्य हों तो उसका खण्डन भारतमित्र द्वारा प्रकाश कर दीजिये।

६—एक नास्तिक का दलील। जितने हर्कत (व्योहार) होते हैं उस का कारण खून (रक्त) है और खून ही से दुख सुख अनुभव होते हैं। किसी विकार तथा रोग से किसी शरीर के अंग में खून नहीं रहता है तब वह बे हर्कत हो जाता है और उस अंग से शीत उष्ण नहीं अनुभव होते। जब फोला किसी अंग में पड़ता हैं तव उसमें खून नहीं रहता पानी रहता है इस कारण उस फोले पर सूई गड़ाने तथा चीड़ने से वा उस चमड़े के उखाड़ने में दुख नहीं होता। मुर्दः में भी खून नहीं रहता है। यदि जिव कोई भिन्न वस्तु है तो क्यों उपर लिखे हुए जगहों में दुख सुख अनुभव नहीं कर्त्ता, तो क्या सिद्ध हूआ कि खून ही एक चीज है और खून तत्त्वों से उत्पन्न होता है और फिर तत्त्वों में मिल जाता है। इति। मुझ से कोई उत्तर न हो सका आप के समीप लिखता हूं विस्तार पूर्वक समाधान लिखियेगा।।

७—जब आप पुरब के तरफ वा कलकत्ता प्रदर्शनी में पधारें तव कोई अकाज न हों तो पटना भी उतर कर दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे।

८ विशुद्धानन्द सरस्वती अपने को शिष्य श्रीमत् परिव्राजकाचार्य्यण बतला कर प्रतिमा पूजन वेद विहित कहते हैं तथा काशी में जो आवेदनपत्र गवनमेण्ट में भेजने का प्रस्ताव हो रहा है कि परतिमा अदालत में न आया करे इसमें बड़ी हानि है उस पर आप ने हस्ताक्षर भी कीये हैं शंका इतना है कि आप भी स्वामी बिरजानन्द सरस्वती को पूर्वोक्तमहाशय का शिष्य लिखते हैं तो एक ही गुरु के द्वि शिष्यों में इतना मत भेद क्यों पड़ा। हमने भारतमित्र द्वारा विशुद्धानन्द सरस्वती का हाल जाना है।[1]

---

१. स्वामी विशुद्धानन्द श्री स्वामी विरजानन्द के शिष्य थे, इस में कोई प्रमाण हमें नहीं मिला। सम्भव है 'परमहंस परिव्राजकाचार्य' लिखने से लेखक को भ्रम हुआ होगा।

उत्तर इस पत्र का अवश्य दीजियेगा आगे आशा है कि कृपा कटाक्ष से मेरे ओर देखते रहियेगा ॥ इति शुभम् ॥

आप का दास

द्वारकानाथ

मुहल्ला बड़ी पटन देवी शहर पटना

—:०:—

## [पूर्ण संख्या ५६९]		पत्र

ओ३म्[1]

श्रीयुत मान्यवर विद्वज्जन भूषण

श्री महाराज पण्डित स्वामी दयानंद जी

नमस्ते मैं आपुकी कृपा से आनंद से हू आपुक आरोग्यता ओरु प्रसन्नता परमात्मा से सदां चाहता हूं आपुके पत्र[2] आने से वडाही आनंद हुआ उत्तम धार्मिक मनुष्य का मिलना दुर्लभ है यह तो वहुत ही ठीक है ओरू मेरी सम्मति तो आपुके सामुने सूर्य को दीपक दिखाना है ओरु आपुका अनुमान भी मेरे प्रत्यक्ष से बढ कर है निस्संदेह दोनों गुण मिश्रत है परन्तु खुलां वजां कोई पोपलीला नही की है ओरू अब तक कोई काम आपुके विरोध भी नहीं प्रकट किया[3] यदि आपुकी मरजी होवे तो फिरि भी अवकी वार उनके लिखने ओरू प्रतिज्ञा कों देखि लीजिये यदि आपुकी आज्ञानुसार न चलें निकाल वाहर कीजिये आपुकी कुछ हानि न होगी उनकी हानि ओरू हंसी होगी यदि अब की वार भी अपने कहे का भूल जावै तो फिरि विश्वास कभी न कीजिये ओरू चरित्र वदरोका देख कर तो यह समझ लिया कि पूरा विस्वास तो अपना भी समझ कर आपुको लिखोंगा ओरू जोधपुर में विराजमान रहने का कब तक अनुमान् है राज जोधपुर का वरताव उदयपुर के ही समान है वा कुछ नूनाधिक

मिति भाद्र सुदी १० सम्वत् १९४०[4]

आपुका शिष्य—**जालिमसिंह रूपघनी**

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ९४-९५ पर छपा है।

२. यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६०८, भाग २, पृष्ठ ६९२ पर छपा है। ३. यह उल्लेख भीमसेन शर्मा के विषय में है।

४. १२ सितम्बर सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ५७०] पत्र

श्री परमेश्वरो जयतुतराम् ॥ श्रीशः पायात् ।[1]

सिद्धि श्री शुभगुणवृन्द संयुतानाम्पाखण्ड प्रचुरतराध्वरोधकानाम् ।
राजश्री परिभवकृत्सु विद्यकानां विद्वत्ता चणयति वीरता धराणाम् ।१।
आत्मैक्यं सकल जगत्सु पश्यताम्वै सद्विद्याभ्यसन विशुद्ध तीक्ष्णबुद्धया ।
आर्य्याणां सदय मुदा गिराह्वयानां मन्नामा अधिचरणं समुल्लसन्तु ।२।

श्रीमतॉयुष्मांकृपातः शमिहतत्र त्यमिष्यते तराम्परमेश्वरात् उदन्तोयम् श्रीस्वामिनो भो स्वनिर्म्मित कुपुस्तक लिखित परकीय सुपुस्तकाशया-नाम्पाखण्डिनाम्पामराणां वेदविरुद्धानि सारस्वतादि कुपुस्तकानि-भागवतादि कुपुस्तुकानि च मदीय पाठशा................वृत्त दृष्ट्वा पण्डिताअपण्डिताश्च मयि वैमस्यं कृत्वा मत्प्राण पोषणकरीञ्जीविकां निर्म्मूलत्वेन विच्छिन्दन्ति यतस्ततो ममनिर्जीविकस्य जीविका निष्पाद कोपायज्ञापकं स्वहस्त लिखित पत्रं ममोपरिकृपया श्रीमद्भि-र्वं—प्रयणीयमवश्यम् किंच श्रीमद्भिर्वः स्वनिर्मि भाष्यसहितायाः॥ वैदिक्यास्संहितायाः एकम्पुस्तकमिह प्रेष्यम् किंचाष्टाध्याय्या उपरि-यत्स पुस्तकं विनिर्म्मितं तदपि मयिकृपया प्रेषयितव्यम् किं च उदेपुरे युष्माकं समीपे पत्रमेकं प्रेषितं तदुत्तर पत्रं मत्समीपेनायातमिति वेदि-तव्यम् किं च श्रीमतां युष्माकं सकाशाद्वावूसंज्ञकोष्टाध्यायीम्पठति तस्मैमदाशी—कथनीया किम्पुरो वहूक्त्या न भोवेदन........प्रोष्ठय दसितनम्पां[2]..

[3]श्री परमेश्वरोजयतुतराम्

सिद्धि, लक्ष्मी और शुभ गुणों से युक्त, पाखण्ड के बड़े भारी रास्ते

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४४३-४४५ तक छपा है।

२. इस से आगे पत्र का पाठ नष्ट हो जाने से लेखक का नाम और पत्र लेखन की तिथि अज्ञात है। परन्तु इसी पत्र के साथ जोधपुर नरेश के लिये जो श्लोक लिखा है उसके अन्त में जो तिथि दी गई है, उसके अनुसार हमने इसे यहां रखा है। श्लोक के अनन्तर भी लेखक का नाम उपलब्ध नहीं होता।

३. मूल पत्र संस्कृत में ही लिखा गया है। यह भाषानुवाद म० मुंशी-राम जी द्वारा सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' में छपा है।

के रोकने वालों, राजाओं की कान्ति को मात करने वाली विद्या से युक्त, विद्वत्ता के कारण विख्यात, सन्यासी, वीर, सुविद्या के अनुशीलन से उत्पन्न विशुद्ध मति से सारे संसार में एक परमात्मा को देखने वालों, और आर्यों को दया तथा प्रसन्नता से बुलाने वालों के चरणों में मेरे प्रमाण हों।

श्रीमानों की कृपा से यहां क्षेम है, वहां भी ईश कृपया चाहता हूं। वृत्तान्त यह है, कि हे स्वामिन्! ऐसे पाखण्डियों की जो दूसरों के अच्छे आशयों को अपने निन्द्य ग्रन्थों में रख देते हैं—वेद विरुद्ध सारस्वत भागवतादि पुस्तकें मेरी पाठशाला··············

यह हाल देख कर पण्डित और अपण्डित सभी लोग मेरे साथ विरोध कर के मेरी प्राणपोषिणी आजीविका मूल से ही नष्ट कर रहे हैं, इस लिये मुझे मेरी आजीविका का उपाय बताने वाला पत्र अवश्य भेजें और अष्टाध्यायी पर आपने जो अच्छी पुस्तक बनाई है वह भी कृपया भेज दें। और आप के पास उदयपुर में जो पत्र भेजा था उस का उत्तर नहीं आया। और श्रीमानों के पास जो बाबू नामक अष्टाध्यायी पढ़ता है उसे मेरी आशीर्वाद कह दीजिये······
······························ ·····························

—:०:—

श्रीरस्तु ॥[1]

श्रीशम् वन्दे
श्री ७ युत योधपुरेश योग्यमिदम्पद्यम्
अस्यायुर्म्महदस्तु पुत्रमुदयोरात्पश्चनिष्कण्टकं
शत्रूणान्निवहो विनश्यतु तथा बोभोतु मित्रोदयः।
सौभ्रात्रं हरिपादपद्मयुगलेभक्तिर्म्मदाशीरिय
राज्यात्कीर्तिमदेणराजनृपतौ सभ्रातरि श्रीमति १

---

१. यह जोधपुर नरेश के लिये लिखा गया श्लोक पूर्व पत्र के साथ ही भेजा गया था। यह म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४४५-४४६ पर छपा है।

शुभम्भूयात् आयुष्मान्भवसौम्येत्याशी राजनिराजस्वराजस्वेति राजताम् सम्वत् १९४० भा० २ । १० । ४[1] लिखितमद⌒पत्रम्

[2]श्रीरस्तु ।

श्रीशं वन्दे ।

यह श्लोक श्री ७ योधपुर के राजा साहिब के योग्य है—'इस की आयु बड़ी हो, प्रसन्नता का देने वाला पुत्र इस के हो, इस का राज्ज निष्कण्टक हो, शत्रु नष्ट हों, और मित्रों का अभ्युदय हो, इसका भ्रातृ प्रेम बढ़े, परमात्मा के चरण कमलों में इस की भक्ति हो—यही राज्य से उत्पन्न कीर्ति वाले पुरुषों मे चन्द्रभूत इस राजा तथा इस के भ्राता को मेरा आशीर्वाद है ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७१] पत्र

[3]श्री ६ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के चरणन में किशनलाल साह अल्मोडा शहर जिला कुमाऊं वाले की अनेक प्रकार दंडवत प्रणाम पहुंचे ईश्वर आप को आरोग्य रखे जिस से जो शुभ काम जगत के उपकार के लिए आप कर रहे हैं शीघ्र सम्पूर्ण हो; एक बडे आवश्यक विषय में आप की अनुमति सलाह अथवा राय लिया चाहता हूं और मुझ को निश्चय है कि आपकी कृपा होगी तो आप जैसा इस विषय में उचित समझेंगे मुझ को उत्तर भेज देंगे और यदि आपकी सामर्थ मे हो तो मेरी शहायता भी करेंगे सो हाल यह है कि मैं बालविवाह के दुष्ट फलों और जो जो दुख और पाप इस बालविवाह मे होते हैं उन सब को मैं भलीभांति जानता हूं और इस कारण मैं नही चाहता हूं कि जान बूझ कर मैं अपनी कन्याओं को जनम भर के दुख में डाल दूं यदि मैं नहीं जानता तो जैसा चलन

---

१. "भा० २।१०।४ लिखितमद⌒पत्रम" का अर्थ भाद्रपद का द्वितीय (शुक्ल) पक्ष १० तिथि ४ चतुर्थ दिन (बुधवार)को पत्र लिखा है। तदनुसार १२ सितम्बर १८८३ को उक्त पत्र लिखा गया।

२. द्र०—पूर्व पृष्ठ ६९६ की टि० २।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १. पृष्ठ ३७५-३७८ तक छपा है।

ब्राह्मणों ने यहां कर रखा है उसी मुताबिक मैं भी बरताव करता पर जानने से मुझ को दुख होता है और इस दुख का निवारण करना विना उस मत के ग्रहण किए जिस में बालविवाह नहीं है और जिस में एक विवाह की स्त्री के होते ही दुसरा विवाह करना भी मना है किस तरह हो सकता है, ऐसा मत आजकल हम लोगों के बीच है ही नहीं अलबत्ता वेदों में तो यह मत है पर वह अभी प्रचलित हुवा कि नहीं इस का मुझको ठीक हाल मालूम नहीं हिन्दुस्तान में कई आर्य्यसमाझ तो हैं पर उन के बीच अभी विवाह की रीत भांत बदली की नहीं। मेरा विचार बालविवाह और स्त्रीयों के पढाने लिखाने के विषय मे बहुत बरसों से यहां के लोगों से अलग था याने उन्की राय जो ब्राह्मणों के स्वाथ लाभ के लिए स्त्रीयों को मूर्ख रखने की है वैसी राय मेरी नहीं थी इस हेतु मैंने अपनी कन्याओं को पाद्री लोगों के इस्कूल में भेजाथा वहां उन्होने कुछ थोडासा पढाथा इस बीच मेरे कारोवार में फर्क आ जाने से कुछ चित्त में खेद हुवा मैंने उन्को भी इस्कूल जाने से रोका और घर में भी कुछ अच्छा बन्दोबस्त उन्के पढ़ने का नहीं है और अब मुझको दारिद्र ने दबा लिया है पर जो हो मेरी इक्षा बालविवाह की अब भी नहीं है उन्में से बडी कन्या अब १३ बरस की होने चाहती है उस्के विवाह करने में यदि यहां की रीत जन्म पत्रादि के द्वारा जो प्रचलित है किई जावे तो लडकी कहां जा पड़े और सदा दुखी रहे मेरी यह इक्षा है कि किसी सज्जन मनुष्य से जो लिखा पढ़ा हो इस कन्या का विवाह होता तो बहुत ही भला होता और उस्का पति किसी मुल्क का आर्य्य धर्म वाला होके वेदोक्त रीति पर उस से विवाह कर लेता; मैं अति दुखित हुं कि दरिद्र के कारण इस विषय का बन्दोबस्त मैं आप ही करने को असमर्थ हूं इस कारण आपकी सहायता चाहता हूं जो आप कुछ सहायता इस्में मेरी कर सकें तो मुझको उत्तर लिख भेजें जो न कर सकें तो वैसा लिख भेजें ॥ पहले समय में जब किसी को किसी प्रकार का दुःख आ पडता था तो ऋषि मुनियों की सहायता ढूंढते थे अब इस काल में आपके सिवाय दुःख के समय सुशिक्षा देने वाला कोही भी देख नहीं पड़ता इस कारण आप के चरणों मैं अपना दुःख प्रकाश करता हूं और आप से प्रार्थना पूर्वक प्रणाम कर के आप के बहुमोल्य समय के बीच यह पत्र भेज के उस की हानि जो कुछ हुई हो उस के लिये क्षमा चाहता

हुवा आप का दासानुदास किशनलाल साह इस पत्र को बंद करता हूं ता १४ सितम्बर सन् १८८३[1]

पत्र किसी दूसरे के हाथ चले जाने के भय से इस पत्र रजिष्ट्री करा के भेजा है क्षमा किजिएगा

कृष्णलाल भट्ट
(अलमोड़ा)

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५७२] पत्र

।। ओ३म् ।।[2]

सिद्धि श्री मत्कृपासिन्धु ष्वान्तिध्वान्तरविष्यलम्भूरि शोमत् प्रणामा:स्युर्गुरुपादयुगे ध्वत: ।। श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्य्य वर्य्य श्री स्वामी जी १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चरणकमलेषु बहुश: नमस्ते ।

समाचार स्वचरण कमलेषु विदिहो पुस्तक महाभाष्य का मैंने १८) रुपयों से लयी थी सो मेरे पास तें जाति रही ।। जिला सिरसा ग्राम फतियाबाद का विद्यार्थी मनोर्मा का पढने वाला था सो चोर के ले गया और सन्धि विषय तथा नामिक को छोड कर वेदाङ्ग प्रकाश भि महाभाष्यके साथ ही ले गया और कभी कभी यह कहा कर्ता कि मैं सहर बीकानेर जाउंगा सो हे स्वामीन् आप से बीकानेर तो कछु दूर नही स्यायत पुस्तक मिलही जाय तो मगधीश श्रीयुत ज्ञानानंदजी से कह कर पुस्तक की खबर जरूर मंगवायो जी

शरीर से काल था ।। मुख पर माता के रण थे ।। दक्षिण पैर से कछू लगड़ाता चलता था ।। नेत्र बहुत बड़े बड़े थे ।। नाम संज्ञा पोप की बिभा कह कर बतलाता था संवत् १९४० भाद्रपद शुदी तीज को पुस्तक लेगया पोप लीला समाप्त मिति

श्रीमानों को विदित हो कि संधि विषय और नामिक तथा वृद्धि-

१. भाद्रपद शु० १२, सं० १९४० वि० ।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ २१-२३ तक छपा है ।

रादैच् से ले के मुखनासिकावचनोऽनुनासिक ॥ १ । १ । ८ । के सूत्र तक भाष्य किया और उक्त दोय पुस्तक समाप्त हुये २) अब इन्हों से अगाड़ी सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर तथा हे परमपूज्य परमकृपालु परमैश्वर्यवान् । वेदविद्याद्वारेसनातनधर्मस्थापिताधिष्ठान आप की अत्युत्तम करुणा से मेरा सब काम सिद्ध होता है परन्तु इस काल में अैसा प्रत्यवाय पड़ा है कछू लिखने के योग नही पठन पाठन विषय पुस्तक बिना सर्व बन्ध है आप आज्ञा देवो तो दीक्षतकृत सिद्धान्त कौमुदी पुनः प्रारंभ कर दूं वा नही जैसी श्रीमानों की आज्ञा होवे वैसाही पत्र द्वारय शीघ्रहि विदित कर दीजियेगा जब तक परमपूज्य मानों की आज्ञा पूर्वक पत्र मुज को नही मिलेगा तब तक व्याकरण विषय पर पठ पाठन को कभि प्रवृत्त नहीं हुंगा बडा भारी प्रत्यवाय आय पडा कछू लिखने के योग्य नही परमपूज्यनीय श्री मानों को उक्त वार्ता पत्र द्वारै सब विदित हों

क्या कहु कछू कही न जाय अमृत तजि विष पीयोहि आय ॥
देख्यो पोप एक बहुरङ्गी लयी चोर मम पुस्तक चङ्गी ॥
अैसो दुष्ट अधम कुल नाहि हरी भाष्य पानीपत माहि ॥
सुनहु नाथ मम दीन दयालु बेदाङ्ग अन्य क्या पठूं क्रिपालु ॥
उपज्यो यह मोकों संदेहा प्रभु ताको कीजै अब छेहा ॥

श्रीयुत रामानन्द ब्रह्मचारी जी से ईश्वरानन्द का बहुशः नमस्ते ऋग्वेद का कौनसा अष्टक तयार हो रहा है सो लिखना जी

भा० शु० १३ संवत् १९४०[1] ईश्वरानन्द

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७३] पत्र

ओ३म्[2]

रामानन्द ब्रह्मचारी नमस्ते ।

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया समाचार जाने मेरे लिए श्री स्वामी जो महाराज की आज्ञा लिखी सो भी जानी । चित्त प्रसन्न

१. १५ सितम्बर सन् १८८३ ।

२. यह पत्र रामविलास शारदा कृत 'महर्षि दयानन्द का जीवनचरित' सं० ३ पृष्ठ ३६४ पर छपा है ।

हुआ। मैंने उस पत्र का उत्तर श्री स्वामी जी महाराज के नाम यथाभिप्राय लिख भेजा था आज १७ दिन हुये बड़ी आशा थी कि अब शीघ्र उत्तर आयेगा सो न जाने क्या कारण हुआ मेरा पत्र ही न पहुंचा वा कुछ अकृपा बनी रही यदि अकृपा रही तो अब किस प्रकार मिट सकती है वैसा ही करूं यदि पत्र न पहुंचा हो मेरा अभिप्राय यही था कि बहुत पुस्तकों के देखने एकान्त में विचारने कृतघ्नता आदि दोषों के भय और बहुत सज्जनों के कहने से विचार होकर सब प्रकार आपका सिद्धान्त वेदानुकूल निश्चय होने से आप की ओर विशेष प्रीति बढ़ी अब कोई कारण आपकी ओर से चित्त नहीं हट सकता फिर जीविका भी अन्यत्र करने में कुछ विरोध होता है सो नहीं सहा जाता। मेरी लेख ही हाल सत्य मानिये फिर समीप आचरण करने से आपको प्रत्यक्ष हो जायेगा यह सब हाल भी स्वामीजी महाराज को सुनाकर जैसी आज्ञा देवें सो शीघ्र कृपा करके अवश्य उत्तर दे दीजिये।

मि० भाद्र शु० १४ शनिवार[1] ह० भीमसेन शर्मा

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७४] पत्र

[महकमे कोतवाली जोधपुर की ओर से पत्र][2]

"श्री परमेश्वर जी सहाय छै"

केफियत अज तरफ पंडित दयानन्द सरसुती व म्हेकमें कोटवाली सेर जोधपुर भादवा सुद १२ तथा १३ सं १९४० रात मा जो आदमी मारा कनु चोरी करन निट गयो जीणरे वासते इस तीयार इनामी पचास रुपया राजारी होना चाहिए जो भरतपुर रे रेवण वालो होई लावा रोंगों ववीरांना रो हो सो उणरा मकान पर मारफत अजंटी बंदोबस्त होणा चाहिए जिणसु महकमें मासु कीमत कर लिख दीनी

---

१. यहाँ संवत् का उल्लेख नहीं है। सं० १९४० होना चाहिये। विशेष द्र०—पूर्व मुद्रित भाद्र कृ० १२ का पूर्ण संख्या ५५१ (पृष्ठ ६६६) का पत्र। तदनुसार ता० १५ सितम्बर १८८३।

२. यह सूचना-पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २३६ पर छपा है।

जावे इसतियार जारी कर दिया जावे है जो उण में श्रा विगत लिख-दी वी जावे के जो कोई माल समेत पकडाय देवे तो रुपया पचास जो विना माल पकडाय तो रुपया पचीस दिया जावेसी ने अजंटी में लिखावट होना चाहिए फकत[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५७५]　　　　पत्र

आर्य्यसमाज अजमेर.[2]

नं० ५३९　　　　ता: १६-९-८३[3]

श्रीयुत स्वामी जी महाराज.

नमस्ते—

आप की पीछली चिट्ठी के उत्तर में पं० गौरीशंकर का वृत्तान्त लिखना भूल गया था उन का यह हाल है कि जैपुर में १५ रु० मासिक पर नौकर हैं इतने में कुनबे का निर्वाह कठिनता से करते थे.

---

१. यह सूचना-पत्र भादवा सुदी १३ सं० १९४० (=१५ सितम्बर) के दिन या उसके अगले दिन प्रकाशित हुआ होगा। 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ९१३, भाग २, पृष्ठ ९२९ पर जो पत्रांश छपा है। वह १३ सितम्बर १८८३ का है। तदनुसार चोरी भाद्र सुदी १०-११ (१२-१३ सितम्बर) की मध्य रात में होनी चाहिये। दोनों में २ दिन का अन्तर है। आगे छप रहे कमलनयन के १६-९-१८८३ (पूर्ण संख्या ५७५) के पत्र के अन्त में चोरी का उल्लेख है। उससे विदित होता है कि ऋ० द० ने उन्हें १३ सितम्बर को ही सूचना दी होगी। यदि महकमे कोतवाली की सूचना को सही माना जाये तो ऋ० द० के १५ सितम्बर को सूचना देने पर १६ सितम्बर के पत्र में उस का निर्देश नहीं हो सकता। अत: हमारे विचार में महकमा कोतवाली की सूचना में तिथि गलत है। ऋ० द० ने १३ सितम्बर को सूचना दी होगी। उसने भादवा सुदी १३ समझकर तिथि का निर्देश कर दिया। पं. देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में चोरी का समय २५-२६ सितम्बर लिखा है। वह अशुद्ध है। यह प्रकृत महकमा कोतवाली के सूचना पत्र और ऋ० द० के पूर्व निर्दिष्ट पूर्ण संख्या ९१३ के पत्र से स्पष्ट है।

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १९३-१९९ तक छपा है।　　३. भाद्र शु० पूर्णिमा सं० १९४० वि०।

सो इनका यह उद्यम भी धर्मार्थ गया. अर्थात् २० अगस्त को इस समाज के उत्शव में जिस दिन सीताबाई ने ईसाई मत त्याग वेदमत स्वीकार किया था उक्त पं० जी को जैपुर से व्याख्यानार्थ बुलाया गया था. पं० जी भी उत्शाह वश एत्वार की छुट्टी जान अजमेर चले आये. पश्चात् जैपुर में उन के हाकिम ने याद किया. पं० जी के न मिलने पर उन को नौकरी से दूर कर दिया. इस बात का सब को शोक है. पं० जी सच्चे मन से आर्य्य है और इन का हृदय आर्य्यों के प्रेम से सदैव परिपूर्ण रहता है. प्रथम ये मेरठ समाज के पंडित रह चुके है. और जिले शहारनपुर में इन्होंने ओवरसियर का काम बहुत दिनों तक किया. इस कारण राव मसूदा अपने राज्य में तालाव इत्यादि के प्रबन्ध के बास्ते रखना चाहते हैं परन्तु जैपुर समाज और अजमेर समाज की यह इच्छा है कि यदि उक्त पं० जी को धर्म उपदेशक नियत किये जावें तो हम लोगों और समाजों को भी उन्नति दायक होंगे. और पं० जी का भी अच्छी प्रकार निर्वाह हो जायगा.

सीताबाई नागरी अच्छी प्रकार से पढ़ सक्ती है संस्कृत शब्दों का बोध कम है परन्तु हस्तक्रिया अर्थात् टोपी, रूमाल, चादर, दुपट्टे, ऊन के आसन और कई एक काम अच्छे कर सक्ती है यदि इस का कोई सहायकारी भी न हो तो यह अपने हुनर से अपना पेट भर सक्ती है परन्तु हम को ऐसा उचित नहीं है. समाज ने चन्दा करके इस को १०) मासिक देना किया है. आर्य्यपुरुषों की स्त्रियों को पढ़ाना और काम सिखाना यह कार्य्य इस को सौंपा है यदि इस प्रबन्ध में उन्नति रही तो कन्याओं की पाठशाला भी हो जावेगी परन्तु इस का मुख्य कारण द्रव्य है जिस की इस समाज से कम निश्चय है—

लाहौर समाज के मन्त्री जवाहरसिंह शाहपुरे से १४ तारीख सितम्बर को यहां उपस्थित हुये यहां दो दिन निवास कर जैपुर, मेरठ होते हुये लाहौर को गये. इन का विचार पीछे आने का नहीं दीखता. आप के लिखे अनुसार[1] लाहौर में कन्याओं की पाठशाला में सीता

१. जिस पत्र में ऋ० द० ने सीताबाई को लाहौर तथा फिरोजपुर भेजने के लिए लिखा होगा, वह हमें नहीं मिला। सम्भव है वह वही पत्र हो जिसको 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६१३, भाग २, पृष्ठ ६२६ पर पत्रांश रूप में छापा है।

के रखने को इन से पूछा गया था उत्तर दिया कि वहां पर दो स्त्री प्रथम से ही हैं वहां आवश्यकता नहीं है. फीरोजपुर से उत्तर आया कि इसके हस्तक्रिया अर्थात् कसीदे के काम के नमूने भेजो. स्वीकार होने पर बुलाई जावेगी. सो नमूने तैयार हो रहे हैं इस के प्रबन्ध की हम को भी रातदिन चिन्ता बनी रहती है क्योंकि यह प्रथम ही कार्य्य है यदि इस का अच्छा प्रबन्ध हुआ तो अन्य ईसाई पुरुष भी वेद मत स्वीकार करने को उद्यत हो जावेंगे. अभी यहां पर चार पांच और अन्य ईसाई भी वेदमत स्वीकार करने को उद्यत हो गये हैं जो थोड़े ही दिनों में ज्ञात हो जायगे.

पं० मुन्नालाल का वृत्तान्त यह है कि पत्र दे० हि० को समाज का करने से उन के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया है जब यह पत्र प्रचलित किया था उस समय समाज की इच्छा नहीं थी समाज की इच्छा न होने पर भी पं० मुन्नालाल ने यह पत्र समाज के नाम से प्रचलित कर दिया. जब समाज ने विचारा कि यह पत्र विना सम्मति समाज के नाम प्रचलित है. इसका प्रबन्ध कुछ अवश्य करना चाहिये तीन महीने पश्चात् अंतरंग सभा हुई. उस में मुन्नालाल को बहुत ऊंच नीच दिखाई गई और यह भी कहा गया कि अभी यह समाज इस योग्यता को प्राप्त नहीं हुआ जो पत्र चला सके. इस पर मुन्नालाल ने कहा कि मैं इस पत्र को प्रचलित कर चुका. और सब प्रकार इस का काम मैं करूंगा कुछ सभासदों ने उस समय यह भी कहा कि यह पत्र मुन्नालाल का कर दो और समाज का नाम हटा दो. इस पर मुन्नालाल ने कहा कि समाज का नाम हटाने में आप को क्या लाभ होगा. किन्तु ग्राहकों के कमती होने से मेरी हानि होगी. समाज ने भी यह विचारा कि आर्य्यसमाज अजमेर का नाम उठा देने से लोग नाना प्रकार की कल्पना करेंगे अन्त को इस पर यह विचार ठहरा कि हानि लाभ का मालिक मुन्नालाल रहे परन्तु इस पर नाम समाज का होने से जो इस में विषय होंगे उन की जिम्मेदार समाज होगा. इस कारण इस में छपने को जो मसौदा बनाया जावे वह समाज में सुना दिया जावे और उस पर मंत्री के हस्ताक्षर हो जाया करें. एक दो बार तो ऐसा किया गया फिर यह नियम भी मुन्नालाल ने तोड़ डाला और ऐसे ही चलता रहा.

इस के पश्चात् पांडे श्यामसुन्दरलाल मेरठ समाज के गत वार्षिकोत्सव में मेरठ को गये वहां पर वार्ता हुई कि लाहौर से आर्य्यापत्र जो अंग्रजी भाषा में प्रकाश होता है वह भी समाज की सहायता से देशहितैषी की तरह प्रचलित हुआ. अब जो उस को समाज ने अपना करना चाहा तो उस के सम्पादक रतनचन्द बेरी ने बहुत कुछ विरोध प्रगट किया. फिर पांडे श्यामसुन्दरलाल से कहा कि तुम्हारे समाज के पत्र दे० हि० पर लिखा है कि यह पत्र समाज की ओर से है और आय व्यय का मालिक मुन्नालाल हो यह तो एक धोखे की बात है जो आर्य्यों को उचित नहीं है.

इस बात की चर्चा इस समाज के मुख्य-मुख्य सभासदों से हुआ जिन का यह विचार हुआ कि दे० हि० पत्र समाज का होना चाहिये परन्तु मुन्नालाल को इस बात से इस ढंग पर विदित करना चाहिये कि उनको बुरा न लगे इस कारण कुछ दिन तो यह बात गुप्त रही फिर एक दिन समाज करके सम्मति ली गई कि दे० हि० पत्र समाज का होना चाहिये वा नहीं इस पर मुन्नालाल आदि से लेकर सब सभासदों की यही सम्मति हुई कि पत्र समाज का होजाना चाहिये.

जब यह बात पक्की हो गई तब मुन्नालाल जी से हिसाब लिया गया इस के बीच में एक और यह लीला उत्पन्न हो गई कि मुन्नालाल ने तीन चिठ्ठी समाज की फाड़ डालीं जिन के कुछ टुकड़े कमलनयन को मिले. जिन से कुछ दे० हि० का हिसाब निकलता है और यह वृत्तांत भी उन्हीं मुख्य मुख्य सभासदों से कहा गया जिस पर यह विचार हुआ कि समाज की डांक किसी नियत स्थान पर दो सभासदों के सामने खोली जावे और मुन्नालाल से भी कह दिया गया. जिस पर उन्होंने कहा कि मैं चिट्ठी रसा से कह दूंगा वह नियत स्थान पर डांक लाया करेगा और फटी चिट्ठी के भी टुकड़ों का वृत्तान्त समाज में विघ्न पड़ने के कारण मुन्नालाल से नहीं कहा गया. बस यही कारण मुन्नालाल के विरोधी होने का हुआ. अधिकता के भय से और नहीं लिखते.

इस पर आप दोषी और निर्दोषी का विचार कर सकते हैं—

पत्र मित्र विलास से ज्ञात हुआ कि महाराणा उदयपुराधीश और महाराजा इन्दौर ने कर्नल आल्काट को निमन्त्रण पत्र दिया है जिस्से कुछ सन्देह उत्पन्न होता है—

आप के यहां चोरी होने से[1] सब सभासदों को क्लेश हुआ और पुलिस में आप के लिखे अनुसार उसी समय सब प्रबन्ध किया गया. अभी तक कुछ पता नहीं लगा.

सब सभासदों की ओर से बहुत बहुत नमस्ते पहुंचै. और सरदार भगतसिंह और पं० भागराम की तरफ से बहुत बहुत नमस्ते पहुंचे —

आप का दास
कमलनयन शर्म्मा
मंत्री आर्य्यसमाज अजमेर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७६] पत्र

ओम्[2]

नं० ११ आर्यसमाज, मुरादाबाद।
ता० १७ सितंबर १८८३[3]

सिद्धिश्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीमत् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज समीपेषु जोधपुर

महाशय,

नमस्ते, श्री जगदीश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद से समाज उन्नति पर है। आगे निवेदन है कि यह बात देखे जाने पर कि मुक्ति विषय में कहीं कहीं पर परस्पर विरोध है इसलिये ८ सितंबर १८८३ को खास अंतरंग सभा में मुक्ति विषय देखा गया तो जान पड़ा कि वेदभाष्य भूमिका पृष्ठ १८४, १८७[4] (मुक्ति विषय) आर्याभिविनय पृष्ठ १६, २३, ४२, ४३, ४४, ४५, ४८, ५५[5], पंचमहायज्ञविधि पृष्ठ

---

१. द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५७४, पृष्ठ ७०३ पत्र की टि० १।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३१४-३१५ तक छपा है।

३. आश्विन कृ० १, सं० १६४० वि०।

४. यह पृष्ठ संख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अङ्कों में छपी) के प्रथम संस्करण की है। द्वितीय संस्करण पुन: शोधित है। यही सम्प्रति प्रचलित है।

५. यह पृष्ठ आर्याभिविनय के सं० १६३२ के प्रथम संस्करण की है। द्वितीय संस्करण पुन: शोधित है। यही सम्प्रति प्रचलित है।

५६[1] और आर्योद्देश्य रत्नमाला अंक २६ से साबित होता है कि मुक्त जीव जन्म मरण रहित हो जाता है[2] और संस्कृत वाक्य प्रबोध पृष्ठ ५०[3] में लिखा है कि "जो जीव मुक्त होते हैं वे सर्वदा वहां नहीं रहते किंतु जितना ब्राह्मकल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर के आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं।" जो कि संस्कृत वाक्य प्रबोध और ऊपर लिखित लेखों में हम तुच्छ बुद्धियों को परस्पर विरोध देख पड़ता है इस लिये अंतरंग सभा की ओर से सविनय निवेदन है कि कृपा करके इस का उत्तर सप्रमाण शीघ्र लिखिये कि उसी के अनुसार निश्चय माना जावे और विरोध पक्षवालों को भी तदनुसार उचित समय पर उत्तर दिया जावे॥ अति अवश्य जान कर आप के बहुमूल्य समय में हानि डाली गयी और आशा है कि इसके उत्तर से शीघ्र कृतकृत्य करेंगे॥ आगे शुभ॥

आप का आज्ञाकारी
क्षेमकर्णदास
मंत्री आर्यसमाज, मुरादाबाद

श्यामसुन्दर का हाथ जोड़ कर नमस्ते। आप के दर्शनों की मुझ को और सब सभासदों को बड़ी अभिलाषा है।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७७] **पत्र**

ओ३म्[4]

श्री मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री स्वामीजी महाराज दयानंद सरस्वती जी की चरन कमलों में अनुचर बलदेव की बहुधा शाष्टांग पहुंचे

---

१. यह पृष्ठ संख्या पञ्चमहायज्ञविधि के संशोधित (सं० १९३४) के प्रथम संस्करण की है।

२. उपर्युक्त ग्रन्थों के पृष्ठों का निर्देश करके जिन पाठों की ओर संकेत किया है। उनका संग्रह हम इस भाग के अन्त में प्रथम परिशिष्ट में दे रहे हैं।

३. यह पृष्ठ संख्या संस्कृत वाक्य प्रबोध के प्रथम संस्करण की है।

४. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १. पृष्ठ २१७-२१८ पर छपा है।

बाद नमस्ते के अर्ज यह है कि अनुचर ने एक कार्ड आप की खिदमत पेश किया था पहुंचा होगा मगर अनुचर को उस कार्ड का जबाब नहीं मिला वह यह था आप लंदन की तरफ यात्रा करना फरमावेंगे यह खबर अनुचर ने चलती हुई सुनी थी इस लिये अनुचर की यह अर्ज है कि अनुचर को भी लंदन देखने की इच्छा है सो जो मेरा काम था वह आप के पास बिना तनखा के किया करूंगा मगर रोटी शामिल खाऊंगा आगे आप की कृपा होगी तो इन चरनों की सेवा करूंगा—इस का जबाब कृपा के जल्दी दिलावें—पता यह लिखें बलदेव दरोगा के पास बांदनवाड़ा में—फक्त

ता० १९-९-८३ ई०[1] दास बलदेव

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७८] पत्र

ओ३म्[2]

अजमेर कालेज ता० १९ सितंबर १८८३,[3]

सत्य धर्म्मप्रकाशक श्रीमत् पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के पद पंकजों में अनुचर शुकदेव प्रसाद कृत नमस्ते विदित हो भेजा हुवा पत्र पण्डित शिवकुमार के पास भेज दिया परन्तु अभी तक उत्तर नहीं आया—वहां से आने पर आपके पास भेजा जायगा —मैंने छापेखाने का काम किया तो नहीं पर कभी कभी देखा है और दस पांच दिन में देखने से सब काम विदित हो सकता है—किसी राज्यस्थान में जहां की आब हवा उत्तम हो वहां कुछ हो जाय तो ठीक है आगे ईश्वरेच्छा और आपकी सम्मति के अनुकूल रहना सब से श्रेष्ट होगा—मुंशी जवाहरसिंहजी शाहपुरे से ता० १४ सितंबर शुक्रवार को यहां आये-शनिवार को पुष्कर देखकर-रविवार को आर्य्यसमाज में एक बहुत उत्तम सुललित व्याख्यान देशहितैषिता पर

---

१. आश्विन कृ० ३ सं० १९४० वि०।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २०-२१ पर छपा है।

३. आश्विन कृ० ३ सं० १९४० वि०।

देकर उसी रात्रि को जयपुर चले गये वहां दो दिन ठहरके सीधे लाहौर जायंगे शेष फिर-आश्विन कृष्णा ३ सं० १९४०

(आपका अनु० शुकदेवप्र० अजमेर)

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५७९] पत्र

॥ श्री ॥[1]

स्वस्ति श्री जोधपुरनग्रे श्रीमद् जगत्गुरु परिव्राजकाचार्य श्रीमद्-दयानंद सरस्वस्ति जी के चर्णारबिंद मे लालजी बैजनाथ का नमस्ते पौचे: और आप को पत्र: रजिष्टर: दिया था[2] जिस्मे: विठल भाणा कु: आप के पास: भेजणे का: हुकम: मगाया था: सो: आप ने अभि: तकु: उस्का: जबाब नहीं लीखा: इस बास्ते: छेला कागद: आपकु: लिखतेहे: कि: आप का मरजी: परमाणे: आणे के वास्ते उस्कु त्तइयार किया हे: और: आप ने बुलाया था: उस वक्त: वो गुजराथ मेगया था: अभि वो गुजराथ मे शे आया: जब उस्कु समजा कर: आपकु पत्र लिखा: और: वो जिवत्ते तक आप कि बंदगी करेगा: सो आपकु रखना मंजूर होवे: या ना रखना होवे: त्तो: उस्का: खुलासा: हमकु: लिख कर भेज देना: उस्कु चाकरी: बौत्त: मिलति हे: परंतु: आप का लिखणा: और: आप के आग्यानूसार: चलने वाला हे: इस वास्ते आपकु: अरज करते हे: के: फेर: हात्तमे: आदमी: आवणा: मुस्कल हे: सो: आप: पत्र का: उत्तर लिखना और: समाज की: स्थिति जेसी: आग लीखे माफक हे: और: हम आप के किरपासे: आनंद हे: पत्र का जबाब उसपः रः ठिकाना: भगवान्‌दाश: विहारीलाल सेठ: । इन कि दुकान ठिकाणा ममादेवी कर देना: संवत् १९४० आश्वीन् वदि ४ गुरु त्तारीक २० सप्त्तंबर:[3]

—:०:—

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २८५-२८६ पर छपा है।

२. यह पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ५६४, पृष्ठ ६८५ पर छपा है।

३. २० सितम्बर सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ५८०]　　　　　पत्र

॥ श्री राम जी ॥[1]

सिद्ध श्री जोदपुर सुभस्थान सरबवोपमा लायक सदा विराजमान सकलगुणानिधान श्री श्री सवामी जी म्हाराज श्री १०८ श्री दियानंद सरस्वती जी हुजूर साहापुरा सु सबलसिंह की नमस्ते डंडवत मालुम होसी अठा का समाचार आपकी करपा कर भला है आप का सदा भला परमेसवर रषे[2] ता मान परमआन्द होवे सदीव करपा सुभदरस्टा रषा वा तीस से वसेष रषावसी अपरचा में आपका दरसन करके यहा आया तव से आप की कीरपा सु आनिंद में हु आपका सरीर की कुसलता को पतर ईनायत फरमासी ओर यहा म्हाराजधीराज वो म्हराज कवार दोनों आपकी कीरपा से परसंन है ओर इन दिनो मे म्हाराजाधीराज के कान में बीमारी होगई थी जीस से आपको अरजी यहा का हाल की नही लीषी अब आराम है इतिलान अरज है ओर म्हाराज परताबसिंहजी वा रावराजा तेजसिंहजी पुना की तरफ से वापिस आये होगे तो उमरदानजी ने उस हाल से आप वाकफ करदेसी ओर एक रावराजा तेजसिंहजी के पास म उदेपुर म्हाराणा साबको म्हाराज साहाब के नाम को षत हो सो में दे आया था सो मगार भीजवा देसी ओर इस बारे में जो कोहरिजी तहरीर चावे तो लीषा देसी सो भेज देवा आपको उनकी तरफ से इस काम के बारे में इतमीनान हो तो जो इस बारे म तहरीर लीषावट वोरिकी को चावें तो लीषा देसी ओर यह हाल उमरदानजी कु फरमा देसी के यहां हम इस काम के बारे में उमरदान जी के भरोसे नचीते हैं यह आप उन को जरुर देसी सो कोसीस हमने के ओर वहा का हाल करपा कर लीषावसी जैसा हाल आप लीषोगे वेसा हाल श्री म्हाराजाधिराज को मालूम किया जावेगा ओर करपासु दरस्टी रषावसी १९४० असोज बुद[3] ७ ता० २३ सिप्टाम्बर[4]

दा: सबलसिंह

—:o:—

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २३०-२३१ पर छपा है।　२. इस पत्र में 'ष' को 'ख' पढ़ें।
३. अर्थात् बदी।　४. सन् १८८३, रविवार।

[पूर्ण संख्या ५८१] पत्र

।। ओ३म् ।।[1]

श्रीमान परमपूज्यनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य वर्य स्वामी जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चरण कमलषु बहुश: नमस्ते

मेरा समाचार श्रीमानों को प्रकट हो विद्याभ्यास जैसा आषाढ़ वदी द्वितीया से लेके भाद्रपद वदी १९ तक चला जाता था वैसा ही अब प्रारंभ हो गया है और स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीजी सहर सिमले सें सहर पनीपत को आने वाले हैं और मेरा व्यवहार पठन पाठन तथा पुस्तक खान पान आदि क्रिया बहुत रीति पूर्व मुज को सिद्ध है और बवासीर का रोग जाता रहा नीम की निमोली खाने से

आ० व० ९[2] ईश्वरानन्द

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८२] पत्र

ओ३म्.[3]

देहरादून. मिति आश्विन व० ७ स० १९४०[4]

श्री. १०८. स्वामी दयानन्द सरस्वती जी. महाराज.

राजस्थान जोधपुर

प्रतिष्ठित. आचार्य. साष्टांग प्रणाम.

दीर्घकाल. व्यतीत. हुवा. कि महाराज का कोई पालन पत्र प्राप्त नहीं हुवा. अतएव हृदय अतीव शोकातुर है. यद्यपि. महाराज के मंगल समाचार. मु० समर्थदान. और समाचार पत्रों द्वारा. सदैव

---

१. आश्विन वदि ९ सं० १९४० = २५ सितम्बर १८८३। परन्तु इस पत्र के नीचे श्री मुंशीराम जी की टिप्पणी है—'इस कार्ड पर डाक घर का मोहर २३ सितम्बर का है (देखो—उनके द्वारा सम्पा० पत्रव्यवहार पृ० २३) २३ सितम्बर को आ० व० ७ थी। अत: कहीं न कहीं भूल अवश्य है। हमने डाक घर की तारीख को प्रमाण मान कर यहां जोड़ा है।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३८७-३८९ पर छपा है। ३. २३ सितम्बर सन् १८८३।

विदित होते रहते हैं. तथापि. आप के शुभ हस्ताक्षर युक्त पत्र. देखने की अभिलाषा नित्यप्रति बनी रहती है. आशा है. प्रत्युत्तर प्रदान कर. शीघ्र, हम लोगों को भाग्यवान करगे.

उदयपुर. और शाहपुरादि राज्यस्थानों को इस वर्ष पवित्र कर महाराज ने. जो उपकार किया. सो तो ऐसे आनन्द का विषय है कि जिसको प्रगट करना. लेखनी की सामर्थ से बाहिर है द्वेशी और विरोधि जनों के मुख से महाराज को धन्यवाद देते. इस ही अवसर पर सुना है। मुन्शि समर्थदान जी. को भेजा हुवा मुद्रित धन्यवाद पत्र[1] श्रीयुत महाराणा जी की सेवा में यहां से भी भेजा गया था जिस का उत्तर भी आर्यकुल दिवाकर ने अतीव अनुग्रह और हर्ष सहित प्रदान किया है।[2] और जिस में श्रीमान् की पूर्ण हितैशिता, और देशानुराग प्रकाशित है हम लोगों के तुच्छ ज्ञान से कोई विधि ऐसी दृष्ट नहीं पड़ती कि जिस के द्वारा महाराज के अपार अपार उपकार का धन्यवाद समर्पण कर सकें. श्री जगदीश्वर को बारम्बार प्रार्थना है कि महाराज का शरीर चिरंजीव. रक्खें.

लाला रामशर्णदास जी की मृत्यु भी समाज के लिये एक सामान्य दुख नहीं है ।। उधर बाबु रामनारायण जी बाबु छेदीलाल के भ्राता का वृत्तान्त भी कैसा शोक जनक है महाराज ने सुन लिया होगा.

ईश्वर की इच्छा से गत जेष्ट मास में मेरी भार्य्या का भी मृत्यु हो गया. एक बालक तो आपने देख ही रक्खा है दूसरा एक उस से छोटा २।। वा तीन वर्ष की आयु का है सो दोनो को दुख हुवा.

यहां समाज की अवस्था कुछ प्रशंसनिय नहीं है जहां तक मेरा सामर्थ चलता है कोई उद्योग शेष नहीं छोड़ता हूं. नहर के एकाऊंटेन्ट बाबु लक्ष्मणसिंह जी भी अत्यन्त सहायता देते है येह महाशय आर्य्य

१. यह आर्य्यसमाजों की ओर से महाराणा सज्जनसिंह जी को समर्पित धन्यवाद पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ १०३५-१०३६ पर छपा है।

२. धन्यवाद पत्र के उत्तर में महाराणा जी की ओर से लिखा गया पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ १०४१-१०४२ पर छपा है।

मन्दिर बनाने के अर्थ धन एकत्र करने में बहुत उद्योग कर रहे हैं जो परमात्मा आशा पूर्ण करे

बालादत्त के लेख के ऊपर मैंने उस का सब वृत्तान्त लिख कर भारत मित्र को भेजा था परन्तु शोक है कि विस्तार अधिक हो जाने से उक्त लेख नः छप सका बालादत्त तो जो आप के शिष्यों के भी अनुचर शिष्य है उन के सन्मुख भी बोलने को समर्थ नही है यहां उस की सब कलई खुली हुई है.

अब जोधपुर के समाचार जानने की सब किसी को उत्कंठा हो रही है अनुग्रह सहित. उत्तर द्वारा विदित कीजिये.

सब सभासदों का नमस्ते.
आप का आज्ञाकारीशिष्य
कृपाराम

—:•:—

[पूर्ण संख्या ५८३] **पत्र**

ओ३म्[1]

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी जी महाराज कोटिश: प्राणामानन्तर ज्ञात हो कि श्रीमान का कृपापत्र आया[2] समाचार विदित हुआ आदिमी के विषय में जो लिखा सो यहां तो कोई नहीं मिलता है एक आदमी नारनौल में मिला था आप को लिखा भी था[3] परन्तु आप का उत्तर फिर कुछ नहीं मिला इस लिये अबतक ढील रही अब फिर नारनौल में ढूंढ की जायगी मिलने पर आपको सूचित करूंगा और द्रव्यादि के विषयक जो लेख आया उसका उत्तर मेरी समझ में यह आता है कि यदि अल्प व्याज अपेक्षित हो तो नोट लेना उचित हैं क्यों कि उस्से बखेड़े नहीं है और जो आप की अनुमत्यनुसार प्रबंध किया जाय जैसा कि आप का लेख है मुझे तो

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३२९-३३० पर छपा है ।

२. ऋ० द० का यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ९२२, भाग २, पृष्ठ ९३४-९३६ तक छपा है ।

३. यह पत्र हमें नहीं मिला ।

किस प्रकार कोई बात अस्वीकृत नहीं है परन्तु इसमें परामर्श अपेक्षित है पत्र लेख से यथा रीति इसका प्रबन्ध न हो सकैगा अतः यदि शीत-काल में श्रीमान् इधर कृपा करें वा ऐसे समीपस्थ हों जहां हम लोग सुगम से आपके पास उपस्थित हो सकें तो अच्छा होगा।

और यह भी इस व्यवहार में प्रथम जानने योग्य बात है कि आप के पास द्रव्य कितना है लिखयेगा जिस से तदनुसार सम्मति दी जाय यह पत्र मैंने केवल अपने विचार से लिखा है ८।१० दिन में अन्तरङ्ग सभा होने वाली है उसमे आप का पत्र सभामध्य किया जायगा सभा की जो सम्मति होगी फिर लिख जावेगा और भरतपुर में कोई अपना सम्बन्धी वा मित्र नहीं है जो कि चोर[1] का पता लगा सके और खटाई आप लिये अबतक रखी है आपने लिखा नहीं सो अपेक्षित हो तो लिखयेगा।

किम्बहु महाप्राज्ञेषु   ता० २४ सि० ८३ ई०[2]

ह० श्रीमदीय दुर्गाप्रसाद

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८४]   पत्र

ओ३म्[3]

२५ सिप्तम्बर १८८३[4]

श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वती समीपेषु–

महाशय नमस्ते।

भाई जवाहिरसिंह प्राइवेट सिकटरी महाराज शाहपुर के लिखने से विदित हुआ कि आप मसौदे[5] होते हुए कलकत्ते की नुमायस में

१. चोर का पता लगाने के सम्बन्ध में भी ऋ० द० ने पूर्व (पृष्ठ ७१४ टि० २) निर्दिष्ट पूर्ण संख्या ९२२ के पत्र में लिखा था।

२. आश्विन कृ० ८ सं० १९४० वि०।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३२२-३२३ पर छपा है।

४. आश्विन कृ० ९ सं० १९४० वि०।

५. अर्थात् 'मसूदा' (ब्यावर के निकट)।

जायंगे–। इस समाज का उत्सव ७ अक्टूबर सन् १८८३ ई० का है जिस के लिये पहिले आपकी सेवा में निवेदनपत्र भी भेजा है जहां तक संभव हो मेरठ होते हुए जायं—। क्यों कि आप को इधर आये हुए दो वर्ष से अधिक हुआ सभ्यगण आप के दर्शनाभिलाषी हैं। आप कलकत्ते अवश्य जायं वहां जाने से समाज स्थित होगा और लोगों का बड़ा उपकार होगा चिरकाल से वहां[1] ......आप के कलकत्ते में पधारने के लिये उत्कंठित होरहे हैं। यहां के बहुत से सभासद और मुन्शी लक्ष्मण स्वरुप वकील प्रधान समाज और मैं और कई लोग भी आना चाहते हैं परन्तु जब तक कोई स्थान निश्चित पहिले से न हो जाना कठिन जान पड़ता है यदि आपने प्रबंध स्थानादि का किया हो तो उस्से सूचित कीजिये जो हम लोग और अन्य सभासद आने का प्रबंध करें। और फर्रुखाबाद में जो लाला जगन्नाथदास और बाबू दुर्गा प्रसाद में कुछ परस्पर विरोध होगया है उस की निवृत्ति के लिये एक पत्र अवश्य भेजिये नहीं तो समाज की हानि होगी। और आप मसौदे कब तक जायंगे इस से भी सूचित कीजिये।।

आप का चरण सेबक

रामशरदास

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८५] **पत्र**

आर्य्यसमाज अजमेर[2]

नं० ५६६ ता: २५-९-८३[3]

श्री स्वामी जी महाराज.

नमस्ते—

आपकी रजिष्टरी चिट्ठी[4] पहुंची थी और उसका प्रबन्ध भी

---

१. जहां लीडर अर्थात् बिन्दियां हैं वह भाग असल पत्र का फटा गया है। मुंशीराम।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १९१-१९३ तक छपा है।

३. आश्विन कृ० ९ सं० १९४० वि०।

४. यह पत्र हमें नहीं मिला। 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ९२३, भाग २, पृष्ठ ९३६ पर 'पत्र-सूचना' छापी है।

अर्थात् उस मनुष्य का हुलिया पुलिस में लिखवा दिया था और कोतवाल ने भी सब सिपाहियों को सुना दिया था कि जो कोई उस को पकडके लावेगा ५०) पारितोषिक पावेगा, पं० भागराम जी से जो पूछा गया तो उन्होंने कहा कि स्वामीजी की रजिष्टरी चिठ्ठी हमारे पास नहीं आई. केवल आध आने[1] की आई थी. उसमें चोरी का हाल लिखा था हमने उसी दिन उसका विज्ञापन ठौर ठौर लगवा दिया परन्तु अभी तक कुछ पता नहीं लगा—

स्वामीजी महाराज मारवाड़ राज बड़ा विकट है बहुधा चोर उठाईगीरे बसते हैं वह स्थान आप जैसे महात्माओं के निवास करने का नहीं है यदि राजा साहब चाहते तो क्या चोर न पकड़ा जाता, इस कारण यदि वहां कुछ लाभ नहीं दिखता तो उसको छोड़ शीघ्र पधारिये. मैं जानता हूं कि यदि आप इतने दिन इन्दौर, कलकत्ता, मदरास, स्थानों में भ्रमण करते तो बहुत कुछ उन्नति होती।

भारतमित्र में जो काशी के पंडितों का विचार छपा है वह आप पर विदित हुआ होगा. उसका उत्तर देना भी योग्य है, कलकत्ते की धर्मसभा से एक पत्र "धर्मदिवाकर" निकलता है उस में भी आपके विषयों पर तर्कणा छपा करती है, आगरे में ज्वालाप्रसाद भार्गव ने भी वेदभाष्य करना आरम्भ किया है देखिये ये मन्डलियां क्या करती हैं, पं० मुन्नालाल इस समाज का पूरा विरोधी हो गया है और इस का सहायक कृपण नाथूराम हुआ है। "राम मिलाई जोड़ी एक अन्धा एक कोढ़ी" यह कहावत इन पर खूब फबती है गत सप्ताह के मित्रविलास में पं० मुन्नालाल ने अपने एक मित्र "कल्यानसिंह" की आड़ लेकर मुझ पर और आर्य्यसमाज पर और पत्र देशहितैषी पर आक्षेप किया है, इस कारण इस समाज का मन उसकी ओर से बिगड़ गया है. पत्र मित्र विलास को आपके अवलोकनार्थ भेजता हूं अवलोकन करने के पश्चात् वह पत्र इस समाज को लौटा दें, क्योंकि इस पत्र का समाज में रहना भी अवश्य है. अब आप लिखिये कि अजमेर में कब तक पधारेंगे और आपकी कृपा से सब प्रकार का आनन्द है—

---

१. उस समय पोस्ट कार्ड का मूल्य १ पैसा (१।६४ पसा) था और आध आना अर्थात् २ पैसा लिफाफा का मूल्य था। हमारे संग्रह में ऐसे कई पोस्ट कार्ड और लिफाफे संगृहीत हैं।

पं० भागराम जी, और सरदार भगतसिंह जी और सब सभासदों को ओर से नमस्ते.

आपका दास
कमलनयन शर्म्मा
मंत्री आ० स० अजमेर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८६] **पत्र**

॥ श्री ॥[1]

श्रीमत् परमहंस परिब्राजकाचार्य स्वामी जी महाराज श्री १०८ श्री दयानंद सरस्वती जी की सेवा मैं

॥ एक पत्र आपका मेरे पास आया वो श्रीमानों की दृष्टि गोचर करा दिया गया और येक पत्र आपका श्रीमांन् के पास आया था जिसमें सर्प बिच्छू ज्वर विसमज्वर मंदाग्नी वुद्धि बर्धक आदि परिक्षित ओसधिये लिषी थी[2] वो पत्र महासयों के पास था और औसध्यो का नाम कंठस्त रषने के अभिप्राय सें पत्र को पास रषते थे सो वो पत्र षोया गया इस कारण सें श्रीमांन् के आग्यानुसार आपकी सेवा मैं निवेदन किया जाता है के आप उन औसधियों का नाम और लेंने की विधि फिर लिष भेजैं—और इन दिनों मैं श्रीमांन् का चित्त ज्वरामय सें अप्रसन्न रहा था सो अब प्रसन्न है और आपका प्रयाण जोधपूर सें कब होगा और कहां पधारनां होगा सो कृपा करकें लिष भेजैं और जोधपुराधीसों का बरताव अब कैसा है और वहां के महासयों का वर्तात्र कैसा है और आपका वहां पधारनां उन लोगों कों कितनां उपकारी हुवां सो यदी लिषने मैं विसेस परिश्रम न हो तो दया करकें लिष भेजियेगा—और कविराज जी आंष का इलाज करानें कुं पुनः ईंदोर गये थे सो अब चित्तोड़ आये हैं नेत्रों मैं आराम है और अब

---

१. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग २, पृष्ठ ११७-११८ पर छपा है।

२. यह ओषध-पत्र हमें नहीं मिला 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ६०२, भाग २, पृष्ठ ६१६ पर सूचना मात्र छापी है।

दो सप्ताह तक चितोर में फिर रहैंगे सो सूचनार्थ लिखा है सम्वत १९४० आश्विन कृष्णा १० तारीष २६ सितंवर॥[1]

आपका दास
बारहट कृष्णसिंह

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५८७] पत्र

ओ३म्[2]

श्रीमत्परम पूजनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री ६ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी
महोदय चरण कमलेषु

अपंरच इन दिनों में आपका कोई पत्र नहीं आया और न यह विदित हुआ कि आपका जोधपुर से कब और कहां को प्रस्थान होगा और न में इन दिनों में आप को लिख सका मेरा शरीर कुछ अस्वस्थ सा था —अब आशा है कि आप अनुग्रह करके सविस्तर समाचार विदित करंगे—

श्रीमानों का श्री अंग आरोग्य है कविराजा जी के नेत्रों का इलाज भी हुआ है और होना है—

तथा अभी पुरोहित जी श्री उदयलाल जी आपके समाचार पूछने को मेरे पास आये हैं उनके समक्ष ही यह निवेदन पत्र लिखा है—सो आप तत्रस्थ समाचारो से सूचित करेंगे।

श्री चरण सेवक
ह० मोहनलाल विष्णुलाल पंडया[3]
२६—९—१८८३

—:०:—

१. २६ सितम्बर सन् १८८३।

२. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग २, पृष्ठ १३ पर छपा है।

३. आश्विन कृ० १० सं० १९४० वि०।

[पूर्ण संख्या ५८८] पत्र

ओ३म्[1]

सिद्धिश्री परम पूजनीय परम उत्कृष्ट पूरणदयालु सकलमनुष्यरक्षक सर्व जगद्धितैषी चतुर्णां वेदानामप्यवलोकनेषु सकल जगद्गुरू परमहंस परि व्राजकाचार्य्य वय्य श्री मद्गुरू श्री स्वामी जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी परमपूज्य चरण कमलेषु बहुश: नमस्ते।

समाचार श्रीमानों को विदित हो कि इस वर्तमान समय पर सहर पानीपत के लोगों से आर्य समाज की स्थापित होने पर अत्युत्मता पाइ जाति है। अब इहां पर समाज भि: शीघ्र तयार होने वाला है। हे परम पूज्यनीय परमैश्वर्यवान् जगद्गुरू आपकी करुणापूर्वक इहा के लोगों का भी शीघ्र ही सुधार होने वाला है। परन्तु इस जग: पर पोपलीला बहुत दिवस से आर्य्यों के आर्य्य स्वभाव को आच्छादित कर रही थी। सो अब ईन लोगों का हाउ और कोको निकले चले जाते हैं और एक हाउ दूसरी कोको ये दोनू पोपलीला वाचक हैं इहा श्रीयुत लाला कसुंभरीदास जी समाज के स्थापित करने पर कटिबद्ध हैं १ दूसरे लाला सालगराम जी समाज की उन्नति करने वाले हैं २ तीसरे लाला ताराचन्द ३ चौथे लाला मुर्लीधर ४ पंचमे गणेशीलाल ५ षष्ठमें लाला ज्वालाप्रसाद बाबू ६ सातवें श्रीयुत पण्डि[त] श्री निवास जो कि समाज के पण्डित सबके अध्यापक रखे गये हैं।

श्रीमानों को विदित हो कि एक नवा समाज सहर पानीपत में भी हो गया है। रुपये ५) ऋग्वेदभाष्यभूमिका आप अवश्य ही भिजवाय दीजियेगा १ आर्यदेशरत्नमाला दोय प्रति ≡) और सन्ध्या की २ प्रति ।।।) और सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्यजुर्वेदादिकों के अङ्क भि समाज में आय करें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग प्रबन्धकर्ता के हस्ते आया करें आप आज्ञा दे दिजियेगा कि मुंशी समर्थदान ईस समाज में पुस्तकों के अंक भेजा करें और इहां के लोग मणीआडर द्वारै रुपया भेजा करेंगे मेरा शिष्टाचार मुंशी समर्थदान से जेष्ट मास मैं प्रयाग जाने से नमस्ते भी बंध हो गई।

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २४-२५ पर छपा है।

श्रीयुत रामानन्द ब्रह्मचारी को बहुश नमस्ते

श्रीमानों के हस्तै पुस्तक तथा आपका पत्र सहर पानीपत के समाज में सदैव आवता जाता रहगा तों हम लोगों को बहुत हो लाभ पहुचेगा ।।

जिला करनाल तसील थाना पानीपत

दुकान श्रीयुत लाला मुसद्दीलाल तथा कमुंभरी दास के पास संवत् १९४० आश्वनी वदी ११[1]

ईश्वरानन्द सरस्वती सहर पानीपत

और सहर सिमेले से स्वामी आत्मानन्द जी आने वाले हैं।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५८९]　　पत्र

।। ओ३म् ।।[2]

।। सिद्ध श्री जोधपुर शुभ स्थाने सर्व शुभ ओपमा सकल गुण निधान सर्व शास्त्र सम्पन्न श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्य्य-त्वाद्यनेक गुण सम्पद्विराजमान श्रीमद्वेद विहिता चार धर्म्म निरूपक श्रीमत् स्वामी जी महाराज श्री श्री १०८ श्री श्री दयानन्द सरस्वती जी महाराज योग्य मसूदा से द्विवेदी छगनलाल का अनेकधानमस्ते मालुम हावे अत्र कुशलमस्ति तत्रस्त्वेव अपरंच आज पत्र १ रजस्टरी श्री हिजुर साहेबा के नाम और कृपा पत्र ऐक मेरे नाम आया जिस्में श्रीमत् के पधारने की बाबत में और सवारियों बगेर के बंदोबस्त के लिये लिखा जिससे चित्त को बहुत प्रसन्नता हुई श्री हिजूर साहब की बहुत अभिलाषा थी कि जलदी पधारैं तो ठीक हैं सो परमेश्वर ने कृपा की सो अब श्रीमत् के दर्शन जलदी ही होवेंगे और श्रीमत् के लेखा-नुसार हाथी वगेरह सवारियें सवार व पैदल इस्टेशन नये नगर☼ पर मोजूद पावेंगे और प्रतिपदा के दिन ऐक आदमी खारची[3] के इस्टेशन आ जावेगा और यहां सब तरह से प्रसन्नता है संवत् १९४० आश्विन कृष्णा[4] ११

---

१. २७ सितम्बर सन् १८८३ ।　　☼ अर्थात् 'ब्यावर' स्टेशन पर।

२. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ६७ पर छपा है ।

३. खारची स्टेशन का नाम सम्प्रति 'मारवाड़ जंक्शन' है।

४. २७ सितम्बर सन् १८८३ ।

[पूर्ण संख्या ५९०] **पत्र**

श्री[1]

ॐ श्री ब्रह्मवेदाय[2] नम:

स्वस्ती श्री योधपुर माहासुभस्थानेसर्वोपमा

वीरजमान अनेक उपमा योग्य श्रीमत्परमहंस

परीव्राजकाचार्य तीर्थ स्वरूपी श्री परम गुरू

स्वामी जी श्री १००८ श्री दयानन्द सरस्वती जी माहाराज योग्य श्री उदयपुर थी ली आपना दरशन बीसे अभीलाशी आज्ञां कीत अहोरात्र चीतवन करनार सेवक अथरवणी हीरालाल तथा कनीष्ट भ्रातु मांणकलाल ना साष्टांग डंडवत नमस्ते पवीत्र सेवावी से अंगीकार करसो वीशेश वीनंती अछे आपनी आज्ञानुसार श्री दरबार[3] मे प्रतीदीन दो वषत अग्नीहोत्र होता हे वीशे आप जेरीतथो बंदोबस्त करोछे तेन परमांणे थयां जाय छे कांइ पण कसर पडती न थी वली श्री जी अत्यंत प्रसन्न मे हे ओरहुं सेवकनी अंतस्करण थी आला फकत आपना चरण कमलनी पवीत्र शेवा वीशे अहोरात्र शुद्धांतस्करण थी चितवणीर पुछे तेवी से कांई अश्चर्य नही समजवु वीशेश वीनंती अछे जे अपनी आज्ञानुसार श्री दरबार ये अनुष्टानथ ग्रुह तुते वीशे पूर्णाहुतीनी वषत आप समक्ष श्री हजुरे हुकम फरमावो हतो के वेदाभ्यास करवा साइ अथरवणीना भाई ने मास १ ना रूपया ३) हरबार थी मलां जासे ओर यजुरवेदीना लडका ने मास १ ना रूपीया १) रोजगार नो मलसे परंतु यजुरवेदी ने तो कांइ गरज जेवुजणातु न थी ओर मारी तो अभीलाशा फगत आपनी आज्ञानुसार छेने छोकराने नर्मदा कीनारे गाम कन्याली[4] अभ्यास साइ मुकवानी मरजी छे ते वीशे आपना सेवके पुरोहीतनु उदेलाल जी ने कयु के स्वांमी जी माहाराज अत्रेथी जे दीवस कुंच मुकाम पधारतीव जे आपने हुकम

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ २३८-२४१ तक छपा है।

२. ब्रह्मवेद = अथर्ववेद। पत्र लेखक प० हीरालाल अथर्ववेदी थे।

३. अर्थात् शाहपुराधीश नाहरसिंह।

४. कन्याली = चाणोदकन्याली।

फरमावो हतो के अथरवणीना भाई साई दरबार थो अरज करी रोजगार साबत कराब जो ते वीशे आप अरज करो हवे मारेपण गुजरात तरफ जवानु छे मारो कुटम्ब सरवेलुण वाडे छे मारे लेवा साइ जवुपर से माटे मारा भाई ने कन्यांली मुकीने लुणा वाडेजइस त्यारे उदेलालनु ये कयुके स्वामी जी उपर पत्र लाओ छे ते थी हुकम आवा थी अरज करी सुबली कोइ बाबत अेम पणके छे के अनुकुल देषी ने अरज करांगा परंतु कांइ अेक पणव तनुडे काणु न थी अरज पण करता नथी तेमपुलाशा जबापयण देता न थी ने अेवात्तनी मस-रामसरी करे छे माटे माटे ताबेदारनी अरज अेछे जेह दीनदयाल आप पत्र दवारे उदेलाल जी तरफ वा पंडा मोहनलाल जी तरफ हुकम फरमावसो त्यारे अरजथ से देवी ना कांई था यते वुनथी जणा तुमारे मरजी मुजब मुनासब हुकम फरमावसो तेवी आशा छे मारे तो फगत आनो भई सो छे वली आ संसार वीशे उत्तम पदारथ आपने जांणु छु माटे गरीब ऊपर उपकार जाणी ताकीद थी दया करी ने पत्र वांचतां प्रती उतर लावसो अेवी आशा छे साथी ने मारा कुटम्ब थी वीयोग थयाने वरस १।। नो आसरा थे यो छे माटे अत्रे हुं गणो दुषी छु माटे आपना पासरे जामा गुछु आपनो गुण कोई दीवस पण भुलवानो न थी मारे हे दीन दयाल परबरस करी हुकम फरमावसो अेज वीनन्ती ताबेदार लायक कांम फरमाव सो आपना सरीरनो यतन रषावसीं १९४० आ सो वदीं १२ गुरें[1]।

अहो रात्र श्री वेद पुरुष आगल प्रार्थना करुछु के हे इश्वर स्वांम-जी माहाराजना संपुरण मनोर्थ परी पुरण कसोला. सेवक हीरालाल ना नमस्ते सेवा वीसे अंगीकृत करसो।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९१] पत्र

।। श्री: ।।[2]

।। श्री माहाराजी के पास पांचे आप का पतर आया और आपने

---

१. २८ सितम्बर १८८३। आसोज बदि १२ को शुक्रवार था।

२. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, १, पृष्ठ ९१ पर छपा है।

लिषा सो बौत ठीक है प्र रात कु बौत गरमी थी सो सब रात मुज को नीद नही आई तो फजर को चार बजे मैं उट के बाहर आया तो उस वषत कोई आदमी व कांम न था तो मै हाथ मु धो के फीर मे पीलंग पर लैट गया तो जागता था सोया नही कीसी ने मैरी जुट सीकायत करी है माफ कीजीयें और हफतै मे यै दीन मंने छुटी का अपनै गर के कांम मे रषा है फजुल नही जाने दुगा आप बैफीकर रहै और मेरा बौत बौत ददवत मालम हो।

P. S.

TajSingh

स० १९४० अ० व्द० १३[1]

नं० ७०

महाराजे प्रतापसिंह वा तेजसिंह

(जोधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५६२] **पत्र**

ओ३म्[2]

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य वर्य्य श्रीमच्छुद्धस्व रूप विद्या विनोद केषु स्वाश्रम धर्म मर्य्यादा परिपालन तत्परेषु श्री स्वामी जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चरण कमलेषु बहुशः नमस्ते श्रीमानों के पास जो पत्र हमारी तर्फ से भेजा गया है और उक्त पत्र द्वारे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मंगवाने की जो आपसे प्रार्थना करी गई है सो जब तक हम लोग रुपये नही भेजें तब तक हमारी तर्फ शहर पानीपत को पुस्तक रवाने नही करना जी रुपये आश्वनी वदि अमावस्या को भेजे जायेंगे और आत्मानन्दजी सिमले से इधर तीस कोश कालिका में विद्यमान हैं

(आश्वनि व० १४ रविवार)[3]

ईश्वरानन्द

सहर पानीपत

---

१. अ०=असूज=आश्विन बदी १३। २९ सितम्बर सन् १८८३।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १, पृष्ठ २६ पर छपा है।

३. सं० १९४० तदनुसार ३० सितम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ५९३] पत्र

[जोधपुर नरेश के अन्तःपुर की दासी का पत्र][1]

आप से एक अरज म्त्रि की तरफ सु मालुम होय कि वो स्त्रि जोधपुर महाराजा की स्त्रि के पास दासी ह सो वो मेरे पास पठाती है और धर्म की इच्छा पण पूरी ह सो उनके विघन ह कि जोधपुर महाराजा के पास मरजीदान मुसलमान रता सो वो जबरदस्ती सु अन्याय कर हे मन उपरान्त जो उसके कर्णो नही कर तो राजा मे कुछ जुटी साची वात कर के कैद करा देवे तथा ओर कोई तर सु उनको फजीती कर देव जीण सु कार्णों नहीं करतो ओ दुःख ओर उसका मज भजब कर तो नरग की निसाणी ह सो अब मन कारणो चाही जे ओर से इसका फन्दा मासु निकरन बार्का उद्यम तो कर रहि हूं सो परमेश्वर की किरपा करने बचुं तो बचु सुकुछु ओर मैं आप मों करूं हूं कि पश्चातायुं के लिये ओर आगे बण कांही करणो चाहिये जिससे में पापसुं बचु ओर द्रिव्य से तथा सरीर सु मारी सामर्थ होव जिस समुझ वंदउ मुकतु ओर मांस तथा मद्य खान पान तो में सब छोड़ दियो ह ओर अब मारे वास्ते आप फरमाव जिण मुजव करूं अ समाचार दुसरान फुरमाव नहीं सो इस पत्र को जुवाव लीख नहीं रावसी।

—:o:—

१. आगे मुद्रित पत्र प० चमूपति सम्पा० 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २ की भूमिका पृष्ठ [ङ, च] पर छपा है। इसके विषय में पत्र से पूर्व प० चमूपति जी लिखते हैं— 'जोधपुर नरेश के अन्तःपुर में रहने वाली एक दासी की राम कहानी है। उसे राजा के किसी मुसलमान मुसाहिब के कुत्सित अत्याचारों की शिकायत है। दासी के हृदय में आत्म-सुधार की पुण्य कामना उदय हुई है। इसी से वह इस पत्र द्वारा ऋषि के पतित-पावन चरणों में आई है। पत्र एक रद्दी से कागज पर टूटे फूटे अक्षरों में लिखा हुआ है।'

इस पत्र पर तिथि तारीख नहीं है, परन्तु ऋ० द० के जोधपुर निवास काल ३१ मई १८८३ से १६ अक्टूबर १८८३ के मध्य किसी समय लिखा गया है। इससे हम जोधपुर प्रकरण में इसे सितम्बर १८८३ के अन्त में रख रहे हैं।

[पूर्ण संख्या ५९४] पत्र

ओ३म्[1]

श्रीयुत मान्यवर विद्वज्जन भूषण श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री पण्डित स्वामी दयानन्द जी महाराज

अभिवादन आपुकी कृपा से मे आनंद से हूं आपुकी प्रशन्नन परमात्मा से चाहता हूं पत्र आपुका मेरे पास आया[2] बड़ा हर्ष हुआ आपुके लिखने माफक कहार तलाश क्या ऐक ने नोकरी करना चाहा परन्तु नोकरी ३) रू: महीना कहिता है मै २) कहे थे ओरू यह भी कहा है कि का अच्छा देने पर ३) भी होसक्ते है ओरू भीमसेनि को मैने यह पत्र आपुका आया था वुह सुना कर समझा दिया उन्होने ईकरार किया है कि मे श्रीयुत यानी आपुकी नाराजो किसी तरह से न करूंगा जदि करेंगे तौ अपने किये को पहुंचेगे

मिती कुआर सुदी १ संम्वत १९४०[3]

आपुका आज्ञाकारी

जालिमसिह

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९५] पत्र

॥ ओ३म् ॥[4]

आप्तं चिन्तश्रवस्त मोनिरस्तंसत्यं परंधीमहि वेदादिष्वपलब्धिकारणतमं सूर्य्येवविभ्राजकम् विद्यासुसकलासुपूर्णप्रभुतांशान्तं यतीनां यतिम्, निर्जीत्यखलुसत्यशास्त्रविद्रुहः काशीस्थजान्दिग्जान् [॥१॥] नीत्यास्वस्सक्तास्त एवतस्मिन्नारूढसत्पन्थिनः कारूण्यैकनिधिं समस्त

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ९५ पर छपा है।

२. यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ९२०, भाग २, पृष्ठ ९३३-९३४ पर छपा है।

३. २ अक्टूबर सन् १८८३।

४. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३८-३९ पर छपा है।

जगतामेकं विशुद्धं वरम् निर्धूतंसकलंभ्रमंहिमहतःमज्ञानजं कल्पषंदत्ता तेभ्योऽविद्यया विरहिता विद्याचतत्संछिदा ॥२॥ आर्य्यावर्त्तपतिहियेन कुशलं लब्धंविलुप्तंधनं तन्नित्यंसमदर्शिनंचसततं सेव्यं जनैः सर्वदा संत्यज्य मदमोहमानसहितमागच्छत तत्पदं पाण्डित्यं किमुब्रह्मशास्त्ररहितं कस्तेन संस्पर्द्धते ॥३॥ ब्रह्मस्थसद्गुरोतुनंमूलत्राणाजगत्पते गुजरावालकेवासः जातोममसुनिश्चितः ॥४॥ शमत्रकृपाचार्विनु वर्त्तते श्रीमतः किल सहजेरितृमिदम्पत्रंगच्छत्वासुजगत्पदम् ॥५॥ भंगतः पत्रं न प्रेषितं तत्रस्थः अतएवतत्रगमनं न कृतम्, श्रीमतः दर्शनंकदाभविष्यति ममचित्तस्य वृत्तिमहत्पदरजप्रवृत्ता सं० १९४०[1]

आप का दास

सहजानन्द सरस्वती

गुजरावाल अकतूबर ता० २[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ५९६] पत्र

ओ३म्[3]

सिद्धिश्री परमपूज्यनीय परमहंसपरिव्राज्यकाचार्य वर्य्य श्री १०८ श्री स्वामी जी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी चर्ण कमलेषु निवेदनमिदम्

निवेदन आपसे यह है के जो प्रथम पत्र आप के पास भेजा था[4] उसमें पुस्तकों के नाम भ्रम से कछू अधिक वा न्यवन लिखे गये थे सो उक्त पुस्तक श्रीमानों को भी प्रकट हो जावें ऋग्वेदादी भाष्यभूमिका पुस्तक २ वेदांत ध्वांत निवारण ४ पञ्चमहायज्ञ बिधी ४ आर्य्यदेशरत्नमाला ४ सत्यार्थप्रकाश के अंक भी अपनी दयादृष्टी पूर्वक भिजवा देने चाहिये जो उक्त पुस्तकों के दाम बैदिक यन्त्रालय प्रयाग में श्रीयुत बाबू ज्वालाप्रशाद भेजा करेंगे तथा ऋग्यजुः के भी अंक भिजवा देने चाहियें जी उक्त रीति से दोनों बेदों के भी दाम उक्त बाबूजी भेजा करेंगे ॥ ठिकाना शहर पानीपत जिले करनाल शहर

१. आश्विन शुदी १। २. सन् १८८३।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १०-११ तक छपा है।

४. यह पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ५८८ पृष्ठ ७२० पर छपा है।

पानीपत में दूकान लाला चिरंजीलाल कन्हैयालाल बजाज की पग
(पानोपत)**ईश्वरानन्द सरस्वती** सम्वत १९४० आ० शु०[1] शुकवार ॥

गोकरुणानिधि की २ वर्णोच्चार शिक्षा १ संस्कृतवाक्य प्रबोध १ अव्ययार्थ १ सन्धिविषय १ गणपाठ १ धातुपाठ १ और जो नामिक से आदि लेके शेष दामों में पुस्तक आवती हों तो श्रीमानों को उचित है कि अपने क्रिपापात्र की तर्फ भेज देवें और उक्त दामों से किराया भि पुस्तों कों का बिडा जाय

ईश्वरानन्द सरस्वती का श्रीयुत रामानन्द ब्रह्मचारीजी बहुधा नमस्ते

पानीपत जिला करनाल

बाबू ज्वालाप्रसाद का श्रीमानों के चरणकमलेषु बहुधा नमस्ते पहुंचे ?

--:०:--

[पूर्ण संख्या ५९७] पत्र

ओ३म्[2]

आर्य्यसमाज
करनाल

श्रीयुत मान्यवर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज नमस्ते ॥

विदित हो कि यहां श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीजी के उपदेश से आर्य्यसमाज स्थापित हुई है और इस समाज में मुन्शी शिवप्रसाद साहब मजिस्ट्रेट व बाबू गोपालदास साहब इञ्जीनियर करनाल उप-प्रधान है इस लिये आप से निवेदन करते हैं कि आप कभी कृपा कर के यहां सुशोभित हों कि यह महा पोपों का नगर है और ७ अक्तूबर को स्वा० आ० स० जी यहां से जावेंगे आप सदैवकाल इस समाज पर कृपा दृष्टि रक्खें ५ । १० । ८३[3]

गोपालसहाय

मन्त्री आर्य्यसमाज, करनाल ।

---

१. इस पत्र में तिथि का उल्लेख नहीं है। आश्विन शुक्लपक्ष में शुक्रवार ४ चतुर्थी तथा ११ एकादशी को पड़ता है। इस पत्र के प्रारम्भ में जिस पत्र की ओर संकेत है, वह आश्विन वदि ११ सं० १९४० (२७ सितम्बर १८८३) का है। (द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५८८, पृष्ठ ७२०)। अतः सम्भव है यह पत्र आश्विन शु० ४ शुक्रवार ५ अक्टूबर १८८३ को लिखा गया होगा।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३०७—३०७ पर छपा है। ३. आश्विन शु० ४ सं० १९४० वि०।

[पूर्ण संख्या ५९८] पत्र

॥ ओम् ॥[1]

॥ सिद्ध श्री जोधपुर शुभ स्थाने सर्व शुभ ओपमा सकल गुण निधान सर्व शास्त्र संपन्न श्रीमत परमहंस परिव्राजकाचार्य वर्य्य त्वाद्यनेकगुण सम्पद्विराजमान श्रीमद्वेद विहिता चार धर्म्म निरूपक श्रीमत् स्वामी जी महाराज श्री श्री १०८ श्री श्री दयानन्द सरस्वती जी महाराज योग्य मसूदा से द्विवेदी छगनलाल का अनेकधा नमस्ते मालुम होवे अत्र कुशलमस्ति तत्रास्त्वेवम् अपरञ्च कृपापत्र श्रीमत् का आया[2] जीसमें लिखा कि आश्विन वदी १३ को बर्षा बहुत हुई इस्कारण अभी ८-७ दिन नही आना होगा और आने के पहले सूचना की जायगी आदि सो अरज है कि इस कृपा पत्र के आने से पहिले ही सब तरह से हाथी रथ वगेरह सवारीयां सवारों और वाग में बीराजने का बंदोबस्त कर दीय्या गया था और मनकरण कों खारची[3] के इष्टेसन् भेज दीया था सो आज दस बजे मनकरण यहां आय्या है और श्री हजूर स्हायबां के और हम सब के बहुत् उमंग लग रही थी की अत्र तो जलदी हि दर्शन होवेंगे सो फेर कमनसीबी से कर देर हो गइ परमेश्वर से प्रार्थना है कि श्रीमत् के जलदी ही दर्शन करावे और वलायत् से चिठीयां अटरनी स्हाब की और इलहाबाद से मीस्टर कालवीन स्हाब की आइ हैं जीसमें लिखा है कि फोरन् वास्त मशवरा के इलहाबाद आओ इसलिये में आज वहां कु रवाने होउगा श्रीमत् पधारें जब श्री हजूर में पत्र भेज देवें सो सब तरह से सवारीयों वगेरह का बंदोवस्त हो जावेगा और में भी पनरा बीस दिन में वहां से

---

१. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ६८-६९ पर छपा है।

२. यह पत्र हमें नहीं मिला। इसी के आधार पर 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ९४१, भाग २, पृष्ठ ९५६ पर पत्र-सारांश छापा है।

३. खारची स्टेशन का सम्प्रति 'मारवाड़ जंक्शन' नाम है। द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ ९४२, टि० ४।

हाजर हो जाउंगा वाव फीयत के वास्ते अरज मालूम की है संवत् १९४० आश्विन शुदी[1] ४

—:०:—

[पूर्ण संख्या ५९९] पत्र

ओ३म्[2]

सत्यधर्म्मं नियन्तारं यथान्यायं नचान्यथा
जनेभ्योहि दयालुत्वं प्रकाशयन्वै स्वभाजम् १
सर्वबोधोदयं नौमिगी:पतिं शरणं सताम् ।।
ततानविजयं यश्च विरूद्धवेदधर्म्मत:
देवार्हं देव पूज्यंतं सर्वज्ञं ब्रह्मसाक्षिणम् ।।
नित्यशक्त्या गुणैर्वापि भ्राजमान मखण्डितम्३
जगद्गुरो जगज्ज्ञानं जगत्सुख प्रदायकम् ।।
जगदाधार जगत्सार महद्दूषण छेदक ४

महाराज इन दीनो में गुजरात[3] मे हूं यहा का समाज भी वहुत हीं टुट गई थी परन्तु श्रीयुत वावू दयाराम मास्टर मुलतान से आकर वहुत तरकीव की है गुजरात समाज की, और झेलम समाज भी टूट गई है और ओजिरावाद की समाज भी टूट गई क्योंकि विना उपदेशक समाज क्योंकर अस्थिर रहै यहा पर कोई समाज ऐसी नहीं जो एक उपदेशक समाज से रखकर समाज से उसको उपदेशार्थ खर्च दे। जो हरेक समाज में उपदेश करता रहै तो कभी समाज में हानी नहो दिन प्रति दिन उन्नत्ति होती जाए कभी समाज ऐंशी दशा की प्राप्ति हो कभी नहीं यह सव प्रवन्ध लाहोर समाज को करना चाहिए क्योंकि सव समाज उसी के आश्रय है इस वास्ते आप वहां के प्रधान को लिखिए कि जो समाज टूटती जाए उसको समाज से खर्च दे उपदेशक भेज वहा पर उपदेश करावे कि समाज में दिन दिन उन्नति हो वावू दयाराम जी के जैंसा तन मन धन से प्रीति समाज की उन्नति में है वैसा दो चार पुरुष पुरुषार्थी हो तो ये समाजें क्या अनेक समाज नवीन न होती जाए पंजाव भर में जैसा कि वावू मग्गूमल शखर में

---

१ ५ अक्टूबर सन् १८८३।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३७-३८ पर छपा है।

३. सम्प्रति पाकिस्तान में है।

और बाबू विष्णु सहाय फीरोजपुर में फीरोजपुरस्थ सभासदों के पुरुषार्थ से महाराज फरीदकोट के उपदेश हुआ जब ऐसे ऐसे श्रद्धालु हो तो अवश्य सर्वत्र लाभ हो और अमृतसर मे मुरलीधर अत्यन्त श्रद्धा इन सबको देखने मे आई देशोपकार तथा समाजिक विषय में श्रीयुत महाराजा फरीदकोट ने नमस्ते आपको की है और मुझे ५० रुपै दिआ सो फीरोजपुर में जमा है समाज में

सम्वत १९४० सन १८८३ अक्टूबर ता० ९[1]

आपका दास
सहजानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६००] पत्र

ओ३म् ।।[2] सिधिश्री सर्वोपकारार्थ—कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ मद्दयानन्द सरस्वतो स्वामी जी महाराज दास जवाहरसिंहस्य नमस्तेस्तु अपरंच ।। ईश्वर की कृपा से मैं आनन्द सहत यहां पहुंच गया. परन्तु यहां आत्ते ही हवा के बदलने से शरीर में खेदसा हो गया था जिस से मैं आप को पत्र न लिख सका था अब आराम है ।। मैं शाहपुरा से १३ सितमबर को चल के अजमेर में आया ।। १६ तारीख को वहां पर व्याख्यान दिया. विष्य "आर्य्यसमाज के स्थापन की क्या आवश्यक्ताथी." था, बहुत उत्तम रीत्त से व्याख्यान दिया गया. फिर जेंपुर समाजस्थ आर्य्य पुरुषों से मिलना हुआ उन को बहुत उतसाह दिया गया. ऐक व्याख्यान दिल्ली में गुरद्वारे के बीच दिया. वहां से सीधा लाहौर चला आया.

इस गत यात्रा में श्रीमानों के मिलने का और बंदूकदि शस्त्र चलाने का लाभ हूआ, जो बहुत भारी है, और नुकसान केवल २५०) रुपये का हूआ ।। दूसरा यह कि अपने साहिब ने जो तरक्की देनी कही थी और जिस बात के पुना पुना लिखने से आप को भी मेरे समझाने नमित्त ऐक पत्र लिखना पड़ा था बंद हो गई !! यह करना अंग्रेजों का धर्म्म है !! परन्तु शोक का स्थान नंही, क्यूंकि इस के बदले ऐक बड़ा लाभ यह हो गया है कि मुझ को देशी राज काज के

१. आश्विन शु० ८ सं० १९४० वि०।

३. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १५८-१६० तक छपा है।

सब ढंग मालूम हो गये ।। देशी विदेशी प्रणाली के सब भेद खुल गये. अब राज प्रबंध करना सहज प्रतीत होता है यह बहुत लाभ की बात हो गई ।।

राजाधिराज ने मुझ को आते हूये ऐक मान्य पत्र प्रदान किया जिस मे मेरी प्रशंसा कही है ।। उस मे यह भी लिख दिया है अर जबानी भी बहुत कहा है कि "तुम को जलदी अछे काम पर बुलावेंगे." अब देखना चाहीये कि कब तक याद करेंहगे ।।

यहां समाज में ईश्वर की और आप की दया से बहुत उनत्ती है नवंबर के अंत्त में उत्तसव होगा. **उस मे पृथम बिजली आदिक विद्या सिखलाने वाला सकूल खोल दिया जायगा.**

यहां हमारी सब की इच्छा है कि आप राजपूताने को छोड़ कर पहले कलकत्ते में "नुमाइशगाह देखें. फिर ऐक बार पंजाब में आकर मदरास या बंगाले को पधारें. राजा लोगों से होता कुछ नजर नहीं आता ! जो कुछ उनत्ती देस की होगी, वह असमदादिक लोगों से ही होगी. ऐसा निश्चय होत्ता ।।

लाला सांईदासजी आप के पत्र का उत्तर इस कारण से न दे सके कि लाला मथरादास साहिब यहां नहीं मिले थे अब उन से पूछ कर लिखा जाता है कि जैन मत्त खंडन की २०० अलग प्रति छपाई जावें उस की अलग कीमत्त देदी जावेगी. और ह्यूमसाहिब के प्रश्न का उत्तर भी छपा दिया जावेगा.

शाहपुरा में जो दूसरा ओवरसीयर चाहीये वह पंडित गौरीशङ्कर जैपुर वाले लिये जावें तो अच्छा है. इस विष्य में मैं आज शाहपुरा लिखता हूं यदि उन की इच्छा हूई तो वह जैपुर से पत्र भेज कर मगवा लेवेंगे ।।

अजमेर में मैंने आप के चोरी हो जाने का समाचार सुना बहुत शोक हूआ था. क्या कुछ पता लगा या नहीं—मसूदा जाने का विचार है वा नहीं वा कहां जाने की इच्छा है ? सब आर्य्य पुरुष आप को नमस्ते कहते हैं.

ह० आप का दास

जवाहरसिंह प्र: स: आर्य्य समाज लाहौर—

१३ अकतूबर सन १८८३—][1]

---

१ आश्विन शु० १२ स० १९४० वि०।

[पूर्ण संख्या ६०१] पत्र

॥ श्री गोपाल जी ॥ श्रीराम जी[1]

सीध श्री जोधपुर गढ़ माहा दुरग सरब ओपमा वीराजमानै लायके, स्वामी जी माराज श्री ४ श्री दयानन्द सरस्वती जी जोग्य मसुदा सु सेवकण बाहादर सींघ ली पगे लागणे वंत्रावसी अठा का समांचार श्री जी का प्रताप सु भला छै आपका स्दा भला चाही जे आप मांहारै गणी बात छो आप सुवाय्ये दुजी बात नहीं स्दा कृपा महरवांनगी रषावों[2] छो जींसु वसेष रषावगी अप्रंचा कागद आपको आय्यो समचार बांचां कुसी हुई ओर आप अठ पधारवा कै वासतै आसोज सुद १ की लषी छी[3] सो हनोज आपकी पधारबो हुवों नहीं डी वास्ते लीखवा मै आव छे सो आपकी अठ पधारबो कब होसी सो लीषावसी ओर आप का डीला को सादन रषावसी ओर अठा लाइक काम काज हुवसी लीषावसी अठ आपको हुकम छै

१९४० का शुदी० आसोज सुद १३ दीतवार[4]

मारो पगे लागणो मालम होसी आप गणा प्रस्न रहसी कृपा महरवानी है जसी रषावसी सरीर को सदन रषावसी अबां जलदी द्रसण देसी वायदा सु भी दन जीयादा नीकल गया है द्रसणां की पुरी अबलेषा लाग रही है छलेसर का चवाण सरदारनां भी लेता पदारसी मां पाछा आबा को तो वायदो कर्यो है

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०२] पत्र

॥ श्री: ॥[5]

खार्चा[6]

सिध श्री सुवस्थानै सत्र ओपमा विराजमान लायक श्री स्वामी

---

१. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग २, पृष्ठ ८२ पर छपा है।

२. इस पत्र में सर्वत्र 'ष' को 'ख' पढ़ें।

३ यह पत्र हमें नहीं मिला।

४. १४ अक्तूबर सन् १८८३।

५. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ८०-८१ पर छपा है।

६. यह शब्द संदिग्ध है। खार्चा(= मारवाड़ जंकशन)का निर्देश सम्भव नहीं, क्योंकि पत्र मसूदा से लिखा गया है।

जी महाराज श्री ४ श्री दयानन्द सरस्वती जी जोग्य ससूदा सूं सेवकण बहादुर सिंह जी लिखते पगे लागनो बंचावना अठा का समाचार श्री जी का प्रताप से भला है आपके सदा भला चाहिये अपरंच मुझे आप की बीमारी का हाल सुनकर बहुत अफसोस हुआ और जब तक आप को खुश तबियत का हाल मालूम ना हो बहुत फिकर रहेगा मंने प्रताप सिंह जी मैय एक सरदार और दो खिदमतदार के रवाने किया है कि वे आप के काम के वास्ते हाजिर रहे और आपकी तबियत के हाल से खबर देते रहैं

मेंने सुना है कि आप का इरादा आभू की तरफ जाने का है। लेकिन मेंरी राह में आभू का जाना अच्छा नहीं है क्योंकि आभू का पानी तंदुरुस्त आदमी के लिए भी अच्छा नहीं है और वहा भी आब हवा भी खराब है मैंने कई अंगरेजों और हुन्दुस्तानियों से जो आभू रह आये हैं इस बात की अच्छी तरह तहकीक की है इस लिये आप बजा आभू के नये नगर[1] चले आवें वहा बंगला और एक हिन्दुस्तानी कायत जो बड़ा डाक्टर है त्यार है जो दो सो की तलब पाता है अगा आप वहा आ जावे तो मं खुद भी वहां रहूंगा और अगर गोरे डाक्टरो की जरुरत होगी तो उन को भी बुला सकूंगा और न्यायगर की हवा और पानी बहुत अच्छा है इस लिये में यकीन करता हूं कि आप मेरी अर्ज कबूल करगे और बाबू बिहारी लाल जी वही है और उन को अच्छी तरह कह दिया है ता १९ अक्टूबर[2]

B.D.S.

मारो पगे लागणो मालम होसी जब तक षुंसी की षबर नही आयेगी तब तक बडो सोच रहेगा नये सरको जरूर आ जावैगे जीयादा नहीं लीष सकता

B.D.S.

—:०:—

१. अर्थात् ब्यावर शहर।

२. यहां सन् का उल्लेख नहीं है परन्तु पत्र में बीमारी का हाल सुनकर चिन्ता प्रकट की है। अतः यह पत्र १९ अक्टूबर १८८३ = कार्तिक कृष्णा ४ सं० १९४० का है।

[पूर्ण संख्या ६०३] पत्र

ओं[1]

श्रीयुत स्वामी जी महाराज नमस्ते

आगे निवेदन यह है कि १ सेर दूध में २ तोले शहद डार कर और दूध को केवल अग्नि पर ही गरम करकें रुचि अनुसार पान करें —पूर्व जो लोहे से गरम करने को लिखा था[2] सो न करना सो अब केवल अग्नि पर ही गरम करना और अधिक शहद डालने से दस्त अधिक हो जाने का भय है–सो अधिक शहद न गेरना पीर[3] जी कहते है कि आप यहां आ जांय तो शीघ्र ही आराम हो जायगा इस्में कुछ संदेह नहीं, आगे पं० छगनलाल जी वा सब सभासद और पीरजी साहब आदि की यही सम्मति है कि आप अवश्यनेव यहां पधारें और आबू न जांय क्योंकि आज कल्ल आबू गिर की वायू और जल विशेष ठंडे हैं जिस से अर्द्धंग और सूजन होने का भय है—विशेष क्या लिख उत्तर शीघ्र दीजिये—

मिती कार्तिक वदी ६ सम्वत् १९४०[4]

मुन्नालाल
पूर्वमंत्री

—:०:—

१ यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ १९९-२०० पर छपा है।

२. यह पत्र उपलब्ध नहीं हुआ। सम्भव है पीर जी की दवा के साथ भेजा होगा। द्र०—अगली टि० ३।

३. पीर जी अजमेर के प्रसिद्ध हकीम थे। उनकी दवा लेने के लिये अजमेर-निवासी जेठमल पाली (मारवाड) से अजमेर गये थे और दवा लेकर कार्त्तिक बदी ६ सं० १९४० (२१ अक्टूबर १८८३) को मारवाड़ जंक्शन (खारची) पर स्वामी जी को मिल गये थे। देखो–पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित्र भाग २, पृष्ठ ३४४। इस पत्र पर भी तिथि कार्त्तिक बदी ६ लिखी है, अतः मुन्नालाल जी ने यह पत्र जेठमल जी के हाथ ही भेजा होगा।

४. २१ अक्टूबर सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ६०४] पत्र

।। श्री गोपाल जी[1] ।। श्रीरामजी

सीध श्री आबू जी सुभ सथाने सरब ओपमा बीराज मानै लायक स्वामी जी माराज श्री ४ श्री दयानंद सुरस्वती जी जोग्य मसुदा सु सेवकैण बाहादर सीघ ली पगे लागणो वंचावसी अठा का समाचार श्री जी का प्रताप सु भला छै आप का स्दा भला चाही जे आप मांहार गणी बात छो आप सुंवाये दुजी बात नही स्दा कृपा महरबानगी रषावो[2] छो जीसु वसेष रषावसी अप्रंच ।। तारीख २१ को बाबू बीहारी लाल की अर्जी सैवा मे ठाकरणां की अरज सै मालुम हुई जीससे आप की षेद का हाल सुणकर नीहाय्यत अपसोच हो रहा है ई वास्तै आपनै लीषबामे आव है सो आप की कुसी का समाचार जलदी भीजा वसी और पहली का पत्र मैं भी आपनं लीषी[3] छीकै आप आबु को न्ही पधारे ओर अब भी आप से मेरी य्येही अरज है कि आप जलदी आभू सै नय्यैनगर पधारे मे षय्याल करता हु कि आप ई अरज नें कबुल कर हर जलदी नयेनगर पधार जावगे उठे के आप स्ब हीनदुस्तांनीय्यो से दरीय्यांफत कर लीजिय्येगा कं आभु का पांनी वे आब हवा नीहाय्यत षराब है ओर जो ईस देस के स्ब आभु कु गय्या हैं वो अठु सू बीमार पड़ जाता है तो बीमारी के हाल मै नयाय्यत षराब है और मै ने नय्येनगर मां रहनां ईस्वास्तै मुनास्ब समजा कि वाहा डाक्टर षीन अच्छा है और जो डाक्टर की वा दवाय्यां की जरुरत होगी बो वजरीय्ये रेल सै जलदी सै आ जावगी ओर वाहां की आबहवा बी वोत अच्छी है ओर बंगले हर पालकी का बाबु बीहारीलाल की मारफत बंदोवस्त कर दीय्यां गय्यां है ओर जबै आप वाहा से पधार तो य्येक रोज पेसतर तार सैं षबर षरबा के असटेसन पर भेज दे ओर केपना लीख दे कि षरवा के ईसटेसन पर पहुच कर मसुदे पोचै राव साहेब बाहादुर सींघ जी के पास जाके तय्यांहा सै नय्येनगर को आजाव ओर य्येक तार बाबु बीहारी-

१. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ८३-८५ तक छपा है।

२. अशुद्ध छपा है, 'रषावो' पाठ चाहिये। इस पत्र में 'ष' को 'ख' पढ़ें।

३. द्र०—पूर्वमुद्रित पूर्ण संख्या ५९८, पृष्ठ ७२९ पर छपा पत्र।

लाल कु द देवे के वो पालकी वगरे बंगला का बंदोबस्त कर रषे और अठा सारु काम काज हुव सो लीषावसी अठे आपकी हुकम छ

१९४० रा काती वदी ७[1]

मारी पगे लागणो मालम होसी आपकी षेद की सुणी जी की बीड़ी चीन हो रही है सो जलदी सु नये नगर पदार जासी जीयादा कांई लषी जावै उठा को पाणी गणो षराब है—

प्रताप सीघ जी मारी जै चुत्रभुजी को बांचज्यो और सुवामी जी माराज को पुरो जावणो राषणो राषज्यो सारान कह दीओ काम काज मां आछी तरांबे स्वामी जी माहाराज ना जरुर अठ पदराजयो।

B.D.S.

प्रताप सीघ जी तार दे दीजी मां षाहुजु षुराक वगरे प्र पडे जीमा षरच आपणो करजी ओर अठा सुतार[2] वगरे उठ भेजां तो पतो उठा की लषांसु— B.D.S.

—:o:—

[अज्ञात तिथि तारीख के पत्र][3]

[पूर्ण संख्या ६०५] पत्र

[4]श्रीमत्सद गुणाधार सच्छास्त्रार्य्याचरित सत्यधर्म्म प्रवर्त्तकाखण्डपाखण्ड निहा रनिर्वारक परमहंस परिव्राजकाचार्य दयानन्द सरस्वति स्वमिपादयो: पुरत· साष्टाङ्गानतयो विलसन्तु—

---

१. २२ अक्तूबर सन् १८८३ सोमवार।

२. 'अठा सु तार' इस प्रकार पढ़ें।

३. यहां से आगे उन अज्ञात तिथि तारीख के पत्र छाप रहे हैं, जिन पर न पत्र लेखक ने तिथि तारीख संवत् वा सन् आदि का निर्देश किया है और नाहीं किसी अन्य स्रोत से इनकी तिथि तारीख का ज्ञान हो सका है।

४. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३८६-३८७ पर छपा है।

जिस क्षत्रिय के यहां दो चार पुश्त से किसी अनभिज्ञता से उपनयन हुवे विना विवाह होता है परन्तु उस्के गोत्र में और लोगों का उपनयन होता है जिस्से उसका परस्पर पङ्क्ति भोजनादि समागम एक ही है—और उस क्षत्रिय का उपनयन काल और मुख्य और गौण दोनों वीति चुके हैं अब उस क्षत्रिय को श्रद्धा है कि धर्म्म शास्त्रोक्त कोई पाप[1]………जाता है कि इस विषय कृपा कर के आज्ञा फरमाइये यद्यपि हम जानते है कि आप को वेद भाष्यादि रचना से अवकाश नहीं है तथापि इस विषय में यथोचित उत्तर दाता न देष कर मजबूरी से आप ही को तकलीफ दी जाती है कृपा कर के इस आश्रित की आशा पूरी कीजिये और लिखिये कि इस महीने में कहां मुकीम रहैंगे—इति—

द० श्री महाराज कुमार भया
जगदम्बिका प्रतापवहादुरसिंह
ताल्लुकदार देवतहा—

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६०६] **पत्र**

[2]स्वामी जी दयानन्द सरस्वती महाशय जी पश्चात् दंडवत् के निवेदन यह है कि कोई आपका पत्र नहीं आया मुझ दास पर जो कृपा होगई सो मैं आपका अति धन्य करता रहूंगा प्रसाद कर आप अपने रचे ग्रन्थ व्याकरण के जो हैं कृपा पूर्वक भेज दिजे तो अति अनुग्रह हो मैं चाहता हूं कि आप के ग्रंथों को एक बार देख जाऊं तो कुछ प्राप्त हो आप का दास शिष्य मैं मुझ पर सदा दया कीजे और पुत्रवत् जानिये—

निवेदन मेरा यह है सदा दया दान दीजे।
यश हो आपका सदा उपकार लीजे।
मुझ को शिष्य कर योगमार्ग दान दीजे।

---

१. जहां जहां लीडर अर्थात् बिन्दियां हैं वहां वहां का भाग असल पत्र में नहीं है। वह सब भाग असल पत्र के फट गये हैं। मुंशीराम

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३९९-४०० पर छपा है।

दास हूं तिहारो यथायोग्य कीजे।
मैं नाम तिहारो धर्ता गुरू आप हैं भर्ता।
ऋषि जी प्रसाद दीजे आप ही कर्ता।
शिवयोगी सम तुल्य आप योग दान दीजे।
अल्प बुद्धि मेरी इसको महत्व दीजे।
वेदभाष्य रच आप सदा संसार प्रकाश कीनो।
परोपकारी सदा ज्ञानी ज्ञान दास को दीजो।
मन वचन क्रम से दास तिहारा, सदा लूं तेरा।
मुनिवत् प्रसाद सदामोहि दीजो, तव शिष्यों में नाम मेरा।
मैं दास पापी क्षुद्र बुद्धि ज्ञानो महान् तुम हो सदा,
शिष्य पुत्रवताज्ञा कारी आश्रय तुम्हार अब कीनो है—
योगमार्ग अब शीघ्र बताओ विद्या दान देव सदा।
खुन्नीलाल अनाथ दास हों आश्रय तुम्हार अब कीनो है—

खुन्नीलाल
विद्यार्थी फोर्थ किलाश

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९०७] पत्र

॥ ओ३म् ॥[1]

श्रीमन्महाराजाधिराजेषु शोभितसमाजेष्व स्मदुद्धारकेषु ॥ श्रीमत्स्वामीदयानन्दसरस्वती ष्वस्मत् कृत्ता नतिततेयाधारा: सदोल्लसंतु कोटि : ॥

[2]उदत्तस्त्वेषः ॥

यहां पर राज में एक मासिक पत्र जिसका नाम धर्म्म जीवन है लाहोर से प्रतिमास आता है ॥ अब की बार मारच संबंधी पुस्तक १ अंक ३ जो आया तो उसमें यह समाचार मुद्रित था श्रीस्वामीदयानंद सरस्वती जी महाराज को महाराजा जोधपुर ने जन्म भर के लिये कैद कर दिया है ॥ यहां के जयपुर गजट वालेने भी इस समाचार

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ८८-८९ पर छपा है।

२. 'उदन्तस्त्वेषः' होना चाहिये। उदन्त = समाचार।

को अपने पत्र में मुद्रित कर दिया इस असत्य समाचार को देख हमारी सभा को बडा शोक हुवा क्योंकि यह प्रतिष्ठा भंग समाचार जिसको ताजीरात हिंद में इजाले हैसियत उर्फी लिखा है साक्षात विदित है इस कारण यहां की अंतरंग सभा से प्रबंध होकर एक पत्र इसका उत्तर लेने के लिये लाहोर धर्म जीवन के पास भेजा गया है और लाहोर समाज तथा मेरठ समाज को भी इस विषय में संमति लेने के लिये लिखा गया है क्योंकि इस सभा का मनोरथ इस विषय में नालिश करने का है इस कारण आप के चरणाविंद मे प्रार्थ[ना] है कि इस विषय में क्या अनुष्ठान होना उचित है ।।

ओम्तत्सत्
बिहारीलाल
मंत्री वैदिक धर्म्म सभा
सवाई जयपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६०८] पत्र-सारांश

[महाराजा जसवन्तसिंह का पत्र]

[1]इस दशा में मेरे राज्य से जाना अपकीर्ति का कारण होगा।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६०९] पत्र

।। १ श्री गणेशायनम:[2]

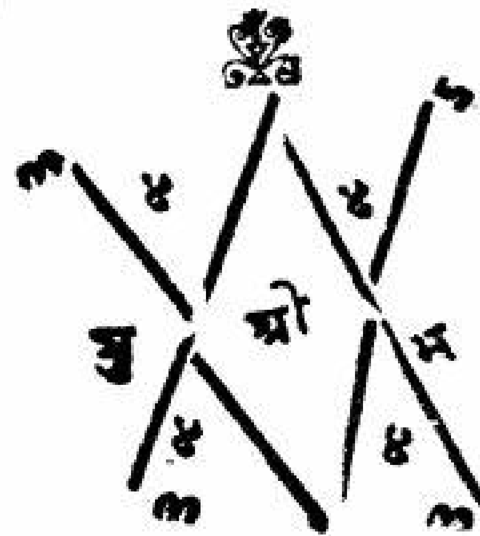
श्री महाराज दयानंद सरस्वती

योग्य लिखि चरण सेवक शारदा मंगीलाल आर्ज समाज मुकाम बिल्हौर ठिकाना पोस्ट आफिस प्रश्न प्रथम आप से करता हूं कि आप ब्रह्म का रूप साक्षात् किसी दूसरे को देखा सकते है या नहीं और इस चक्र का अर्थ जवाब पत्र का समझ कर देना

---

१. यह पत्र पूर्व पूर्ण संख्या ५६४ पर निर्दिष्ट ऋ० द० के पत्र के उत्तर में जोधपुर नरेश ने लिखा था। द्र०—पं० लेखराम जी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ६१७।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार भाग १, पृष्ठ २२१ पर छपा है।



—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१०] पत्र

श्रीः[1]

महता गुण संस्मृतिः सदा गुणदा दोष निवारिणी हृदः।
स्मरणं परमेश्वरस्य वा परमैश्वर्य दमापदावतां १
वाराणस्यां रुडक्यां च मेरठे चापि दर्शनं।
भाग्यादेव मया लब्धं सार्द्धं न गतवानहं २
पंचविंशति मुद्राभिर्मासिकेनापि तत्र मां।
भवान् न्ययोजयन् भाग्यमांद्यान्नांगीकृतं मया ३
अधुनोपसृतिर्भवत्पदेष्व भिलाषेण दृढेन चेतसः।
तदनेन जनेन काम्यते विधि कालेन विहन्यते न चेत् ४
पत्रं भवच्चरण संगतमस्मदीयं मानं लभेते भवदक्षि चरश्च भूत्वा।
कांक्षे तदुत्तर वशाद्भवतो ऽप्यनुज्ञा मायामि सेवन मनोरथ साधकोहं ५
भवतामनुगोपि यत्पदं व्रजति भ्रंशभियापवर्जितः।
तदुयांति न केपि मानुषा इतरै रचित वंदितांघ्रयः ६
ममास्ति मैत्री न नृपै र्न चाढ्यै र्न भूमिभृत्कार्य करैश्च कैश्चित्।
भवत्पदं वा जगदीश पाद मुभे भवेऽस्मिन् शरणे ममस्तः ७ **हेतुरामः**

श्रीपत्री स्वामीजी महाराज को
श्यामसुंदरकी मुरादाबाद से नमस्ते पोहुंचै

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० के पत्रव्यवहार' भाग १ पृष्ठ ४४६-४४८ तक छपा है।

ओ३म्

परमात्मा, या (परमैश्वर्य्य दमापदावतां)—जितनी भी महान् व्यक्तियें हैं उन का स्मरण सर्वदा मनुष्य में गुणों को उत्पन्न करने वाला तथा दोषों का नाश करने वाला होता है।१। काशी रुड़की तथा मेरठ में आप के दर्शन हुवे थे; परन्तु मैं आप के साथ नहीं गया।२। वहां आप ने मुझे पच्चीस रुपये मासिक पर भी कार्य्य में लगाना स्वीकार किया था; परन्तु अपने मन्द भाग से मैंने तब वह स्वीकार न किया।३। अब चित्तकी उत्कट इच्छा से मैं आपके चरणों में आना चाहता हूं यदि इस कार्य्य में भाग्य ही बाधा न डाल दे।४। मेरा भेजा हुवा पत्र, यदि आप के दृष्टिगोचर होता हुवा स्वीकृति को प्राप्त हो; तो कृपया अपनी अनुज्ञा से उत्तर पत्र में सूचित करें। आप के मनोरथ को मनोरथ को पूरा करने के लिये मैं उपस्थित हूंगा।५। भ्रष्ट होने के डर से छोड़ा हुवा आप का पृष्ठ चर भी जिस पदवी को प्राप्त होता है, वह पदवी अन्य मनुष्यों द्वार पैर पुजवाते हुवे पुरुष भी नहीं पा सकते।६। मेरी न तो किसी राजा से मैत्री है और न ही किसी धनी से है। राज कार्य्यकर्त्ताओं से भी मैं मित्रता नहीं रखता। आप के चरण और परमेश्वर ये दो ही इस संसार में मेरे आश्रय हैं।

हेतुराम

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६११] पत्र

श्रीगणेशायनमः[1]

विज्ञप्ति पत्रिकेयम्

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य दयानन्द सरस्वती रूपेषु आर्य्य-समाज चिकीर्षु महादेवाख्य स्यानेक प्रणामा विलसन्तुतराम् भवत् प्रणीत वेदोद्भव सत्यमन प्रवृत्यर्थोद्यतस्यमेतन्मतं श्रुत्वाधुनिक काल प्रसिद्ध पुराणादि कथां कोपि न शृणोति तद्वारा लाभार्थाभावाद्द्रव्या-भावो भविष्यतिपे पीच्छंति वेदार्थं सोपिके नाध्यते बिनार्थात् यदि भवत्प्रणीताः संस्कारादि ग्रंथा ऋतेद्रव्यात् प्राप्नुयुः तदात्रास्म द्वारा

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ४०१-४०२ पर छपा है।

वेदस्य प्रवृत्तिर्भविष्यति कानपुरांतर्गत शिवराजपुर समीप स्थित भगवंतपुर गतस्यार्यसमाज प्रियस्य महादेवाख्यस्यभवन्मुख प्रणीत सभाढ्य वेदादि सर्व प्राप्त्यर्थं विज्ञप्ति पत्रिकेयम् शुभमस्तु शुभमस्तु शुभमस्तु

प्रघटे स्वामी एक दयानन्द
खंडन प्रतिमापूजन को करैं केवल साँचे एक कहत छंद
ई कहे व्यास के नहि पुराण रचि डारेई पंडित मंद
कँहु कँहु भारत की मानत हैं कँहु कँहु वाहू मैं कहत द्वंद
महाभाष्य चरक मुनि गणित ग्रंथ सांचे मानत मुनि सूत्र वृंद
वलिवैश्वदेव अरु अग्निहोत्र संध्योपासन की करत संद
ह्यातें चलि चलि सव कासी तक पंडितन की करवाई सनंद
समुहे कोई नहि दे प्रमाण पीछे निंदत कोई अवुध गंद
शंकर झूठे मत तम पसारत ह दयानन्द उदये हैं चन्द्र १

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१२] मनिआर्डर-सूचना

[१०० का मनिआर्डर भेजा][1]

मथुरादास-मियामीर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१३] पत्र

[2]सिद्ध श्री ५ स्वामी दयानंद सर्स्वति जी महाराज को मुथरदास का प्रणाम पहोचे आप का पोस्टकार्ड आया[3] हाल मालूम हुआ मैंने आजकी तारीख में मनी आर्डर १००) का आप के समीप भेज दिया

१. इस मनिआर्डर भेजने की सूचना मथुरादास के अगले पूर्ण सख्या ६१३ के पत्र में निहित है।

२. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३०५ पर छपा है।

३. यह पत्र हमें नहीं मिला। प्रस्तुत पत्र के आधार पर ही हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६४३ (भाग २ पृष्ठ ६५६) पत्र-सूचना छापी है।

है–बाकी १००) पीछे से भेज दूंगा—मेंने आप को आज्ञा के बिना एक मुर्खता की है वह यह है कि वेदभाष्य भूमिका का अति संक्षेप से खुलासा कर के उर्दू क्षरों में छपवाया हैं और उस में यह विज्ञापन भी दे दिया है कि जो कोई मेरी लिखी हुई बात वेदभूमिका से विरुद्ध हो वह मेरी भूल है ग्रंथ की भूल न्हीं है फिर मुझ को यह सोच हुआ कि बिना स्वामी जी महाराज की आज्ञा के क्यों मेंने उस को छपवाया—अब ३०० पुस्तकें उर्दू की मेरे पास है मेंनें आज तक उनको प्रचलित न्ही करी और ना कहीं भेजी—जो आप आज्ञा करो तो सारी पुस्तकें आप के समीप भेज दूं में उस का खर्च भी लेना न्ही चाहिता जो आप उन को पसंद करें तो वैदिक यंत्रालय में रखा कर बिका देवें और उस का मुल्य यंत्रालय में खर्च हो जावे।

मुथरादास—मियामीर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१४] पत्र

ओ३म्[1]

स्वस्तिश्री सर्वशक्तिमते नमः श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी को श्यामदास[2] का प्रणाम हो समाचार यह है मैंने आप के पुस्तक सब

---

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३०८-३०९ पर छपा है।

२. श्री पं० शामदास जी रामलाल कपूर परिवार के कुल पुरोहित थे। ये पौराणिक होते हुए भी बड़े उदार विचार के व्यक्ति थे। इनके पास ऋषि दयानन्द के सभी ग्रन्थ विद्यमान थे। सन् १९२९ या ३० में इनके पुत्र पं० गण्डारामजी से इन के पिताजी द्वारा संगृहीत प्रायः सभी ग्रन्थ रामलाल कपूर ट्रस्ट ने अपने पुस्तकालय के लिये क्रय कर लिये थे। इनमें ऋ० द० के प्रायः सभी ग्रन्थों के दुर्लभ प्रथम संस्करण थे।

श्री पं० शामदास जी के लिये दयानन्ददिग्विजयार्क के लेखक पं० गोपालराव हरि ने लिखा है—'[मूर्तिपूजक] पं० श्यामदास जी अमृतसरी साफ कहते हैं कि कोई आकर हमको स्वामी जी की अशुद्धि दिखावे तो सही।' द्र०–दयानन्ददिग्विजयार्क द्वितीय खण्ड, संस्क० २, सं० १९४४, पृष्ठ १०१ (नवीन देहली सं० पृ० ७३) के नीचे टिप्पणी में।

देखे है परन्तु अनेक संशय है जो आप उत्तर देना स्वीकार करो तो मैं प्रश्न लिख के भेजूं क्योंकि जो आप का आशय है उसके जानने वाले आप ही हो और आपके शिष्यादिकों का उत्तर आप के उत्तर सम नै होगा ।। आगे षट्दर्शनों के कै एक भाष्य नै मिलते सो आप को मालूम होगा कि कहीं वे सब भाष्य छपे हुए मिल सक्ते है या नै और जो जो गृह्यसुत्र श्रौतसूत्र आपने लिखे है वे सब प्रायः नहि मिलते इस्वास्ते यह आशा है कि आप के पास तो वे सब पुस्तक है आप किसी नियम द्वारा देखने वास्ते दे सकोगे वा नै और उपबेदों के भी पुस्तक नहि मिलते आयुर्वेद का धन्वन्तरि कृत निघण्टु नहि मिलता सो आप को मालूम होगा कि कहीं छपा है या नहि और नै छपा तो आपके पास तो होगा आप लिखने वास्ते दे सकोगे और उसमें औषध-नाम और गुण मात्र ही लिखा है वा आकार पत्र दुग्ध इत्यादि भी लिखा है इस्का कृपा कर्के उत्तर लिखना जरूर मुझे इस पते पर पत्र भेजना ।

शहिर अमृतसर कटरा खजाने का बाग चौधरी की गली में

शामदास,

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१५]   पत्र

श्री १०८ मन्नमान पण्ड दयानन्द सरस्वती जी नमस्ते ।।[1]

आप को विदित हो कि सिधु किराजी इक निर्मला वेद विरुध पुराण मतवादी और दूसरा रुद्रदत ब्राह्मण वेद विरुद्ध पुराणवादी अजकल प्रतिमा पूजन सिद्ध कर रहे है किसी ग्रहस्थ द्वारा मुझ से संका मंगा कर वेद प्रमाण से प्रतिमा पूजन की आशा करी और पत्र द्वारा लिख भेजा अर्थात त्वेश्रया ये श्लोक लिखा और कहा कि ये ऋगवेद का श्लोक है फिर मैंने इक मयाराम ब्राह्मण और इक बनीए को उस निर्मले पास इस लीइ भेजा कि अपने हाथ की सही

१. यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३१२-३१३ पर छपा है।

डालो जो फलाने अष्टक के फलाने अनुवाक्य का फलाना मंत्र है उस ने सही डाली कि ये यजुर्वेद के आरण्य का वाक्य है फिर रात्र को उस की सफा मे इक बनीई ने जाकर कहा कि तुम लोगो ने वेद प्रमाण से प्रतिमा पूजन की आशा करी थी अब वेदविरुद्ध प्रमाण देकर अपनी प्रतज्ञा की हानी किस लिइ करी अब ऐसी सही डालो वेद प्रमाण ना देकर जो झूठा हूआ उस का काला मुख कर गद्दा पर चढाना चाहिये इतने मे वह धुर्त बनीइ को बोले कि जावो ना तों हम जुतिया लगाइगे और यह वी हम किसी से सुना है कि दयानन्द जी दस बीस रोज तक सिंद्धु मे आने वाले हैं सो ठीक है वा नहीं जब आप को वेद मत प्रगट कर्ने की द्रिड आशा है तो सिंद्धु मे पंज छै महीने इन दिनो मै अवश्य आना चाहिये जब सारी सिंद्धु मै विदित हो जाय कि प्रतिमा पूजन से पाप है तो फिर सब का सुधारा होगा मैंने तो आप के बनाइ शास्त्र म्रजादा से बहुत वेरी प्रतमा खंडन कीआ है। इस पत्र का समाधान शीघ्र भेजना ॥

हस्ताक्षर **आलाराम्** ॥

और आप के बने पुस्तकों कूं क्रिस्तान के बवोनिर्मला विद्याहीनोपास बोलता है और यह भी मूर्खोपास कहता है कि कांसी में दयानन्द को पण्डतोपराजया कीया

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१६] **पत्र**

ॐ नमः सच्चिदानंद मूर्त्तये[1]

॥ स्वस्ति श्री सकल गुणालंकृत सर्व शास्त्रार्थ तत्वज्ञ सत्यधर्मोपदेशकानेक पाखंडमतांध ज्ञान दृष्टि प्रद विद्वज्जनवरिष्ट परिव्राजकवर्य श्रीमतां स्वामि दयानंद सरस्वतीनां पाद पीठेषु परम शिष्ययोर्नित्यं भवत्पादपंकजमकरंदाभिलाषुकयोरार्य सद्धर्मोपदर्शनेन निरस्तभ्रमांध कारयो र्ब्राह्मण पन्नालाल छगनलाल शर्म्मणो रानति ततयो विल संतुतराम् शमत्रतत्रास्त्वपरंच निम्न लिखितानि पुस्तकानि सकृपं प्रेषणीयानि मूल्यं चतेषां मनिआर्डर द्वारेण वाभ वल्ले-

१. यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ७०-७१ परछपा हैं।

नानुसारेण भवत्समीपे प्रेषयिष्याव: १ सत्यार्थप्रकाशो पुन श्शोधित: २ संस्कारविधि: ३ यजुर्वेदभाष्यं आर्य्योपदेशरत्नमाला ४ व्यवहार-भानु: ५ काशी शास्त्रार्थ: ६ संध्योपासनं ७ अष्टाध्यायी भवद्रचित वृति समेता किं च अन्यान्यपि लघु मूल्यानि लाभकारकाणिभवेयु-स्तेषां यानि श्रेष्टतराणि तानि प्रेषणीयानिअपरंच यत्रकुत्र चिद्भ-वंत भ्राजामाना भवंति तस्मात्स्थानात् पत्र प्रेषणीयं यतो वयं स्व-शंकां पत्र द्वारेण निवारयामो वा दर्शनार्थिनो भवत्समीपे आगच्छेम किं च अस्मिन्पत्रे यदनुचितं भवेत्तत्क्षंतव्यमिति शुभं भूयात्

हस्ताक्षर ब्राह्मण छगनलाल श्री माली दरबार स्कूल संस्कृत द्वितीयाध्यापक यत्पत्रं भवद्भि: प्रेषणीयं तद्दरबार स्कूल नाम्नि नियत स्थाने प्रेषणीयं ॥

(अनुवाद)

सच्चिदानन्द स्वरूप को नमस्कार है

कल्याण हो। सब गुणों से युक्त सब शास्त्रों के अर्थों को जानने वाले, सत्य धर्म के उपदेशक, अनेक पाखण्डीमतों द्वारा अन्धे को ज्ञान दृष्टि देने वाले, विद्वानों में श्रेष्ठ, संन्यासिप्रवर श्री स्वामि दयानन्द सरस्वती के चरणकमलों के मकरन्द रस को चाहने वाले, तथा आर्य सत्य धर्म के उपदेश से नष्ट हो गया है भ्रमरूपी अन्धकार जिनका ऐसे ब्राह्मण पन्नालाल और छगनलाल शर्म्मा के नमस्कार हों। यहां कुशल है और वहां भी हो। इस के अलावा कृपा करके निम्न लिखित पुस्तकें भेज दें, और इनका मूल्य मनीआर्डर द्वारा या आप के लेख के अनुसार आप के पास भेज देंगे।

(१) सत्यार्थप्रकाश (दुबारा संशोधित)
(२) संस्कारविधि.
(३) यजुर्वेदभाष्य.
(४) आर्य्योपदेश रत्नमाला.
(५) व्यवहारभानु.
(६) काशी शास्त्रार्थ
(७) सन्ध्योपासना.
(८) अष्टाध्यायी (आपकी बनाई हुई वृत्ति सहित)

इस के अतिरिक्त और जो कोई थोड़े मूल्य वाली और लाभप्रद पुस्तकें हो उनमें से श्रेष्ठतम भेज दें।

किंच, जहां कहीं भी आप विराजमान हो वहां से पत्र अवश्य भेजें। जिस से हम अपनी शंका को पत्र द्वारा निवारण कर सकें। अथवा दर्शनार्थी होने पर आपके पास आवें। इस पत्र में जो कुछ अनुचित हो उसके लिए क्षमा करें। कल्याण हो।

हस्ताक्षर ब्राह्मण छगनलाल

श्री माली दरबार स्कूल संस्कृत द्वितीय अध्यापक

जो कोई पत्र आपको भेजना हो वह दरबार स्कूल नामक नियत स्थान पर भेजें।



ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन

का

चतुर्थ व अन्तिम खण्ड पूरा हुआ।